प्रकाशक
उमरावसिंह 'मंगल'
संचालक–मंगल प्रकाशन,
गोविन्दराजियों का रास्ता, जयपुर।

प्रथम संस्करण, फरवरी, सन् १९५८ ई०
१००० प्रतियां
मूल्य:—पाँच रुपया.

मुद्रक—
नवल प्रिंटिंग प्रेस,
चूरूकों का रास्ता,
जयपुर।

जिनके स्नेहपूर्ण आदेश का
उनके जीवनकाल में मै पूर्णतया
पालन न कर सका
उन
स्वर्गीय विद्याभूषण पुरोहित हरिनारायणजी, बी. ए.
की पवित्र स्मृति में
सादर समर्पित

अनुवादक

प्राक्कथन

इतिहास-लेखन की विधिवत् प्रणाली हमारे देश में प्राचीन काल से नहीं मिलती इसलिये मुख्यत धार्मिक और साहित्यिक ग्रन्थों में यत्र तत्र प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक सामग्री से ही सन्तोष करना पड़ता है। फाहियान, ह्वॉनचांग, इब्नबतूता आदि कई विदेशियों द्वारा कालान्तर में की गई यात्राओं के विवरण हमारे इतिहास के लिये अवश्य ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। हमारे देश में मुस्लिम शासन काल से विधिवत् इतिहास-लेखन की परम्परा प्राप्त होती है। मुस्लिम शासक स्वय इतिहास के प्रेमी होते थे। अपने समय का इतिहास वे स्वयं आत्म-चरित्र के रूप में लिखते थे और अपने दरबारी इतिहासकारों से विशेष व्यय कर लिखवाते थे। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के लिये इन मुस्लिम इतिहासकारों के ग्रन्थ विशेष प्रमाण माने जाते हैं। मुस्लिम इतिहासकारों की भांति युरोपीय इतिहासकारों ने भी हमारे देश का इतिहास विशेष रुचि और श्रम से लिपिबद्ध किया है। जिस प्रकार कर्नल जेम्स टॉड द्वारा लिखित "एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज़ आफ़ राजस्थान" अपर प्रसिद्ध नाम "टॉड राजस्थान" राजस्थान के इतिहास का मूल ग्रन्थ माना जाता है उसी प्रकार अलेक्जेंडर किनलॉक फार्बस का "रासमाला" नामक प्रस्तुत ग्रन्थ गुजराती इतिहास का एक लोकप्रिय मूल ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। "रासमाला" के आधार पर न केवल गुजराती भाषा में वरन् कई अन्य भारतीय भाषाओं में भी विपुल साहित्य का निर्माण समर्थ साहित्यकारों द्वारा किया गया है। रासमाला में गुजरात और संलग्न प्रदेशों से सम्बन्धित विभिन्न सरस घटनाओं का बड़े परिश्रम से संकलन किया गया है। कई घटनाओं का समर्थन अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से भी हो जाता है और इस प्रकार रासमाला हमारे देश का एक प्रधान इतिहास ग्रन्थ माना गया है।

हिन्दी में इस ग्रन्थ का कोई अनुवाद उपलब्ध नहीं होने से हमारे कई हिन्दी-भाषा-भाषी पाठक इससे अपरिचित रहे हैं। श्री गोपालनारायणजी बहुरा ने रास-माला का प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद विशेष श्रम से तैयार किया है और इनके द्वारा कई आवश्यक टिप्पणियां भी यथास्थान जोड़ी गई हैं। स्व० पुरोहित हरिनारायणजी के निर्देशन में श्री बहुरा ने यह अनुवाद कार्य किया है। प्रकाशन के पूर्व मैंने अनुवाद को देखा है और टिप्पणियों सम्बन्धी सुझाव भी दिये हैं। मेरे ही सुझावों के अनुसार प्रस्तुत अनुवाद का मिलान गुजराती अनुवाद से किया गया है और उसके अनुसार आवश्यक टिप्पणियां जोड़ी गई हैं। इस प्रकार यह अनुवाद विशेष उपयोगी हो गया है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये श्री बहुराजी हमारी बधाई के पात्र हैं। विश्वास है कि साहित्य-जगत में "रासमाला" का यह अनुवाद विशेष आदरणीय होगा और हिन्दी पाठक इससे पूर्ण रूपेण लाभान्वित होंगे।

मुनि जिनविजय

जयपुर, ता० १५. २. ५८ ई०

अनुवादक की ओर से

भारत में जब मुसलमानों की सत्ता अस्त हो गई और ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने अपना शासन जमाया तो इंग्लैण्ड से कितने ही अफसर यहाँ आए और आते रहे। कम्पनी की सेवाओं के निमित्त ऐसे अफसरों की वहीं पर नियमित शिक्षा-दीक्षा भी होने लगी। ये अफसर फौजी और सिविल दोनों ही प्रकार के होते थे और अपनी शिक्षा एवं शासकों की रीति-नीति के अनुसार भारत में आकर शासन-कार्य चलाते थे। इन्हीं अधिकारियों में से बहुत से ऐसे भी आए जो विद्या और कला के प्रेमी होने के साथ साथ यहां के देशवासियों के प्रति सद्भाव रखते थे और उनके रहन-सहन, रीति-रिवाजों तथा यहां की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सामग्रियों में रस लेते थे। अलॅक्जण्डर किनलॉक फार्बस भी ऐसे ही सज्जन अंग्रेजों में से थे। वे 'रासमाला' नामक ग्रन्थ की रचना करके अपनी अमरकीर्ति इस संसार मे छोड़ गए हैं।

फार्बस साहब का जन्म लन्दन में सन् १८२१ ई० में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् वे स्थापत्य-कलाकारों के एक संस्थान में कुछ समय तक कार्य करते रहे; इसी कारण आगे चलकर भारतीय चित्र-कला में इनकी सुरुचि और सफल रेखा-चित्रांकन में सफलता हमारे सामने आती है। १८४० ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में प्रविष्ट हो कर १८४३ में वे बम्बई आ गए। इसके तीन वर्ष बाद ही वे अहमदाबाद में सहायक कलक्टर नियुक्त हुए और तभी से गुजरात के प्राचीन साहित्य और वीर-काव्यों के अध्ययन में संलग्न हो गए। १८४८ ई० मे वढ़वान के प्रतिभाशाली कवीश्वर दलपतराम डाह्याभाई उनके सम्पर्क में आए। इस मणिकाञ्चन-योग के परिणाम में रासमाला बनकर तैयार हुई। फार्बस साहब ने आवश्यक सुविधाओं का प्रबन्ध किया और

कवीश्वर ने गुजरात में घूम-घूम कर ऐतिहासिक रासों और वार्तादि का संग्रह सम्पन्न किया। महीकांठा में पोलिटिकल एजेण्ट नियुक्त होने के बाद फार्बस साहब राजपूत राजाओं और स्थानीय परिस्थितियों के सीधे सम्पर्क में आए जिनका सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत ग्रन्थ और उनके अन्य लेखों में स्पष्टरूप से व्यक्त हुआ है। सन् १८५४ के मार्च मास में फार्बस महोदय छुट्टी पर इंग्लैंड गए और वहां पर इण्डिया आफिस के आलेखों का अध्ययन करने की अनुमति प्राप्त करके रासमाला की तैयारी में लग गए। इसके फलस्वरूप १८५६ ई० में रिचार्डसन ब्रादर्स, २३, कार्नहिल द्वारा रासमाला ग्रंथ के चार भाग दो जिल्दों में प्रकाशित हुए। उसी वर्ष वे भारत लौट आए और सूरत मे कार्य-वाहक जज एवं गवर्नर के एजेन्ट नियुक्त हुए। इस समय वे स्वतंत्र विचारक के रूप में बॉम्बे-क्वार्टर्ली में लेख लिखने लगे थे। जब भारत में १८५७ के स्वतंत्रता-संग्राम के बादल घिरने लगे तो वे अपने लेखों में ब्रिटिश सरकार की भूलों और गलत नीति का विवेचन करने में भी कभी न हिचकिचाए और प्रजा में जो असन्तोष के कारण उनके ध्यान मे आए उन पर स्पष्ट रूप से अपने विचार प्रकट किए। भूस्वामियों और देशी राजाओं के प्रति सरकार के रुख और नीति की उन्होंने खुलकर आलोचना की थी। साथ ही देशी राजाओं को भी सामयिक चेतावनी देने में वे न चूके।

स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् फार्बस साहब की नियुक्ति खानदेश के कार्य-वाहक जज के पद पर हुई और तदनन्तर १८६१ ई० मे वे गवर्नमेंट के कार्य-वाहक सेक्रेट्री नियुक्त हुए। उसी वर्ष वे सदर अदालत के जज और फिर १८६२ ई० में हाई कोर्ट के जज बनाए गए। सन् १८६४ ई० में उनके सहयोगी जज मित्रों ने बताया कि उनके स्वास्थ्य में बहुत खराबी मालूम होती थी। निदान करने पर उनके मस्तिष्क में रोग का होना पाया गया। यह अनुपयुक्त जलवायु वाले स्थान में रह कर २० वर्ष तक अथक दिमागी परिश्रम करने का परिणाम था। वे वायु परिवर्तन के लिए पूना गए परन्तु कोई लाभप्रद परिणाम न निकला। उनकी

दशा विगड़ती गई और ३१ अगस्त को ४३ वर्ष की अल्पायु में ही वे इस असार ससार को छोड़ कर स्वर्ग सिधार गए।

फार्बस साहब उन अंग्रेजों में से थे जिन्होंने इस देश में रह कर यहां के निवासियों, उनके धर्म, साहित्य, संस्कृति, रीति-रिवाजों, भौगोलिक परिस्थितियां, राजवशों, उनके उत्थान और पतन तथा पारस्परिक सम्बंधों के इतिहास का परिश्रमपूर्ण अध्ययन करके अपने देश-वासियों को उनसे अवगत कराने के साथ साथ अपनी साहित्य साधना करते हुए इस देश के विद्वानों को भी अनुसधान का वह मार्ग दिखाया है जिससे पिछली कुछ शताब्दियों में वे दूर चले गए थे और जिसका अनुसरण करते हुए वे लोग अपने इतिहास और संस्कृति को समझने समझाने में बहुत कुछ कृत-कार्य हुए हैं। अहमदाबाद में गुजराती वर्नाक्यूलर सोसायटी और बम्बई में गुजराती सभा फार्बस साहब के ही सत्प्रयत्नो से स्थापित हुई थी। इनके द्वारा जो साहित्य-सेवा होती रही है वह विद्वानों की जानकारी से दूर नहीं है। गुजराती सभा के तो प्रथम अध्यक्ष भी फार्बस महोदय ही थे और उनके जीवन के अतिम वर्ष में रायल एशियाटिक सोसायटी की बम्बई शाखा की अध्यक्षता ग्रहण करने के लिए भी उनसे प्रार्थना की गई परन्तु क्रूर और कराल काल ने उन्हे उस महत्त्वपूर्ण पद का उपभोग ही नहीं करने दिया।

गुजरात में फार्बस साहब का बहत मान था। वे अपने साहित्यिक कार्यों एवं कलात्मक अभिरुचि के कारण वहां के समाज में परम लोकप्रिय व्यक्ति थे। उनकी प्रशंसा में कवि की प्रतिभा भी मुखरित हो उठी और उसने कह दिया—

"करेल कीर्ति मेर, दुनियां मां ते देखवा।
फार्बस रूपे फेर, भोज पधार्‌यो भूमि मां॥"

अपनी कीर्ति को पराकाष्ठा पर पहुँची हुई देखने के लिए राजा भोज पुनः शरीर धारण करके फार्बस के रूप में पृथ्वी-पर अवतरित

हुआ है। उनके पुस्तक प्रेम के विषय में कवि ने कहा है—

"कुथ्या पुस्तक कापिने,अेनो न करीश अस्त।
फरतो फरतो फारबस, ग्राहक मल्यो गृहस्थ॥"

पुस्तक को काटने वाले कीड़े! अब तू पुस्तक को काटकर नष्ट मत कर, फार्बस जैसा ग्राहक घर बैठे मिल गया है।

कर्नल जेम्स टॉड ने राजस्थान के क्षत्रियों के सुयश का रक्षण किया, ग्राण्टडफ ने मराठों के इतिहास पर कार्य किया उसी प्रकार अलक्ज़ेण्डर किन्लॉक फार्बस ने गुजरात के इतिहास को 'रासमाला' रचकर रक्षित किया :—

"करनल टॉड कुलीन विण, क्षत्रिय यश क्षय थान।
फार्बस सम साधन विना, न उद्धरत गुजरात॥"

रासमाला की रचना चारणों तथा भाटों से प्राप्त सामग्री, गुजरात के ऐतिहासिक काव्यों, रासड़ों, वार्ताओं और शिलालेखों के आधार पर हुई है। अतः इसमें केवल शुष्क ऐतिहासिक तथ्यों का संग्रह ही नहीं हुआ है और न इसे मात्र ऐतिहासिक ग्रंथ ही कहा जा सकता है। ऐतिहासिक आधार इस माला का सूत्र है, काव्य इसका सौरभ और वार्ताएं इसकी शोभा बढ़ाने वाले अन्य उपकरण। जिन आधारों को ले कर इस ग्रंथ को रचा गया है उन्हीं के अनुरूप इसके परिणाम भी निकले हैं। ऐतिहासिक शोध में जहां 'रासमाला' के संदर्भ उद्धृत किये जाते हैं वहां गुजराती, हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही उपन्यासों, नाटकों, लघुकथाओं आदि के लिए इसी ग्रंथ से कथा-वस्तुएं ग्रहण की गई हैं और की जा रही हैं।

यों तो गुजरात का इतिहास समस्त भारत के इतिहास से सम्बद्ध है, परन्तु राजस्थान से इसकी नींवसींव मिली होने के कारण यहाँ की ऐतिहासिक घटनाएं आपस में बहुत कुछ अन्योन्याश्रित हैं। गुज़रात

और राजस्थान की भाषा भी बहुत पूर्व एक ही रही है, ऐसा विद्वानों का मत है। आज की राजस्थानी और गुजराती मे भी बहुत साम्य है। इसीलिए रासमाला में सन्दर्भित कथाएं और रास यत्किञ्चित् परिवर्तित रूप में राजस्थान में भी प्रचलित हैं और वे सर्व साधारण के मनोरञ्जन की सामग्री है।

रासमाला का गुजराती अनुवाद बहुत पहले हो चुका था परन्तु हिन्दीतर भाषाओं को न जानने वाले लोगों को ग्रन्थ के मूल स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता था। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए सन् १६३८ मे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के मंत्री श्री रामनारायणजी मिश्र ने स्वर्गीय विद्याभूषण श्री हरिनारायणजी पुरोहित से अनुरोध किया था कि वे रासमाला का हिन्दी अनुवाद अपनी देख रेख में करवा दे। इसके लगभग एक वर्ष बाद स्वर्गीय श्री पुरोहितजी ने मुझे यह कार्य कर देने के लिए कहा। मैंने उनकी आज्ञानुसार यह काम हाथ मे ले लिया परन्तु दूसरे बहुत से कामों, मेरे पिताजी की मृत्यु एव अन्य जमीन जायदाद आदि के झंझटों के कारण, मै इस कार्य को जल्दी पूरा न कर सका। फिर भी सन् १६४४ मे मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ की दो जिल्दों मे से पहली जिल्द का अनुवाद पूरा कर लिया था और स्वर्गीय पुरोहितजी को दिखा दिया था। उन्होंने सभा को इस विषय में लिखा परन्तु कागज आदि की परिस्थितियाँ अनुकूल न होने के कारण सभा ने उस समय इस ग्रथ के प्रकाशन का कार्य हाथ में नहीं लिया। इसके थोडे ही समय बाद दिसम्बर सन् १६४५ में श्री पुरोहित जी का स्वर्गवास हो गया। मेरे अनुवाद की पाण्डुलिपि मेरे ही पास यथावत् पड़ी रही। इसके पश्चात् सन् १६४७-४८ में मैंने सभा को पत्र लिखा परन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला।

सन् १६५० में राजस्थान सरकार ने राजस्थान संस्कृत मडल की स्थापना की और देश के सुविख्यात शोघ विद्वान् पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय जी उक्त मडल के सदस्य रूपेण जयपुर आये। कुछ ही दिनों बाद राजस्थान सस्कृत मंडल के अन्तर्गत राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर

की स्थापना हुई और श्री मुनिजी इसके सम्मान्य संचालक के पद पर प्रतिष्ठित हुए। गुजरात प्रांत से श्री मुनि जी के जो सम्बन्ध हैं वे सर्व विदित हैं। अतः मैंने यह अनुवाद श्री मुनिजी को दिखाया और उन्होंने मूल पुस्तक को अपने हाथ में रखकर मेरे अनुवाद को नियम से कई दिनों तक सुना, जहां नामों और स्थानों आदि की भूल रह गई थी उसे ठीक कराया तथा कितने ही स्थलों पर अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर टिप्पणियां लिखाई। इसके अनन्तर श्री मुनिजी महाराज ने मुझे दीवान बहादुर रणछोड़ भाई उदयरामकृत इस ग्रन्थ के गुजराती अनुवाद, (फार्बस गुजराती सभा द्वारा सन् १९२२ में प्रकाशित) का पता बताया और उक्त पुस्तक में से आवश्यक टिप्पणियां देने के लिए परामर्श दिया। मैंने उक्त पुस्तक के दोनों भाग मंगवा कर उनमें से आवश्यक स्थलों पर टिप्पणियां भी हिन्दी रूपान्तर करके लगा दीं। गुजरात के इतिहास-विषयक अन्य ग्रन्थों में से भी यथाशक्ति जो सूचनाएँ प्राप्त हो सकी उन्हें पाद टिप्पणियों में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रंथ पर जितना कार्य होना चाहिये था वह मैं कर सका हूँ। यह सब कार्य सन् १९५४ तक पूरा हो गया था परन्तु इस पुस्तक के छपने का कोई अवसर नहीं आया।

अभी कोई ५–६ मास पूर्व स्वस्तिक पुस्तक सदन, जयपुर के संचालक श्री उमराव सिंहजी 'मङ्गल' मुझ से मिले और रासमाला के हिन्दी अनुवाद को देखा। इन उत्साही, अध्यवसायी, कार्यकुशल और विद्याप्रेमी मित्र ने इस अनुवाद को अपनी प्रकाशन योजनाओं में सम्मिलित कर लिया और बड़े परिश्रम एवं लगन के साथ काम करके यह पूर्वार्द्ध का प्रथम भाग पाठकों को प्रस्तुत कर रहे हैं। यद्यपि सहज सौजन्यवश पुस्तक के सम्पादक की जगह श्री मङ्गल जी ने मेरा नाम दिया है परन्तु वास्तव में इसकी छपाई, गैट अप और आयोजना आदि के कर्ताधर्ता यही हैं। अतः एतन्निमित्त पाठकों के सभी धन्यवाद इन्हीं को प्राप्य हैं; हाँ, जो त्रुटियाँ रह गई हैं, और जो थोड़ी भी नहीं हैं, वे सब मेरी हैं।

अनुवाद के विषय में मुझे केवल इतना ही कहना है कि इतिहास-शास्त्र और भाषा पर अधिकार न होते हुए भी गुरुजनों की आज्ञा पालन करने के लिए ही मैंने यह कार्य करने का साहस किया है। यह कैसा भी हुआ हो परन्तु इससे मूल ग्रन्थ के महत्त्व में कोई कमी आने वाली नहीं है। यदि इसके द्वारा वे लोग जिनकी मूल ग्रथ तक गति नहीं है इसके किसी अश का भी आस्वादन कर सकेंगे तो मै अपने प्रयास को सफल मानूंगा। फिर, ऐसे ग्रन्थों का अब हिन्दी में अनुवाद हो जाने की आवश्यकता पर भी दो मत नहीं हैं। अन्त में, मुनि श्रीजिन विजयजी के प्रति उनके सत्परामर्शो और मार्गदर्शन के लिए पुनः कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य मानता हूँ कि जिनके बिना इस पुस्तक को यह रूप प्राप्त न होता। श्री मगलजी एव अन्य जिन मित्रों ने इसके प्रकाशन मे सोत्साह मेरा सहयोग दिया है उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ। जिन विद्वानों ने अपना अमूल्य समय देकर मुद्रित पृष्ठों को पढ़ा है तथा सम्मतियाँ प्रदान की हैं उनका भी मैं आभारी हूँ।

श्री महाशिवरात्रि, सम्वत् २०१४ वि०

गोपाल नारायण

ग्रन्थकर्त्ता की प्रस्तावना

विद्वानों और इतिहासज्ञों के रुचिकर विषय "प्राचीन भारत" की ओर लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित है; इससे किञ्चित् निम्न श्रेणी के कार्य, अर्थात् मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अनुसंधान के प्रति अपेक्षाकृत थोड़ा प्रयत्न हुआ है। यद्यपि अशोक और चन्द्रगुप्त के समय की शोध करना एक ऊँचा विषय है परन्तु यह बात किसी दशा में भी नहीं भुलाई जा सकती कि उपर्युक्त समय से अल्पतर प्राचीन काल वर्तमान हिन्दुस्तान से व्यावहारिक रूप में अधिक सम्बद्ध है। वस्तुत' वर्तमान भारत से आरम्भ करके तत्काल पूर्ववर्ती समय को शोध के लिये ग्रहण करने से हमको एक दृढ़ आधार प्राप्त हो जाता है क्यों कि जब तक इस समय का वृत्तान्त अन्धकाराच्छन्न रहेगा तब तक इसके पृष्ठ में भासमान प्रकाश को प्राप्त कर लेना संशयात्मक ही रहेगा, फिर चाहे वह प्रकाश कितना ही द्युतिमान् और स्पष्ट क्यों न हो कितनी भी अवधि तक इस हिन्दुओं के देश में निवास करने वाले विदेशी का ध्यान यहाँ के निवासियों के रीति रिवाजों और रहन सहन की ओर गए विना नहीं रह सकता जो प्रत्यक्ष ही उस समय की सामाजिक अवस्था के अवशिष्ट प्रतीक हैं जिसको बीते हुये अभी अधिक समय नहीं हुआ है। ये ऐसी झांकियां हैं जो किसी भरे पूरे जलपोत के प्रातिभासिक आकार के समान आवरणयुक्त वातावरण में चमत्कारिक रीति से वक्रता ग्रहण करके विविधाकृतियों में परिलक्षित होती हैं। (जैसे कि इटली और सिसली को पृथक् करने वाले प्रशान्त समुद्रीय जल में वाहनों के प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं और इन दीर्घीकृत उलटे प्रतिबिम्बों से मूल वस्तुओं का आभास ग्रहण किया जाता है।)

जिन लोगों से राज्य छीन कर मुसलमानों ने अपनी सत्ता स्थापित की थी उन्हीं का स्पष्ट और दृढ़ प्रभाव अवशिष्ट मुसलमान-कालीन स्मृति-चिन्हों में परिलक्षित होता है और इन्हीं के आधार पर हम इस तथ्य पर पहुंचते हैं कि आर्यावर्त के मैदानों में अनेक वैभवशाली राजधानियों के नगर पश्चिमी पर्वतों की ओर से हुए मुसलमानी आक्रमणों से पूर्व वर्तमान थे। इस प्रकार उस पूर्वकालीन वैभव के वास्तविक चिन्ह हमें उपलब्ध होते हैं और उनके आधार पर हम प्रतापपूर्ण कन्नौज, रहस्यमय योगिनीपुर और कल्पना के आधारभूत भोज की राजधानी धारा नगरी के रेखाचित्र तो बना ही सकते हैं। ऐसा नहीं है कि जिन नगरों का हमने उल्लेख किया है वे ही उस समय अस्तित्व में थे अपितु इनकी श्रेष्ठता को मान्य करने वाले प्रदेशों की अपेक्षा अधिक विस्तृत प्रदेश पर कल्याण के राजाओं ने अपने राज्यका प्रसार किया था और वह परमार, चौहान व राठोड़ों की पंक्ति में परिगणित अणहिलपुर के सोलंकी के राज्य से कम नहीं था।

इस पुस्तक में हमने वनराज के नगर की कथा लिखी है। इस नगर का नाश होने के पश्चात् वहीं पर कितने ही छोटे-छोटे हिन्दू राज्य और संस्थान स्थापित हो गए थे जिनमें से बहुत से तो आजतक विद्यमान हैं। इन्हीं की ओर इस पुस्तक में पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। हम इस बात को भलीभांति समझते हैं कि इस पुस्तक का विषय केवल भारतीय ही नहीं है अपितु एक प्रान्त विशेष तक परि-सीमित है इसलिये यह सर्व साधारण के लिये रुचिकर होगा, इसमें संदेह है। फिर, इसका विवरण लिखने में मैं अपनी सीमित परिस्थि-तियों से भी अनजान नहीं हूँ, तथापि मैं आठ वर्ष तक गुजरात में रहा हूँ और ताप्ती के तट से बनास नदी के किनारे तक बसे हुये भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के निजी एवं सार्वजनिक सम्पर्क में आया हूँ। इससे मुझे इस कार्य में किसी अंश तक सफलता मिलने की सम्भावना है।

मैं प्राच्यविद्या का ज्ञाता नहीं हूँ, इस बात को आरम्भ में ही स्वीकार करते हुये, यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मुझे हिन्दू विद्वानों

का सहयोग प्राप्त हुआ है; इससे ग्रन्थ-संकलन की कुशलता में तो किसी प्रकार की कमी आ सकती है परन्तु पुस्तक का महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं हो सकता।

व्यापारी लोग प्रायः साहित्यिक विषयों के प्रति निस्पृह होते हैं परन्तु स्वर्गीय श्री वीरचंदजी भंडारी जो मारवाड़ के निवासी तथा जैन धर्म का पालन करने वाले थे, संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं के कुशल जानकार थे। उन्होंने मुझे प्रबन्धचिन्तामणि की पुस्तक देकर ही उपकृत नहीं किया अपितु इसका अनुवाद करने में भी साहाय्य प्रदान किया, जिसके बिना यह कार्य होना संभव नहीं था।

सोरठ की सीमा पर स्थित वढ़वान नगर के निवासी श्री दलपतराम डाह्याभाई ब्राह्मण का तो मैं और भी अधिक आभारी हूँ।

मुझे गुजरात में रहते अधिक समय नहीं हुआ था कि एक बार सरकारी काम के प्रसंग में एक पत्र मेरे सामने रक्खा गया जिस पर दो भाटों की सही के साथ ऐसा —।।—> कटार का निशान भी बना हुआ था। इसको देखकर मेरी उत्कण्ठा जागृत हुई और मैंने पूछ-ताछ करके इस जाति के लोगों से यथाशक्य सम्पर्क स्थापित किया। भाट लोगों के ग्रन्थ-भण्डारों की झांकी प्राप्त करके मेरी जिज्ञासा शान्त न होकर अधिक बलवती हो गई। जिन लोगों के पास रासों का भण्डार था और जिनमें सम्मिलित होने की मेरी इच्छा थी उनको समझाने के लिये तथा भण्डार का ताला खुलवाने के लिये भाटों की बातों का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक था, इस कार्य के लिये मुझे किसी देशीय मनुष्य की सहायता प्राप्त करना परम आवश्यक था। सौभाग्य से तुरंत ही 'कवीश्वर' का नाम मेरे देखने में आया, क्योंकि दलपतराम को उनके देश के लोगों ने यह उपाधि प्रदान की थी। इस प्रकार ई० सन् १८४८ में ये सज्जन उपयोगी सहायक के रूप में मेरे पास आये और तभी से मेरे साथ रहने लगे। हमारे प्रयत्नों में किंचित् सफलता के दर्शन हुए, इससे बहुत पहिले ही मैंने उनको गुजरात के विभिन्न भागों में

घूमकर रास, वार्त्ताएं और लेख एकत्रित करने की सुविधाएं और साधन देने का प्रबन्ध कर दिया था। लोगों के अज्ञान, ईर्ष्या और लोभवृत्ति के कारण जो बहुत से विघ्न हमारे मार्ग में आये उनका यदि मै यहां पर वर्णन करूं तो पाठकों का मनोरञ्जन तो अवश्य होगा परन्तु वे उससे उकता भी जावेंगे। जो थोड़ी सी बाते आगे लिखी जा रही हैं उन्हीं से पाठक इनका अनुमान लगा सकेंगे। कुछ लोगों की धारणा थी कि मुझे सरकार ने छुपे हुए खजाने ढूँढने के लिये नियुक्त किया था, कुछ लोग सोचते थे कि सरकार उनकी जमीने खालसा करना चाहती थी और मेरा यह कार्य उनके अधिकारों मे त्रुटियॉ ढूंढने की दिशा मे हो रहा था; मुझे ऐसी भी सूचनाये दी गई कि किसी वंश विशेष के भाट की वही में से नकल करवाने का उचित पारिश्रमिक उसको एक गांव का पट्टा कर देना होगा। अन्त मे, सरकारी कार्यवश मैं वाघेला झाला और मोहिलवंश के ठाकुरों के सम्पर्क में आया और मुझे तुरन्त ही मालूम हो गया कि भाटों और चारणों की खुशामद करने और उनको लालच देने की अपेक्षा इन परपरागत सम्मान्य ठिकानों के स्वामियों से प्राप्त होने वाली थोड़ी सी भी सूचना अधिक लाभप्रद और उपयोगी सिद्ध होगी। मै महीकाठा का पोलिटिकल एजेन्ट था इससे उक्त विचार के अनुसार राज्य-कर्मचारियों की सहायता से मै इसी प्रान्त में अपना काम पूरा करने मे समर्थ हुआ, इतना ही नहीं अपितु गायकवाड़ के राज्य से भी मुझे ऐसी ही सुविधाये प्राप्त हो गई (यद्यपि पहिले तो एक बार वहां के अधिकारियों ने इसको अच्छा नहीं समझा था) और बड़ौदा सरकार की ओर से पाटण के सूबेदार बाबा साहिब की कृपा से मुझे द्वयाश्रय की एक प्रति और अन्य बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई। ये वस्तुये मुझे अणहिलपुर से मिली थीं जो ऐसी आकर्षक वस्तुओं का केन्द्र है।

मेरा शोधकार्य प्रायः बोझिल दफ्तरी कर्त्तव्यों को पूरा करने से बचे हुए समय में चलता था। मेरी शोध जैन ग्रन्थों और भाटों की वहियों तक ही सीमित नहीं थी, अपितु मैंने हिन्दुओं के प्रत्येक प्रचलित रीति रिवाज का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया और विशेषतः

उन बातों का, जो मेरे द्वारा संगृहीत शोध-सामग्री और पुस्तकों में उल्लिखित थी। मैंने देवस्थानों, कुओं, बावड़ियों और छतरियों पर लगे हुए शिलालेखों की नकलें करवाईं तथा हिन्दू शिल्पचातुर्य के प्रतीक प्रत्येक खंडहर का भी यथाशक्य निरीक्षण किया। इस अन्तिम प्रकार के प्रयत्नों में अहमदाबाद के नवीन जैन मन्दिर के सूत्रधार प्रेमचन्द सलाट ने मेरी बहुत सहायता की तथा त्रिभुवनदास और भूधर डाह्याराम नामक दो बुद्धिमान सुथारों का भी मुझे पर्याप्त साहाय्य प्राप्त हुआ।

इसी बीच में गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी की स्थापना हुई और हमारे कविश्वर ने जो ऐसे कामों के लिये सदैव तत्पर रहते थे, दो निबन्धों पर पारितोषिक प्राप्त किया। ये निबन्ध "गुजरात में प्रचलित अन्धविश्वास" और "हिन्दू जातियां" विषयों, पर लिखे गये थे। इन दोनों ही निबन्धों का मैंने प्रस्तुत पुस्तक के चौथे भाग में विस्तृत उपयोग किया है।

मुझे थोड़े समय के लिये इंगलैण्ड जाना पड़ा और वहां पर ईस्ट इण्डिया कंपनी की कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स (संचालक मण्डली) ने इण्डिया हाउस के आलेखों को देखने की आज्ञा प्रदान करदी जिससे मैं अपने संग्रह की उपयोगी सामग्री का मिलान करके इस कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हुआ। अपने परिश्रम के फलस्वरूप इस ग्रन्थ को अब मैं जनता की सेवा में प्रस्तुत करता हूँ। यह कैसा भी बन पड़ा हो परन्तु इससे स्थानीय अधिकारियों को कुछ सहायता मिलेगी और विलायत में बैठे हुए मेरे कुछ देशवासियों का भी उनके वैसी ही सुप्रजा, "गुजरात के हिन्दुओं" की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने में सफल होगा, ऐसी मेरी आशा है।

मेरा यह संग्रह विविध रासों में से संकलित है अतः मैंने इसका नाम रासमाला रखा है।

विषय-सूची

प्रकरण ५

चामुण्ड, वल्लभ–दुर्लभ–सोमनाथ का नाश

प्रकरण ६

भीमदेव (प्रथम) १०२२ ई० से १०७२ ई० तक ५० वर्ष

प्रकरण ७

राजाकर्ण सोलंकी–मीनलदेवी का कार्य भार, सिद्धराज

रासमाला

प्रकरण १

गुजरात की स्वाभाविक सीमा–शत्रुञ्जय–वलभीपुर

गुजरात प्रान्त पश्चिमी हिन्दुस्तान में है और यह दो भागों मे विभक्त है। इनमें से एक तो खण्डस्थ भाग है और दूसरा द्वीपकल्पस्थ। इस द्वीपकल्पस्थ भाग का बहुत सा हिस्सा ओमन (उम्मॉ दरिया) के किनारे के सामने और सिन्ध तथा मकरान के किनारे के नीचे अरब-समुद्र में निकला हुआ है। साधारणतया हिन्दू लोग गुजरात के खण्डस्थ भाग अथवा गुजरात प्रधान की दक्षिणी सीमा नर्मदा नदी को ही मानते हैं परन्तु फिर भी इस प्रान्त की भाषा नर्मदा से लेकर बम्बई में बहुत दूर तक दमाऊं खास या सेन्ट जान (सिंजान) तक बोली जाती है। विन्ध्याचल और अरावली पर्वत को मिलानेवाली पहाड़ियों की श्रेणी नर्मदा नदी के किनारे से उत्तर की ओर बढकर इस प्रान्त की उत्तर-पूर्वीय सीमा बनाती है और मालवा, मेवाड़ तथा मारवाड़ को गुजरात से पृथक् करती है। इसकी पश्चिमी तथा वायव्यीय सीमा कच्छ की खाड़ी और प्रायः पानी से भरा रहनेवाला खारी रण बनाते हैं, दक्षिणी और नैऋर्त्य कोण वाले किनारे सदा खम्भात की खाडी और अरब समुद्र के जल से प्रक्षालित होते रहते हैं। इस सीमा को देखते हुए इस प्रान्त का वायव्य कोण ही सब से अधिक अरक्षित है

जहाँ कच्छ के रण और आबू पहाड़ की तलहटी के बीच में एक सपाट मैदान आ गया है। गुजरात पर होने वाले सभी हमले प्रायः इधर ही से हुए हैं।

गुजरात के उत्तरपूर्व में आनेवाले पर्वत, जिनकी अनेक शाखाएं प्रान्त के समीपतर भागों मे फैली हुई हैं, सीधे, ऊँचे नीचे और दुरूह हैं। पहाड़ियों के स्कन्धों और इन पर्वतों के शिखरों के बीच की घाटियाँ जङ्गलों से हरी भरी हैं। इन जङ्गलों की सघन छाया में कितनी ही नदियाँ बहती हैं जिनके ऊँचे ऊँचे किनारे, लम्बे, गहरे और ऊबड़ खाबड़ खड्डों से कटे हुए हैं तथा इन (किनारों) पर झाड़ों और वनस्पति की अधिकता के कारण घने और दुर्गम्य जङ्गल खड़े हो गए हैं। जैसे जैसे इस मैदान की ओर आगे बढ़ते हैं, हमें जङ्गल कम नजर आने लगते है, नदियों के पाट अधिक चौड़े होते जाते है और उनकी गति मन्द होती जाती है। चलते चलते ये नदियाँ साबरमती, माही, अथवा नर्मदा मे से किसी एक से सगम करके अन्त में खम्भात की खाड़ी में जा मिलती हैं। गुजरात का बहुत सा दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश, जिसका विस्तार लगभग साठ मील है, कच्छ के रण से नर्मदा के किनारे तक तथा द्वीप के सीमाभाग पर खम्भात की खाड़ी के उत्तर-पूर्वीय किनारे तक फैला हुआ है। यह प्रदेश खुला हुआ और उपजाऊ मैदान है। इस भूभाग का अधिकांश और मुख्यतया साबरमती और माही के बीच का भाग सघन पेड़ों की झुरमुटों से ढ़का हुआ है। इनमें अधिकतर आमों के तथा दूसरे वृक्ष हैं जो सदा फलों से लदे रहते हैं और जिनके रंग विरंगे चमकदार पत्ते एक अद्भुत छटा दिखाते रहते हैं। एक महाराष्ट्र लेखक लिखता है कि सैकड़ों मीलों तक फैला हुआ यह प्रदेश इंगलिस्तान के उमरावों के अच्छे से अच्छे बगीचों

से भी बढ़कर होने का दावा कर सकता है। पहाड़ी के अधिकांश भाग में खेती-बाड़ी नहीं होती परन्तु जहाँ जहाँ पर थोड़ी बहुत खेती होती है वह भाग उपजाऊ जान पड़ता है। फसलों से भरे हुए खेत सरस और सुरक्षित दिखाई पड़ते है, आमों और अन्य फलदार वृक्षों की बहुतायत असाधारण जान पड़ती है। इस भाग की ऊँची नीची सतह और पहाड़ी तथा जगली दृश्यों की अधिकता के कारण ही मिस्टर एलफिन्स्टन ने लिखा है कि हिन्दुस्थान का और कोई प्रदेश इतना फलों फूलों से भरा पूरा और रमणीय नही है।

कच्छ के छोटे रण के किनारे मे लगभग २० मील की दूरी पर खारी पानी की झील शुरू होती है जो ठेठ खम्भात की खाड़ी के किनारे तक जा पहुंची है। यह झील मुख्य गुजरात और सोरठ तथा काठियावाड़ के बीच की सीमा बनाती है। सम्भव है पुराने जमाने में ये दोनो विभाग एक दूसरे से और भी अधिक भिन्न हों और सोरठ वास्तव में एक पृथक् द्वीप ही रहा हो। [१]

खम्भात की खाडी के पश्चिमी किनारे पर भावनगर से उत्तर की ओर कुछ मील दूर, मॉगी रग के कडे पत्थरों की एक पर्वत श्रेणी है जो शान्त सरोवर की सतह जैसे सपाट मैदान मे स्थित होने के कारण समुद्र की लहरों में झूलते हुए द्वीपगुच्छ के समान दिखाई पडती है। चमारडी ग्राम पर झुकी-सी हुई इन पहाडियों पर से ऐसा आनन्ददायक दृश्य दिखाई देता है कि जिसकी समानता भारत के थोडे ही ऐतिहासिक एव दतकथाओं में आए हुए प्राकृतिक वर्णनों मे उपलब्ध होती है।

(१) इस विषय की अधिक जानकारी के लिए 'बाम्बे ब्रान्च ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल के विभाग ५ वें के पृष्ठ १०६ मे मेजर फूलर जेम्स का लेख और 'एल्फिन्सटन्स इंडिया' के सन् १८४१ ई० के सस्करण के प्रथम भाग के पृष्ठ ५५८ को देखिए।

ऐसी किम्वदन्ती प्रचलित है कि किसी समय चमारड़ी ग्राम की चट्टानें समुद्र के जल से प्रक्षालित होती थीं, इसकी पुष्टि इस बात से हो जाती है कि बहुत सी चट्टानें अब भी समुद्र की लहरों के टकराने से पोली हुई नजर आती हैं। इन चट्टानों के बीच मे खड़े होकर देखनेवाले को पूर्व की ओर सुदूर क्षितिज तक फैला हुआ एक काली मिट्टी का मैदान दिखाई पड़ता है जो प्रतिवर्ष गेहूँ और कपास की फसलों से हरा भरा रहता है। यह मैदान, खाड़ी के गहरे भाग के निकटतम तथा ऊजड़ और खारी हिस्से को छोड़ कर इसके समतल भाग पर पूर्व की ओर रास्ता बनाने का व्यर्थ सा प्रयत्न करने वाले जलप्रवाहों के द्वारा जगह जगह पर कटा हुआ दिखाईपड़ता है। गरमी के दिनों में मन्द गति से अपने टेढ़ेमेढ़े एवं पतले मार्ग पर आगे बढ़ती हुई तथा वर्षा ऋतु में प्रबलवेग से इधर उधर मार्ग निकाल कर समुद्र की ओर दौड़ती हुई, परम शोभनीय और प्रतापशाली वलभी दुर्ग के प्राकारों को प्रक्षालित करती हुई नदी भी यहाँ से स्पष्ट दृष्टिगत होती है। यहाँ भावनगर की उस खारी पानी की खाड़ी अथवा प्राचीन छोटी नदी का भी पता चलता है जिसमें कभी रहस्यभरे कनकसेनवंश के व्यापारी जहाजों द्वारा समुद्र की ओर जाया करते थे। आज भी इस नदी में यद्यपि छोटे मोटे जहाज चलते हैं परन्तु यह अपनी प्राचीन विशालता के कुछ चिन्हों को प्रकट करती हुई, भावनगर (जिससे इसने अपना नाम पाया है)—के पास होकर बहती हुई गोधा बन्दर को पार करके वेग से पीरम की द्वीपकला मे लीन हो जाती है जो सोरठ (प्रधान) को पीरम के चमत्कारी एवं मनोरंजक टापू से पृथक् करती है। इसी मैदान में चमारड़ी से कुछ मील उत्तर की ओर आधुनिक 'वला' नामक ग्राम (जो आज कल गोहिल राजपूतों

के अधिकार मे है) तथा प्राचीन नगर वलभीपुर के खडहर विद्यमान है। कुछ आगे चल कर मानों दृश्य की ऐतिहासिकता का प्रतिपालन करती हुई एक मीनार खड़ी है जिससे लोलिआना नगर का पता चलता है। इसी स्थान से कितने ही वर्षों तक मुसलमान बादशाहों के सूबेदार प्रान्त का कर वसूल किया करते थे। एक टूटी हुई मसजिद के पास ही मरहठों ने एक अच्छा-सा मन्दिर बनवाया है जिसके सामने एक अशुद्ध और अस्पष्ट लेख खुदा हुआ है। "यहाँ दामाजी गायक-वाड तन्मय होकर श्री शिवजी के चरणचिन्हों का पूजन करते हैं। सवत १७६४" (सन् १७३८ ई०)।

चमारड़ी की पहाड़ियों पर खड़े होकर यदि दर्शक दक्षिण की ओर दृष्टि डाले तो उसे पर्वतश्रेणियों की एक चित्र-विचित्र रेखा-सी दिखाई पड़ेगी। प्रायद्वीप के भूभाग पर तथा पीरम के दक्षिण की ओर कुछ मीलों तक खोखरा की पहाड़ियाँ खड़ी हुई है। पास ही, पश्चिम की ओर 'सिहनगर' (सीहोर) को चट्टानों की श्रेणियों ने घेर रक्खा है। आगे चल कर सुदूर पश्चिम में पथरीली चोटियों पर बने हुए राज-प्रासादों के मुकुट को धारण करता हुआ, पालीताना की बुरजों और मीनारों से भी ऊँचा, पवित्र, शत्रुञ्जय पर्वत निद्रित-सी अवस्था में खड़ा दिखाई देता है।

जैनियों के २४ तीर्थङ्करों में से प्रथम आदिनाथ [१] ने शत्रुञ्जय पर्वत पर तपस्या की इसीलिए यह पवित्र माना जाता है—यह पर्वत समुद्र की

---

[१] इनके माता पिता के नाम और लक्षण आदि प्रतिमा के नीचे बनी हुई एक पट्टी पर लिखे रहते हैं जिसमे यह मालूम हो जाता है कि यह किस तीर्थङ्कर की प्रतिमा है।

जिस प्रकार हिन्दू लोग चार युग (सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) मानते

सतह से २००० फीट ऊँचा है। यहाँ पर आनेवाले यात्री को पर्वत की तलहटी में होकर पालीताना नगर को पार करते हुये उस मार्ग से जाना पड़ता है जिसके दोनों ओर बड़ के घने वृक्षों की कतार उसको धूप की तेजी से बचाने के लिए खडी हुई है। पर्वत के स्कंध पर दो तीन मील की कठिन चढ़ाई का एक रास्ता है जिसके दोनों ओर थोडी थोड़ी दूर पर बहुत से विश्रामस्थान, कुए और तालाब बने हुये हैं। इस मार्ग मे छोटे छोटे मन्दिर भी हैं। इन चैत्यों में तीर्थङ्करों के पवित्र पद-चिन्ह अंकित हैं। इसी मार्ग से होता हुआ यात्री अन्त में रंग बिरंगी चट्टानों से बनी हुई उस द्वीप-कल्प सुन्दर पहाड़ी पर पहुँचता है जहाँ जैन धर्म के प्रधान मन्दिर बने हुये हैं। इस पहाड़ी के दो शिखर हैं जिनको एक घाटी पृथक् करती हैं। इस घाटी का बहुत सा भाग देवालयों और लम्बी छतों तथा बगीचों से युक्त है। चारों ओर परकोटे पर तोपें रखने के स्थान बने हुए हैं। यह परकोटा कितने ही छोटे २ किलों मे विभक्त है और बहुत से मन्दिर तो स्वत. ही किले जैसे बने हुये हैं। दक्षिण शिखर पर कुमारपाल और विमलशाह द्वारा बनवाये हुये मध्यकालीन मन्दिर हैं जहां खोडियार देवी की महिमा से पवित्र तालाब के पास ही जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित है जिसके चरणों में एक पवित्र बैल चट्टानमे खुदा हुआ है। उत्तर शिखरपर एक अत्यन्त विशाल और प्राचीन देवालय है जिसके विषय में कहा जाता है कि दन्तकथाओं में प्रसिद्ध सम्प्रतिराज ने इसे बनवाया था। शत्रुञ्जय पर प्राचीन देवालय बहुत

हैं उसी प्रकार जैन लोग छः आरा मानते हैं। तीसरे आरा में कश्यप ऋषि के वंशज इक्ष्वाकु राजा के कुल मे नाभी नामक राजा हुआ जिसके मरुदेवी नाम की रानी थी। इन्हीं के पुत्र ऋषभदेव जैनो के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ हुए। ऋषभदेव से पहले पृथ्वी पर वर्षा नहीं होती थी, अग्नि की उत्पत्ति नहीं हुई थी, कोई कॉटोंवाला

काम हैं और समय समय पर जीर्णोद्धार होते रहने के कारण उनके आस पास खडे हुए नये मन्दिरों मे से उन्हे पहचान लेना कठिन है—परन्तु आधुनिक मन्दिर अपने अपने 'वृन्द' के नाम से पहचाने जा सकते हैं। भारतवर्ष भर में सिन्धु नदी से पवित्र गगा तक, हिमालय के बर्फीले मुकुटधारी शिखरों से रुद्र की सहज-अर्द्धाङ्गिनी कन्याकुमारी तक शायद ही कोई ऐसा नगर हो जहां से एक व अधिक बार पालीताना पर्वत पर विराजमान देवालयों के लिए बहुमूल्य भेट न आई हो। कितने ही रास्तों और प्रांगणोंवाले भव्य परकोटों से घिरे हुए आधे महलों जैसे, आधे किलों जैसे सगमर्मर के बने हुये ये जैन मन्दिर. साधारण मनुष्य की पहुँच के बाहर इस एकान्त में विशाल पर्वत पर स्वर्गीय प्रासादों के समान खडे हुए हैं। प्रत्येक मन्दिर के स्वल्पप्रकाश युक्त गम्भीर कक्षों में आदिनाथ, अजीतनाथ तथा अन्य तीर्थङ्करों की एक अथवा अधिक मूर्तियाँ विराजमान हैं। शान्त और उदासीन वृत्ति धारण किये हुये अलबस्तर की बनी हुई इन मूर्तियों के अङ्ग प्रत्यङ्ग चांदी के दीपकों के मंद प्रकाश मे दिखाई पड़ते हैं—अगरबत्तियों से वायु सुगन्धित होती रहती है—और सुनहरी गहनों तथा रग-बिरगी

वृक्ष नहीं था और ससार में विद्या और चतुराई के व्यवसायों का नाम भी न था। यह सब ऋषभदेव ने प्रकट किए, उन्होंने मनुष्यों को तीन प्रकार के कर्म सिखाए—(१) असि कर्म अथवा युद्ध और राजविद्या, (२) मसीकर्म अथवा शास्त्रविद्या और (३) कशीकर्म (कृषिकर्म) अथवा खेतीबाडी का काम। इसके बाद से ही लोग नियमित व्यवसाय करने लगे। अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी ने विक्रमीय सवत् से ४७० वर्ष पूर्व और ईसा से ५२६ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया। इसके तीन वर्ष आठ मास और दो सप्ताह बाद से पाचवें आरे का आरम्भ हुआ है। यह २१ हजार वर्ष तक चलेगा।

ऋषभदेव की स्थापना लाट देशातर्गत भृगुकच्छ (भडौंच) के पास नर्मदा के

पोशाकों से सुसज्जित श्रद्धालु स्त्रियाँ समवेत मधुर स्वर से भजन गाती हुई—चिकनी फर्श पर नगे पैरों धीरे धीरे प्रदक्षिणा करती हैं। वास्तव मे, शत्रुञ्जय को किसी पूर्वीय अद्भुतकथा (Romance) के उस कल्पित पर्वत से उपमा दी जा सकती है जहां के निवासी अकस्मात संगमर्मर की मूर्तियों मे बदल गये हों और उनको अपने हाथों से स्वच्छ एव दिव्य रखने के लिए अप्सराये नियुक्त की गई हों जिनकी भावनापूर्ण देवस्तुतियों की मधुर ध्वनि पवन में गूँजती रहती है।

पालीताना पर्वत के शिखर से पश्चिम की ओर देखने पर दिन के स्वच्छ प्रकाश में तीर्थङ्कर नेमीनाथ की तपस्या से पवित्र गिरनार पर्वत दिखाई देता है। उत्तर की ओर सीहोर के आस पास की पहाड़ियों से वलभीपुर के खडहरों के दृश्य को देखने मे कोई अड़चन नहीं पड़ती। आदिनाथ के पर्वत (शत्रुञ्जय) की तलहटी में सघन वृक्षो की पक्तियो मे से धूप में चमकती हुई पालीताना की मीनारे सामने ही दिखाई पड़ती है। रजत नदी के शत्रुञ्जयी टेढ़े मेढ़े पूर्वीय प्रवाह के साथ साथ चलती हुई दर्शक की दृष्टि सहज ही में क्षण भर देवालयों का मुकुट धारण करनेवाले तलाजा की सुन्दर चट्टानों पर ठहर जाती है और आगे चल कर दूसरी ओर उस स्थान पर भ्रमण करने लगती है जहां प्राचीन गोपनाथ और मधुमावती (महुआ) को समुद्र अपनी लहरों से प्रक्षालित करता है।

शत्रुजय जैन धर्म का अति प्राचीन और पवित्र स्थान है। यह सब तीर्थों में अग्रणी समझा जाता है और अनन्त निवृत्ति (निर्वाण) के साथ सम्बन्ध जोड़नेवालों के लिए विवाह मंडप के समान है।

तट पर वज्रसेन मुनि ने शकावतीर तीर्थ पर की। यह स्थान बाद में शकुनिका-विहार कहलाने लगा था।

ऐसा कहा जाता है कि अंग्रेजों के पवित्र स्थान 'आयोना' [१] की तरह प्रलयकाल में भी इसका नाश नहीं होगा। प्रायः हिन्दुस्थान के सभी भागों से इस पवित्र स्थान पर आकर तपश्चर्या व धर्मकार्य करनेवाले, तथा इस भूमि पर सम्पन्न होने के कारण अधिक फलप्रद अनुष्ठानों द्वारा मुक्ति एव निर्वाण प्राप्त करनेवाले पापमुक्त राजाओं की कितनी ही बडी बड़ी अद्भुत कथाएँ प्रचलित हैं। इस चमत्कारिक स्थान का यथार्थ वर्णन करना तीर्थङ्करों के परम श्रद्धालु भक्त के लिए भी कठिन है इसलिए हम पाठकों को न तो कपर्दी यक्ष, कुडराज, इस पर प्रसन्न होनेवाली अम्बिका तथा समुद्रविजय यादव के विषय में ही कुछ कह सकेंगे और न उन मन्दिरों के विषय में जिनको 'कल्याण' [२] के सुन्दर राजा 'सुन्दरराज' तथा उसकी अनुपम रानी ने इस पवित्र पहाड़ी पर बनवाये थे।

सौराष्ट्र के राजा शिलादित्य की आज्ञा से प्रसिद्ध वलभीपुर नगर के धनेश्वर सूरि ने "शत्रुञ्जय माहात्म्य" नाम का ग्रन्थ रचा था, उसी माहात्म्य नामक पुस्तक क आधार पर कुछ मनोरजक बाते यहाँ पर उद्धृत की जाती है।

---

[१] भिन्न भिन्न लोकों के बहुत से राजाओं ने 'आयोना' को अपना समाधि-स्थान क्यों बनाया, इसका कारण निम्नलिखित भविष्य वाणी को बतलाया जाता है:—

"जगत् का प्रलय होने से सात वर्ष पहले ही लाग जलप्रलय में डूब जायेंगे—आयर्लैंड पर भी समुद्र एक ही सपाटे में फैल जायगा—हरे भरे 'इसेल' का भी यही हाल होगा, परन्तु, 'कोलम्बो' का टापू फिर भी पानी पर तैरता रहेगा"

["ग्राहम्स एण्टीक्विटी ऑफ 'आयोना' नामक पुस्तक के आधार पर"]

[२] शत्रुञ्जय माहात्म्य मे राजा महीपाल, उसके ससुर कान्यकुब्ज देश के राजा कल्याणसुन्दर और उसकी रानी कल्याणसुन्दरी के विषय मे लेख अवश्य मिलता है परन्तु उसने सिद्धाचल पर्वत पर कोई देवालय बनवाया था ऐसा लेख कहीं नहीं मिलता।

ऋषभदेव का पुत्र भरतराज अयोध्या में राज्य करता था। वह शत्रुञ्जय से उत्तर की ओर सेना लेकर गया और एक महाशक्तिमान म्लेच्छ राजा से युद्ध करने लगा। पहली लड़ाई में तो भरत हार गया परन्तु दूसरी में विजयी हुआ। वह म्लेच्छराज हार कर सिन्धु नदी में उसी प्रकार भाग गया जैसे घबड़ाकर दुख में कोई बालक अपनी माता के अङ्क मे शरण लेता है। [१]

वर्षा ऋतु के कारण भरत को एक ही स्थान पर ठहरना पडा परन्तु इसके समाप्त होने ही उसके प्रधान मन्त्री सुषेन [२] ने सिन्धु नदी के उत्तर मे समुद्र और पर्वतश्रेणियों के बीच एक दुर्ग पर अधिकार कर लिया। भरत के छोटे भाई बाहुबली के पुत्र सोमयशा ने शत्रुञ्जय पर ऋषभदेव का मन्दिर बनवाया और स्वयं भरतराजने "सौराष्ट्र" (देश) की उपज इस पवित्र स्थान के लिए अर्पण कर दी। तभी से यह (सौराष्ट्र) देश देवदेश कहलाने लगा। भरत का सम्बन्धी शक्तिसिंह उस समय सोरठ का अधिकारी था। सुषेन की अध्यक्षता में इसी राजा की सेना की सहायता से गिरनार पर्वत पर से राक्षस निकाल दिये गये और उस पर ऊँचाई में मेरु पर्वत की समानता करनेवाले 'आदिनाथ' और 'अरिष्टनेमि' के मन्दिरों की स्थापना की गई। आगे चल कर म्लेच्छों ने शत्रुञ्जय पर्वत पर बने हुये मन्दिरों को विध्वस्त कर दिया और बहुत समय तक वहाँ निर्जनता का राज्य रहा। [३]

---

[१] इसका सविस्तार वर्णन रासमाला पूर्णिका अङ्क में छपेगा।

[२] 'प्रधान' का नाम 'सुषेन' नहीं 'सुबुद्ध' था—'सेनापति' का नाम 'सुषेन' था और 'दुर्ग' का नाम 'सिन्धु निष्कुट' था।

[३] विस्तृत विवरण रासमाला पूर्णिका अङ्क में दिया जावेगा।

जब विक्रम पृथ्वी को ऋणमुक्त करने के लिए उत्पन्न हुआ था तो उन्हीं दिनों 'भावड' नाम का एक गरीब जैन श्रावक और उसकी स्त्री भावुला काम्पिल्य नगर मे रहते थे। अपने घर आये हुये यतियों की सेवा के फलस्वरूप उन्हे चमत्कारी गुणोंवाली एक घोड़ी की प्राप्ति हुई। कुछ ही दिनों पश्चात् भावड़ प्रसिद्ध घोड़ों का व्यापारी हो गया और 'विक्रमादित्य' की घुड़साल को अपने बहुमूल्य घोड़ों से सुशोभित करके उस राजा से सोरठ प्रान्त में मधुमावती (नगरी) जागीर में प्राप्त करली। वहीं उसके जावड़ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो उसके मरने पर उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह बुद्धि के देवता वृहस्पति के समान अपने नगर का प्रबन्ध करने लगा। एक बार बुरे समय मे–समुद्र में ज्वार के वेग के समान मुद्गलों [१] की सेना का इस देश पर आक्रमण हुआ। वे सोरठ, 'लाट' [२] और कच्छ [३] आदि अन्य स्थानों से अन्न आदि सभी प्रकार का सामान और सभी वर्गों में से स्त्री बच्चों और मनुष्यों को लेकर अपने देश को लौट गये। भिन्न भिन्न जाति के अन्य बन्दियों के साथ जावड़ को भी पकड ले गये परन्तु इस व्यापारी ने वहाँ भी धन पैदा करके अपने धर्म का यथावत पालन किया। वह वहाँ भी उसी प्रकार धर्मकार्य करता रहा जिस प्रकार इस धर्मक्षेत्र में किया करता था। उसने वहाँ एक जैन-

---

[१] मूल पुस्तक मे ऐसा ही लिखा है। गुजराती अनुवाद मे 'मुगल' अथवा 'मोगल' लिखा है।

[२] माही और नर्मदा के बीच का प्रदेश।

[३] कच्छ का नाम प्राचीन ग्रन्थों में अनूपदेश, गर्तदेश भोजकट, उद्भट देश और सागरद्वीप देखने मे आता है। कच्छ के एक परगने वागड़ का नाम कच्छदेश भी मिलता है।

मन्दिर भी बनवाया। धार्मिक पुरुष वहाँ जाते थे। जावड़ उनका खूब सत्कार करता था। वे लोग वहाँ शत्रुञ्जय का बखान करते और भविष्यवाणी किया करते थे कि "उसका (शत्रुञ्जय का) पुनरुद्धार जावड़ के हाथों होना लिखा है।"

वे उसको कहा करते थे कि "पवित्र शत्रुञ्जय के रक्षक देवत प्राणघातक, मांसाहारी और शराबी हो गये हैं। स्वधर्मत्यागी 'कवड' यक्ष (कपर्दीयक्ष) जैनधर्म के उन सभी मनुष्यों का नाश कर देता है जो उधर जाने का साहस करते हैं। शत्रुञ्जय के चारों ओर कोसों दूर तक भूमि उजाड़ पड़ी है और ऋषभदेव का पूजन करनेवाला कोई नहीं रह गया है।" उनकी ऐसी बात सुन सुन कर जावड ने चक्रेश्वरी देवी की आराधना की और (नीच) देवों के बलिदान चढ़ाया।

उन देवों ने उसे बताया कि, "ऋषभदेव की मूर्ति तक्षशिला नगरी मे, जहाँ राजा जगमल राज्य करता है, छुपा कर रक्खी हुई है। अपने पूर्णप्रयत्न से जावड ने उस राजा से मूर्ति प्राप्त करली और उसी के आश्रय से एक सघ-बना कर, अपने कितने ही जाति-बन्धुओं के साथ उन मूर्तियों को लेकर शत्रुञ्जय की ओर प्रस्थान किया। कितनी ही कठिनाइयों का सामना करने के बाद जावड और उसके साथी सोरठ में 'मधुमावती' पहुँचे। वहाँ उनके भाग्य ने ऐसा साथ दिया कि बदर पर उन्हें उसी समय आए हुए सोने और अन्यान्य बहुमूल्य वस्तुओं से लदे हुए वे जहाज भी मिल गये जिनको पहले जावड ने चीन और भोट को भेजे थे। उसी समय वज्रस्वामी ने भी मधुमावती मे प्रवेश किया। कवडयक्ष भी, जिसको उन्होंने जैनधर्म मे परिवर्तित कर लिया था, बहुत से देवों और यक्षों को साथ लिए उनके साथ था। महामुनि वज्रस्वामी और जावड अपने सहायक कवडयक्ष को साथ

लेकर दलबल सहित शत्रुञ्जय पर जा पहुँचे। वहाँ मृत शरीरों, रक्त-रञ्जित पर्वत खण्डो और इधर उधर बिखरी हुई सफेद अस्थियों को देख कर वे भयभीत हो गये। इसके बाद पर्वत को अपने हृदयों के समान विशुद्ध करके वे यात्री वज्रस्वामी के बताये हुये शुभ मुहूर्त मे मूर्तियो को लेकर गाजे बाजे सहित पर्वत पर चढ़े। उन्होंने यात्रा के निश्चित स्थान को प्राप्त करने के लिए कितनी ही बार प्रयत्न किये, परन्तु पापबुद्धि राक्षसों के विरोध के कारण असफल हुए। अन्त मे जाबड का हृदय टूट गया और सवत् १०८ विक्रमीय [५२ ई.] मे वह मर गया। बार बार असफल होने के कारण जब कोई कार्य समाप्त ही नहीं होता है तब "यह तो जावड भावड़ का काम है" ऐसा कहने की प्रथा पड गई और यह कहावत अब भी देश मे प्रचलित है। [१]

जावड़ की मृत्यु के कुछ वर्षों बाद ही बौद्ध लोगों ने सौराष्ट्र के राजाओं को अपने धर्म मे परिवर्तित कर लिया। अन्त में "धनेश्वर सूरि" खडे हुए जिन्होंने वलभीपुर के शासक शिलादित्य को अपना (जैन) धर्मानुयायी बनाया और बौद्धो को देश से निकाल कर धार्मिक स्थानो को पुनः अधिकार में लेकर अनेक मन्दिर बनवाये। [२] "माहात्म्य" के अनुसार यह परिवर्तन का कार्य ४७७ वि० (४२१ ई०) मे सम्पन्न

(१) स्काटलैण्ड मे भी एक ऐसी ही कहावत प्रचलित है — "सेन्ट मगोना के कार्य की तरह यह कार्य भी कभी पूरा न होगा"

(२) यहा शीलादित्य प्रथम से तात्पर्य है जिसको जैनों ने अपने धर्म की रक्षा करने के कारण "धर्मादित्य" की उपाधि देदी थी—वास्तव में इसका समय ५९५ ई० से ६१० अथवा ६१५ ई० तक का है, ४२१ ई० नहीं।

हुआ। शिलादित्य [१] का ठीक ठीक समय क्या था, इस विचार को यहीं छोड़ कर हम जैनग्रन्थों के आधार पर यह वर्णन करते हैं कि वह बौद्धधर्म को छोड कर इस धर्म में किस प्रकार आया [२] और म्लेच्छों के आक्रमण से उसका तथा उसके राज्य का विनाश किस प्रकार हुआ। ऐसी कथा है कि गुर्जरदेश के 'खेड़ा' नामक ग्राम में देवादित्य नाम का एक ब्राह्मण रहता था जो वेदों में पारगत था। उसके सुभगा नाम की एक पुत्री थी जो बचपन ही में विधवा हो गई

---

(१) इस समय तक वलभी वश की स्थापना नहीं हुई थी। इस गणना के अनुसार गुप्त सवत्सर २३७ होता है और ई० सन् ५५६ आता है। माहात्म्य ग्रन्थ संवत् ४७७ में पूर्ण होगया था।

(२) सौगत अथवा बौद्ध और जैन अथवा अर्हन्त ये दोनों ही निरीश्वरवादी मतो में म हैं। यहा उन पर कुछ प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है। ये दोनो ही वेद और ब्राह्मणों के प्रतिकूल मत थे। कट्टर हिन्दू धर्मावलम्बियों और बौद्धो मे खूब जोशीली लडाइया हुई हैं जिनमे हिन्दुस्तान के बौद्धो का नाश हुआ। जैनलोग यद्यपि इस तूफान में जीवित रह गये परन्तु इसमें उनको बहुत सी कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा था। डा विल्सन ने "एशियाटिक रीसर्चेज"के पृष्ठ १६ मे "हिन्दुओं के पथ" नामक लेख मे लिखा है कि "मध्वाचार्य बौद्ध और सौगत में कोई विशेष भेद नहीं मानते, तथापि इनमें कुछ भेद है अवश्य। आनन्दगिरि के अभिप्राय से सौगत लोग "सुगतमुनि" के मत को मानते थे। इसका सिद्धात यह था कि प्राणीमात्र पर दया करो। इसी में वे समस्त नीति और धर्म का समावेश करते हैं। इस मत का यह सिद्धान्त बौद्ध और जैन मतों के सिद्धान्तों से बहुत कुछ मिलता है।" ऐसा प्रतीत होता है कि वलभी में बौद्ध और सौगत एक ही थे और प्रतिपक्षिता भी इनमें और जैनों में ही थी और इनके निरीश्वरवादी धर्म और धर्मानुग्रही हिन्दुओं में सम्मिलित नहीं थे।

सौर पथ को मानने वाले सूर्य को जगत का उत्पन्न करने वाला मानते हैं। इस मत को मानने वाले थोडे हैं, परन्तु ब्राह्मण हैं। इन लोगों का पथ अब तक प्रचलित है। ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय सौराष्ट्र के द्वीपकल्प में ये लोग

थी। वह नित्य प्रातःकाल माध्याह्न और सायंकाल में सूर्यदेव को दूब पुष्प और जल का अर्घ्य चढ़ाती थी। इस बालविधवा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर सूर्यदेव मानव शरीर धर कर उसका आलिङ्गन करने के लिए पृथ्वी पर उतरे और वह गर्भवती हुई।

सुभगा के इस कार्य से उनके कुल पर कलंक लगेगा, यह सोचकर उसके माता पिता ने उसे घर से निकाल दिया और उनके दिये हुए नौकर के साथ वह वलभीपुर चली गई जहाँ पर उसने दो बालकों (एक पुत्र और एक पुत्री) को जन्म दिया। इन दिव्य बालकों के आठ वर्षों को बीतते

बहुत बड़ी संख्या में मौजूद थे। आनन्दगिरि ने इनके अनेक भेद गिनाए हैं परन्तु ये भेद अब प्रसिद्ध नहीं हैं।

प्रोफेसर विल्सन ने आनन्दगिरि द्वारा बताए हुए छः भेदों के विषय में यों लिखा है :—

(१) जो उगते हुए सूर्य को पूजते हैं और उसको ब्रह्म अथवा उत्पन्न करनेवाली शक्ति का प्रतिरूप मानते हैं

(२) जो मध्यान्ह के सूर्य को रुद्र (नाश करने वाला) मानते हैं।

(३) जो अस्त होते हुए सूर्य को विष्णुरूप अथवा पालनकर्त्ता मानते हैं।

(४) जो त्रिमूर्ति का पक्ष मानते हैं। ये लोग सूर्य को उपरि-लिखित तीनों गुणों (सर्ग-स्थिति-संहार) का वाहक अथवा ग्रहण करनेवाला प्रतिरक्षक मानते हैं।

(५) इस भेदवालों का आशय यद्यपि स्पष्टतया नहीं लिखा है तथापि इतना ज्ञात होता है कि ये लोग सूर्य के सच्चे और वास्तविक रूप की आराधना करते हैं। सूर्य की सतह पर जो चिन्ह दिखाई देते हैं उनके लिये इन लोगों का कहना है कि वे सूर्य भगवान् की दाढी और मूछ के बाल हैं। इनमें और आजकल के सौर पंथियों में इतनी समानता अवश्य पाई जाती है कि वे भी सूर्य का दर्शन किए बिना भोजन नहीं करते।

(६) इस भेद को माननेवाले ऊपर लिखे पक्षों के विरुद्ध हैं। ये लोग प्रत्यक्ष दीखते हुए सच्चे सूर्य की उपासना को आवश्यक नहीं समझते वरन् मानसिक तेज-

देर न लगी। लड़के को गुरु के पास पढ़ने बिठाया गया परन्तु दूसरे बालकों के साथ रहते रहते सबसे पहला प्रभाव उसके कोमल मन पर यह पड़ा कि "मै बिना बाप का हूँ।"

एक बार अपने साथियों के चिढ़ाने से तग आकर वह अपनी माता के पास गया और पूछा कि माता! क्या मेरे पिता नहीं हैं? लोग मुझे बिना बाप का कहते हैं। उसने उत्तर दिया, "ऐसा पूछ कर तू मुझे क्यो दुखित करता है?" बालक दुखी होकर लौट गया परन्तु उसी दिन से उसने विष खाकर अथवा किसी अन्य उपाय से अपने आपको नष्ट करके इस कलङ्क से मुक्त होने का निचश्य कर लिया।

एक दिन जब वह इस प्रकार दुखी हो रहा था तो भगवान् सूर्य-नारायण ने उसे दर्शन दिये और "वत्स" कह कर सबोधन किया। उन्होंने उसकी रक्षा करने का वचन दिया और कुछ प्रस्तरखण्ड देकर कहा:— "ये तुम्हारे शत्रुओं का विनाश करने में सहायता देंगे।" इन्हीं सूर्यदेव के दिये हुये शस्त्रों के कारण वह "शिलादित्य" के नाम से प्रसिद्ध हुआ[१]

पुञ्ज की कल्पना करके उसीका ध्यान और आराधना करते हैं। ये लोग अपने ललाट, भुजदण्ड और हृदय पर गोल आकार की तप्त मुद्राओं के अंक भी धारण करते हैं। शकराचार्य ने इस प्रथा का बहुत तिरस्कार किया है क्योंकि यह वैदिक नियमों के विरुद्ध है और ब्राह्मण का शरीर पूज्य होने के कारण भी यह (प्रथा) निषिद्ध है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुजरात में अशोक ने २७३—२३२ ई. पू. बौद्धधर्म का सूत्रपात किया था। जैन ग्रन्थकारों का मत है कि उसके पौत्र सम्प्रतिराय ने २१६ ई. पू. अनार्य देश मे (जिसमे सौराष्ट्र भी शामिल था) जैन मन्दिर बनवाये थे।

[१] शील=सद्गुण+आदित्य=सूर्य, यही इस नाम का सच्चा अर्थ है, परन्तु बहुत से विरोधी लोग इसको बुरा बताने के लिए यों अर्थ करते हैं —शिला=पत्थर आदित्य = सूर्य।

एक बार शिलादित्य ने किसी वलभी के निवासी का बध कर दिया। इस पर वलभी का राजा क्रोधित हुआ परन्तु सूर्य भगवान् के दिये हुये अस्त्रों से वह मार दिया गया। और सुभगा का पुत्र शिलादित्य, जो अब प्रसिद्ध हो गया था, सौराष्ट्र का राजा हो गया। वह सूर्य भगवान् के दिये हुए घोड़े पर सवार होकर आकाशचारी देवताओं के समान स्वच्छन्द विचरने लगा और अपने पराक्रम से कितने ही देशों को जीत कर बहुत समय तक राज्य करता रहा।

एक बार अपनी विद्या का अभिमान लिए हुए कुछ बौद्ध उपदेशक शिलादित्य के पास आये और कहा 'ये श्वेताम्बर (जैन) यदि हमें शास्त्रार्थ (विवाद) में हरा दे तो यहाँ रहे अन्यथा आप उन्हे देश से निकाल दे।'

राजा ने इस बात को स्वीकार किया और चार प्रकार [१] की सभा की। वह स्वय उसका प्रधान हुआ और आज्ञा दी कि जो पक्ष इस विवाद मे हार जाय वह वलभी की सीमा पार चला जावे। भाग्य से बौद्ध विजयी हुए और श्वेताम्बरों को भविष्य मे विजय पाने की आशा हृदय मे लेकर देश छोड़ना पड़ा। तब से राजा शिलादित्य बौद्ध धर्म का पालन करने लगा परन्तु वह शत्रुञ्जय के महान् देवता ऋषभदेव का पूजन भी पूर्ववत् उत्साहपूर्वक करता रहा।

शिलादित्य ने अपनी जोड़ली बहन का विवाह भृगुपुर (भड़ौच) के राजा से कर दिया और उसने वहाँ कांति और गुणों में देवता के समान एक पुत्र को जन्म दिया। थोडे दिनों बाद ही उसका पति

(१) साधु व साध्वी अथवा जैन धर्मावलम्बी त्यागी पुरुष (साधु) और स्त्री (साध्वी) तथा श्रावक व श्राविकाए जिन्होंने किसी आश्रम को ग्रहण नहीं किया हो, इस प्रकार चार प्रकार के मनुष्यों का सभा।

मर गया और उसने किसी तीर्थस्थान पर सद्गुरु से धर्म-दीक्षा ली। उसके आठ वर्षीय पुत्र ने भी उसके साथ ही दीक्षा ग्रहण की। जब जब प्रसंग आता तो बुद्धिमान् और सदाचारी मनुष्यों के सामने वे अपने धर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या करते।

एक दिन मल्ल ने अपनी साध्वी माता से आतुर होकर पूछा 'मां! क्या अपने सहधर्मियों की अवस्था सदा से ऐसी ही दीन हीन रही है, जैसी हम देख रहे हैं?' उसने आँखों में आँसू भर कर उत्तर दिया—"पुत्र! मैं पापिनी इस प्रश्न का उत्तर कैसे दूँ? पहले गाँव गाँव में इन दिव्य श्वेताम्बरों की संख्या बहुत अधिक थी, परन्तु प्रसिद्ध धर्मोपदेशक-वीर सुरेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् विधर्मियों ने तुम्हारे मामा राजा शिलादित्य पर अपना प्रभाव जमा लिया। शत्रुञ्जय जैसा पवित्र तीर्थ, जहाँ पर जाने से मोक्ष प्राप्त होती है, आज श्वेताम्बरों के हाथ से निकल कर भूतों जैसे बौद्धों का घर बना हुआ है। श्वेताम्बर विदेशों में पड़े हुये हैं और उनका स्वाभिमान और तेज नष्ट हो गया है।"

वीर क्षत्रियकुलोत्पन्न मल्ल अपने धर्म का अपमान न सह सका और विजय प्राप्त करने का अवसर ढूँढ़ने लगा। कठिन तपश्चर्या एवं एकनिष्ठ आराधना से प्रसन्न होकर (वाग्देवी) सरस्वती ने उसे दर्शन दिये। जिस प्रकार विष्णुवाहन गरुड़ सर्पों को वश में कर लेता है उसी प्रकार बौद्धों को वश में करने के लिये उसे "नय चक्र" [१] नामक पुस्तक भी प्रदान की।

(१) जैन साहित्य में मल्लसूरि कृत न्याय विषयक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन सूरि के विषय में 'प्रबन्धचिन्तामणि,' 'प्रभावक चरित', और 'प्रबन्धकोष' आदि ग्रन्थों में अनेक कथाएं मिलती हैं।

इस शास्त्र को प्राप्त करके. शिवजी से दिव्यास्त्र प्राप्त किये हुये पाण्डव अर्जुन के समान शोभित होता हुआ, वीर मल्ल सौराष्ट्र की शोभा वलभी मे पहुँच कर शिलादित्य के दरबार में उपस्थित हुआ और कहने लगा—"हे राजन्, इन बौद्धो ने समस्त संसार को भ्रम में डालकर वश में कर रखा है। मै तुम्हारा भानजा मल्ल इनके विपक्ष में खडा हुआ हूँ।"

इस पर राजाने पहले की भाति सभा बुलाई और स्वयं विवाद सुनने के लिये बैठा। मल्ल पर देवी का हाथ था इसलिये अपनी प्रतिभा से उसने बौद्धों में खलबली मचा दी। बुझते हुये श्वेताम्बर धर्म की इस चिनगारी को फिर से भभकते हुए देखकर वे कॉपने लगे। प्रत्यक्ष हार मानने के डर मे उन्होंने अपना क्षेत्र प्रतिपक्षी के हाथ सौप कर जाने का निश्चय किया। उन्होंने कहा 'वह धन्य है जो अपने देश कुल तथा स्त्री के धर्म को नाश होनेसे बचाता है और जो मित्रों के दुख में दुखी होता है, वह भाग्यशाली है"। इस प्रकार बौद्ध हार गये और राजा की आज्ञा से देश के बाहर चले गये।

जैन उपदेशक फिर बुला लिये गये। उन्होंने राजा की आज्ञा से मल्ल को "सूरि" की पदवी दी। (१) सभी तीर्थस्थानों मे श्रेष्ठ शत्रुञ्जय की असीम महिमा को जानकर उसने अपने मामा शिलादित्य की सहायता से उसकी फिर प्रतिष्ठा की।

---

(१) इस विषय में मुनि श्रीधर्मविजय का विवेचन, जो इस प्रकार है, ध्यान देने योग्य है:—

"फार्बेस साहब ने लिखा है कि विद्वानों ने राजा की आज्ञा मे उनको "सूरि-पद" प्रदान किया यह बात उस समय के जैनों के मन्तव्य से विरुद्ध था क्योंकि "सूरिपद" के विषय मे उनके मतानुसार यह प्राचीन प्रथा है कि ,गुरु अथवा आचार्य के अतिरिक्त और कोई किसी को सूरिपद प्रदान नहीं कर सकता, इसलिये राजा

जब श्री मल्ल सूरि की कीर्ति चारों ओर फैल गई, तो पण्डितों के समाज ने उन्हें श्री अभयदेव द्वारा स्थापित खम्भात अथवा स्तम्भ तीर्थ का अधिकार सौंप दिया। (१) (२) वहाँ पर श्रेणिक तथा अन्य श्रावकों के साथ उन्होंने अपना आत्मोद्धार किया (३)

को सूरिपद प्रदान करने का कोई अधिकार नहीं था। यदि किसी विद्वान और सुशील साधु पर राजा प्रसन्न होता तो वह आचार्य के पास विनीत होकर उस पद दिलवाने के लिये प्रार्थना करता था और गुरु उस शिष्य की योग्यतानुसार प्रसन्न होकर उसको पदवी प्रदान करते थे।

(२) श्रीयुत फार्बेस लिखते हैं कि कीर्ति प्राप्त कर लेने के पश्चात् पुरोहित-सभा ने श्री मल्ल सूरि को स्तम्भ तीर्थ पर नियुक्त करके भेज दिया, यह 'असत्य' है क्योंकि आचार्य, उपाध्याय अथवा अन्य किसी त्यागी साधु को एक स्थान पर ठहरने का अधिकार नहीं है। वह स्वयं एक गाव से दूसरे गाँव में घूमता रहता है। हाँ, किसी आवश्यक कार्यवश गुरु उसे कहीं एक जगह ठहरने की आज्ञा दे सकता है, परन्तु श्रीमल्लसूरि के विषय में किसी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता है। फिर पुरोहितसभा का तो उनके विषय में ऐसा आदेश हो ही नहीं सकता।

(३) अभयदेव सूरि के द्वारा स्थापित स्तम्भतीर्थ मे तो उनका जाना नितान्त असम्भव है क्योंकि श्री मल्ल सूरि और अभयदेव सूरि के समयो में ७०० वर्ष का अन्तर है। सात सौ वर्ष पश्चात् स्थापित स्तम्भ तीर्थ में उनका जाना आकाशपुष्प के समान असम्भव है। हाँ, कोई ग्राम बहुत पुराना हो और उसका प्राचीन नाम त्रम्बावति हो, उसमें यदि वे गये हों तो यह सम्भव हो सकता है। परन्तु प्रबन्ध चिन्तामणिकार ने ७०० वर्ष पीछे बने हुए स्तम्भतीर्थ का नाम लिखा है, इससे उसका अभिप्राय यह ज्ञात होता है कि उसने उस स्थान का वर्तमान नाम लिखकर समझाने का प्रयत्न किया है।

(३) श्रेणिक तथा अन्य श्रावकों के साथ आत्मोद्धार किया, इस वाक्य का कुछ तात्पर्य समझ में नहीं आता। ऐसा प्रतीत होता है कि "चतुर्विंशति प्रबन्ध" में जिस शिलादित्य राजा के लिये यह लिखा है कि उसने श्रावकों के व्रतों में से कितने ही व्रतों को अङ्गीकार किया और जैनधर्म का प्रसार करने का बहुत प्रयास किया, उसी

उन्हीं दिनों मारवाड के पाली नामक नगर में काकू [१] नाम का एक धन्धार्थी (व्यापारी) रहता था। वह अपना देश छोड़ कर और अपना असबाब सिर पर धर कर वलभी चला गया था। नगर के दरवाजे के पास ही ग्वालों की झोपड़ियों मे वह रहने लगा और बहुत ही गरीब होने के कारण लोग उसे 'रक' नाम से पुकारने लगे। परन्तु कुछ दिनों बाद उसने 'कृष्ण चित्रक' [२] तथा अन्य चमत्कारिक वस्तुएँ कहीं से प्राप्त करलीं।

के २४०० वर्ष पहले मगध देश का प्रख्यात जैन राजा श्रेणिक हुआ था, इसलिये शायद ग्रन्थकार ने यहा पर इसी श्रेणिक तथा अन्य श्रावकों की उपमा देते हुए यह वाक्य लिख डाला है।" [मुनि श्री धर्म विजय]

(१) काकू के छोटे भाई का नाम पाताल था। वह धनवान् था इसलिए काकू उसके यहां घर कामकाज किया करता था। एक दिन खेतों में पानी देते समय काकू सोता पड़ा था इसलिये उसके भाई ने उसके एक ठपका (थप्पड़) जमा दिया। इससे खिन्न होकर वह घर मे निकल पडा और वलभीपुर के पास आकर अहीरों की बस्ती में रहने लगा।

एक बार कोई कार्पटिक (कापडी) ''कल्प-पुस्तक'' मे लिखे अनुसार रैवतक (गिरनार) पर्वत पर जाकर ''सिद्धरस'' प्राप्त करके एक ''तुम्बी'' मे भर कर लाया। वलभीपुर के पास आते आते उसने ''काकूय तुम्डी'' ऐसी आकाशवाणी सुनी। अपनी चोरी का भेद खुल जाने के डर से उसने वह तुम्बा काकू के पास रख दी। किसी पर्व के दिन काकू रसोई बना रहा था। चूल्हे के ऊपर ही खूंटी पर तुम्बी टगी हुई था। दैवयोग से उसमें से सिद्धरस की एक बूंद चूल्हे पर रक्खी हुई तपेली पर पड गई और वह सोने की हो गई। अब तो काकू को धनवान् होने का साधन प्राप्त हो गया इसलिये अपनी तुम्बडी और अन्य सामान लेकर नगर के दूसरे किनारे आकर रहने लगा और व्यापार करने लगा। पुरानी झोपडी मे आग लगा दी।

(२) एक बार एक घी बेचनेवाली स्त्री उसके पास आई। उसके बर्तन में से जब वह घी लेकर तोलने लगा तो घी समाप्त ही न हुआ। इससे उसने जान लिया

एक दिन काकू रंक अपनी घास की झोंपड़ी में आग लगा कर नगर के दूसरे भाग मे चला गया और वहीं एक विशाल भवन बनवा कर रहने लगा। उसकी सम्पत्ति दिनों दिन बढ़ती चली गई और वह कोट्यधिपति कहलाने लगा। परन्तु वह इतना लोभी था कि कभी किसी काम मे पैसा खर्च नहीं करता था, न पवित्र मनुष्यों के लाभार्थ, न यात्रा में, और न गरीबों के खिलाने पिलाने में ही, वरन् कहा करता था कि जगत् में जिसके भाग्य मे होता है उसी को धन मिलता है। ऐसा कह कर वह अपने गरीब पड़ौसियों का धन भी हड़प लेता था।

एक दिन राजा की लड़की ने काकू रंक की लड़की को एक भव्य सोने की कंघी पहने हुए देख लिया और उसको लेने की इच्छा की, परन्तु उसके पिता काकू ने देने से इनकार कर दिया। इस पर शिलादित्य ने उस कंघी को बलात् छिनवा लिया। ऐसा झगड़ा होने पर काकू रंक म्लेच्छ देश में चला गया और वहाँ के राजा से कहा "यदि आप

कि जिस हारी (ईंडी) पर उसकी हाँडी रक्खी हुई थी उसमे कोई चमत्कार था इसलिये उसने उसको खरीद लिया। वह हारी (ईंडी) चित्रक वेल से गुंथी हुई थी। इस प्रकार उसको चित्रक सिद्धि प्राप्त हो गई और फिर पूर्वजन्म के किसी पुण्य प्रताप से उसको सुवर्ण-पुरुष सिद्धि भी प्राप्त हो गई।

केटली (Keightley) कृत 'फेयरी माइथोलाजी' नामक पुस्तक मे भी इससे मिलती हुई एक कथा लिखी है कि बहुत वर्षों पहले नेथर विहन के पास (नार्थम्बरलैण्ड मे) एक लड़की रहती थी। एक दिन अपने सिर पर दूध से भरी बटलोई लिये वह खेतों में आ रही थी कि उसने परियों को खेलते हुए देखा और अपने साथियों को भी बताया, परन्तु उनको कुछ न दिखाई दिया। केवल उस लड़की को ही वह परियों का समुदाय दीख पड़ा। इसका कारण यह था कि अपने सिर पर जो ईंडी थी वह चतुष्पत्री नाम की वनस्पति की गुंथी हुई थी। इस वनस्पति से परियो को देखने की शक्ति प्राप्त होती है।

वलभी का नाश करे तो मै एक करोड़ मोहरें आपको भेंट करूँ ।" इस बातको स्वीकार करके राजा ने सेना सहित कूच कर दिया । [१]

रंक ने छत्र धारण करने वाले सेवक को कोई इनाम नही दिया था, अतः एक दिन मार्ग मे रात को जब राजा अपने तम्बू में अर्द्ध निद्रित अवस्था में पडा था तो कोई मनुष्य यों बोलने लगा 'अपने दरबार में कोई समझदार व्यक्ति नहीं है अन्यथा यह अश्वपति, पृथ्वी का इन्द्र, एक अनजान वंश के मनुष्य, जिसकी रीति भाँति व चाल चलन तक का पता नहीं है कि अच्छा है या बुरा, ऐसे रंक नामी व्यापारी के कहने से सूर्य के पुत्र शिलादित्य पर चढ़ाई न करता ।" राजा सुखदायक औषधि के समान इन वचनों को सुन कर दूसरे दिन आगे न बढ़ा । तब रंक की समझ में भी मूल कारण आ गया और मोहरें देकर उसने सेवक को प्रसन्न किया ।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजसभा मे आकर वह सेवक यों कहने लगा, विचार कर अथवा बिना विचारे पैर आगे बढ़ादिया सो बढ़ा दिया, जब सिंह के समान राजा ने पैर आगे बढा दिया तो अब आगे बढ़ने में ही इसकी शोभा है । जब सिंह खेल ही खेल में हाथियों का नाश कर देता

(१) रा टक्कुर नारायण ने अपने 'गुजराती' पत्र की वार्षिक भेट के रूप में एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने इस कथा को ऐसी रसीली बनाकर लिखा है कि पढते पढते मन नहीं भरता । इसका नाम उन्होंने 'अनंगमद्रा अथवा वलभीपुर का नाश' रक्खा है । यह म्लेच्छ राजा, जिसके पास काकू गया था, सिन्धु देश का (अलमन्सूर का अधिकारी) अरब अमर बिन जमाल था । वलभी का नाश ७७० ई में हुआ, उस समय सिन्ध का अधिकारी अमर बिन हकसर बिन उसमान हजारमर्द था । वह हिजरी सन् १५१ [सन् ७६७ ई०] में वहां का १२वाँ हाकिम था । इसके बाद हिजरी सन [१५४ सन् ७७० ई०] में १३ वाँ हाकिम रूहबिन हुआ था (देखो Reinand पृ० 213)

है तो उसे मृगपति अथवा मृगों का मारने वाला कहला कर क्यों अपनी अप्रतिष्ठा करवानी चाहिए ? हमारे महाराज का पराक्रम अपार है। इनकी बराबरी कौन कर सकता है ? इस भाषण से प्रसन्न होकर रण-दुंदुभि से आकाश और पृथ्वी को निनादित करता हुआ वह आगे बढ़ा।

वलभी पर आने वाली विपत्ति को जान कर श्री चन्द्रप्रभ, श्री वर्द्धमान देव और अन्य मूर्तियाँ शिवपट्टन (प्रभास), श्रीमालपुर तथा अन्य नगरों को चली गई और महामुनि श्रीमल्लवादी ने भी अपने भक्तों सहित पंचासर का मार्ग ग्रहण किया। [१]

म्लेच्छों की सेना नगर के समीप आ गई और स्वदेश-शत्रु नीच रंक के कहने से उन्होंने सूर्यकुंडा को गौओं के रक्त से भर दिया इससे शिलादित्य की बढ़ती का मूल कारण सूर्य भगवान् का दिया हुआ घोड़ा उसे छोड़ गया और विष्णु के गरुड़ के समान वह आकाश में उड़ गया [२] इस प्रकार शिलादित्य निरुपाय हो कर मारा गया और

(१) जब राज्य में कोई विपत्ति आनेवाली होती है तो वहाँ की देवमूर्तियाँ चली जाती है इसी विश्वास को लेकर पुरानी जातियों के लोग मूर्तियों को साकलों से बंधी रखते थे। फिनीशियन लोग भी मेकलार्थ की मूर्ति को निरन्तर साकलों से बंधी रखते थे [Authony s classical dictionary, page 601]

(२) जब भ्रष्ट बुद्धि वाले यहूदियों को उनके कृत्यों का फल मिलनेवाला था तब उनके देवालयों के अदृश्य रक्षक कहने लगे, अब अपने को यहा से बिदा होना चाहिये [Heber's sermons in Eangland p.60]

२. प्रबन्धचिन्तामणिकार ने लिखा है कि उसने पंचशब्दवादकों (बैन्ड बजाने वालों) को कुछ घूस देकर फोड़ लिया था, इसलिये जब शिलादित्य सूर्य के दिये हुये घोडे पर चढकर युद्ध करने के लिये चला तो उन्होंने जोर जोर से बाजे बजाये। बाजों की ध्वनि को सुनकर घोडा चमक गया और सूर्यलोक की ओर उडने लगा। राजा नीचे गिर पडा और घोडा जहा से आया था वहीं चला गया।

म्लेच्छों ने खेल ही खेल में वलभीपुर का नाश कर दिया।

वलभीपुर के नाश के विषय में हिन्दुओं में एक दन्तकथा भी प्रचलित है किन्तु, वह उपरिलिखित जैन वृत्तान्त से बहुत भिन्न है और इतिहासविषयक आधार तो उसमें बिलकुल ही नहीं है। इस दन्तकथा में मैदान के नगरों की बात लाट की स्त्री के मरण की बात के साथ ऐसी मिल गई है कि इसको इस अद्भुत कथा की बदली बदलाई धुंधली छाया के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। हम जानते हैं कि एशिया के प्राचीन व अर्वाचीन लोग भी किसी बात का पता न लगने पर उसे भाग्य पर छोड़ देते हैं। ऐसी चमत्कारिक बातों का इस प्रकार पता लगाने में हिन्दू लोगों को बहुत आनन्द आता है। वे कहते हैं कि पृथ्वी पर बसनेवालों के पापकर्मों के फल से ही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हरी भरी भूमि को उजाड़ देता है और अपनी सम्पत्ति का गर्व करनेवाली वलभी के सैकड़ों वर्षों तक उजाड़ पड़ी रहने का कारण भी यही मान लेना उनके लिए स्वाभाविक कहा जा सकता है।

यह दन्तकथा (१) इस प्रकार है कि धुंडीमल नाम का साधु अपने एक शिष्य के साथ वलभीपुर आया। इस पवित्र पुरुष ने वलभी के पास ही चमारडी नामक स्थान पर ईशावला की पहाड़ियों की तलहटी मे अपना निवासस्थान बनाया। उसका शिष्य नगर में भिक्षा

---

(१) कच्छ माडवी के पास ही रायण ग्राम है और वहीं पास ही मे पाटण है। उसके तथा भद्रावती के नाश के विषय में भी ऐसी ही दन्तकथा प्रचलित है। उसमें साधु का नाम धुधणीमल्ल कहा है।

इस दन्त कथा से मिलती जुलती अवधूत के शाप की बात अनङ्गप्रभा में पृ. १४१ से १४७ तक The Indian Antiquary से उद्धृत करके लिखी है।

लेने गया परन्तु किसी ने कुछ नहीं दिया, तब वह जगल मे गया और लकड़ियाँ काट कर शहर में बेच आया। जो पैसे मिले उनका आटा खरीद लाया, परन्तु उसे रोटी बनाकर कौन दे ? अन्त में, एक कुम्हार की स्त्री ने उसका कार्य कर दिया। इस प्रकार कितने ही दिन बीत गये और प्रतिदिन बोझा उठाने के कारण उसके शिर के बाल उड़ने लग गये। साधु ने इसका कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया "महाराज, इस नगर में कोई भी भिक्षा नहीं देता, इसलिये मुझे नित्य जगल मे जाकर लकड़ियाँ काटनी पड़ती हैं और उनके बेचने से जो कुछ मिलता है उसका आटा लाता हूँ। एक कुम्हार की स्त्री मुझे इसकी रोटियाँ बना देती है। इस परिश्रम के कारण मेरे शिर के बाल उड़ने लग गये।"

इस पर साधु ने कहा 'आज मै स्वय भिक्षा मांगने जाऊँगा।' वह भिक्षा मांगने गया परन्तु कुम्हार की स्त्री के अतिरिक्त किसी ने भी उसे भिक्षा नहीं दी। इस पर साधु बहुत क्रोधित हुआ और अपने शिष्य द्वारा कुम्हार को कहला भेजा "तुम अपने परिवार सहित नगर छोड़ कर चले जाओ। यह नगर आज ही नष्ट हो जायगा।" कुम्हार और उसकी स्त्री अपने लड़के को साथ लेकर वलभी से बाहर चले गये। साधु ने कुम्हार की स्त्री को चेतावनी दे दी थी कि अपने नगर की ओर मुड़कर मत देखना, परन्तु समुद्र के किनारे के पास उस स्थान पर पहुँचते पहुँचते जहाँ आजकल भावनगर बसा हुआ है उसने उस आज्ञा का उल्लंघन करके वलभी की ओर देख लिया। उसी क्षण वह पाषाण की मूर्ति में बदल गई और आज तक रूवापुरी माता के नाम से पूजी जाती है।

उधर उस साधु ने अपने कमण्डलु को उलट कर कहा 'नगर! तू नष्ट हो जा और तेरी धन सम्पत्ति धूल मे मिल जाय।" इतना कहते ही वलभी नष्ट हो गई।

आधुनिक वला नगर के पश्चिम तथा उत्तर की ओर पीलू के वृक्षों का एक विशाल जगल है। इसके आर पार सभी ओर कितने ही रास्ते हैं। यहाँ से वलभीपुर के खडहरों का मुख्यभाग साफ दिखाई देता है। इमारते बनवाने के लिये जो लोग मिट्टी, पत्थर आदि ढूंढने के लिये वहाँ जाते है उन्होंने कुछ खड्डे बना दिये है जिनमें बहुत सी दीवारों के अवशेष साफ दिखाई देते है जो लगभग साढ़े चार फीट चौडे है और पकी हुई ईटों तथा चूने के बने हुये हैं। कितने ही खड्डों ने गहरी खानों का रूप ले लिया है और उनमे से खारी पानी निकलता है। कहते है कि वलभी के चारों ओर तीन चार मील तक इसी तरह की ईटों की बनी हुई दीवारे पाई जाती हैं। ये ईटे १६ इंच लम्बी, १० इन्च चौडी और ३ इन्च मोटी है।

इस पीलू के जङ्गल के पास ही गैलो नाम की एक नदी बहती है जिसका पानी वर्षा ऋतु में बाढ़ आने के कारण सारे जङ्गल में फैल जाता है और जैसे जैसे यह अपना मार्ग बदलती है वैसे ही नष्ट हुई वलभी के खंडहर प्रगट होते जाते हैं। वर्षा ऋतु मे इकट्ठे हुये पानी के पोखरों से इस मैदान में इधर उधर बहनेवाले छोटे छोटे स्त्रोत भी इसके इस कार्य में सहायक बन जाते हैं।

नष्ट वलभीपुर के उत्तर की ओर एक विशाल कुंड है जो "घोरार दमन" कहलाता है। नैऋत्य कोण में एक विस्तीर्ण सपाट मैदान है जो जाड़े के दिनों में गेहूँ की हरी हरी फसलों से आच्छन्न रहता है।

यह स्थान 'रतन तालाव' के नाम से प्रसिद्ध है और कहीं कहीं पर इसकी पाल (किनारा) अब भी दिखाई दे जाती है।

पीलू के पेड़ों से ढके हुए भागों मे वलभी के चारों ओर काले पत्थरों की वनी हुई शिवजी तथा उनके नन्दी बैलों की कितनी ही मूर्तियॉ पाई जाती हैं। ये मूर्तियॉ आकार में बहुत बड़ी बड़ी हैं और जमीन की सतह से ऊपर बने हुए चबूतरों पर स्थापित हैं। ये चबूतरे प्राय: देवालय के ऑगनों में ही बने मालूम होते है। इससे यह विदित होता है कि यह नगर पृथ्वी मे धॅसका नही था। प्राय: शिवलिगों को तो कोई हानि नहीं पहॅुची है परन्तु उनके साथ के नन्दी बैल खंडित हुये विना नहीं रह सके हैं। एक ग्यानिट पाषाण की बनी हुई नन्दी की विशाल मूर्ति है जिसके शिर नहीं है और शरीर में चीरा है। यह नन्दी भूतेश्वर.महादेव [१] के लिग के पास रक्खा हुआ है। जितने भी शिवलिगों का पता चला है उन सब का ब्राह्मणों ने कुछ न कुछ नाम रख दिया है, जैसे वैजनाथ, रत्नेश्वर ईश्वरिया महादेव इत्यादि। नन्दी की मूर्तियों की वनावट सुन्दर है और आधुनिक मूर्तियों से भिन्न है। वे वैठे हुए वैलों की सुन्दर मूर्तियॉ हैं।

कर्नल टॉड के मतानुसार सन् १४४ अथवा १४५ ई० में सूर्यवशी राजा कनकसेन कोसलराज्य की राजधानी अयोध्या को, जहॉ राजा श्रीरामचन्द्रजी ने राज्य किया, छोड़ कर प्रसिद्ध वैराट में जा बसा था जहॉ वनवास के समय पाण्डवों ने निवास किया था। कुछ लोगों

(१) वला के पास वाले शिवलिङ्ग की वनावट लगभग आधुनिक देवालयों में प्रतिष्ठित शिवलिङ्गों जैसी ही है परन्तु वे आकार मे कुछ वडी और ग्यूानिट के एक ही पत्थर में खोद कर वनाई हुई है। मूर्ति २फीट ऊँची तथा जलहरी ३फीट ऊँची एवं ८फीट परिधिवाली होती है। इनमें से बहुत सी चतुष्कोण, अष्टकोण और फिर गोलाकार होती हैं।

की ऐसी धारणा है कि इस स्थान पर आजकल धोलका [१] नामक नगर बसा हुआ है। कनकसेन ने परमारवंशीय राजा से राज्य छीन कर नगर की स्थापना की थी। चार सौ वर्ष पश्चात् इसी के वंशज विजय [२] ने बीजापुर और विदर्भ नाम के नगर बसाये। इनमें से विदर्भ आगे चल कर "सीहोर" कहलाने लगा। इसी वंश के लोगों ने प्रख्यात वलभी नगर को बसाया तथा आधुनिक खंभात के पास गजनी शहर की स्थापना की परन्तु वलभी [३] के नाश के साथ ही वह भी नष्ट हो गया।

यही ग्रन्थकार अन्यत्र इस प्रकार लिखता है कि कनकसेन ने सौराष्ट्र मे जाकर "ढॉक" को, जो प्राचीन काल मे मूॅगीपट्टन के नाम से प्रसिद्ध था, अपना निवासस्थान बनाया और वालखेतर प्रान्त (जो आजकल भी भाल नाम से प्रसिद्ध है) जीत लिया, इसीलिए उसके वंशज वाल राजपूत कहलाने लगे।

वलभी का नाश होने पर यहाॅ के कुछ निवासी तो "बाली" नामक जैन शहर मे, जो मेवाड और मारवाड़ की सीमा पर है, जा बसे और दूसरे मारवाड प्रान्त के साँडेरा और नॉड़ोल नगरों में चले गये। [४] जिन जैन ग्रन्थकारों के लेखों को हमने उद्धृत किया है

(१) कच्छ में वागड नामक स्थान है जहाॅ पर गेडी (घृतपदी) ग्राम है, तथा विहार प्रान्त में दीनाजपुर और रंगपुर गाँव है, जयपुर के पास में बैराठ और धारवाड़ मे हनगल ये सब विराट नगर कहलाते हैं।

(२) देखो "वलभीपुर का इतिहास"

(३) Annals of Rajasthan (Book I) के पृष्ठ ८३ तथा २१५ से २१८ तक

(४) Western India नामक पुस्तक के पृ० ५१, १४८, २६८, ३५२, तथा Rajasthan, Book I पृ० २१७, (टाडकृत Western India का हिन्दी अनुवाद शीघ्र प्रकाशित होगा,) (प्रकाशक)

वे वलभी के नाश का समय विक्रमीय संवत् ३७५ (३१६ ई०) मानते हैं। इस संवत् से "वलभी संवत्सर" [१] चला था और इन ग्रन्थकारों ने वलभी-नाश के समय को और इस नगर के नाम से प्रचलित संवत् के आरम्भ के समय को एक कर दिया हो ऐसा संभव प्रतीत होता है। "शत्रुञ्जय माहात्म्य" से पता चलता है कि पालीताना के मन्दिरों का जीर्णोद्धार करानेवाला शिलादित्य नामक राजा विक्रमीय संवत् ४७७ (४२१ ई०) में गद्दी पर बैठा था। वलभी में जितने राजा हुए हैं उनकी भिन्न भिन्न सूचियाँ ताम्रपत्रों [२] के आधार पर तैयार की गई हैं। इन सूचियों से पता चलता है कि वलभी में शिलादित्य नाम के चार राजा हुए थे। यहाँ के सब राजाओं में से अठारह राजाओं के नाम दिये हुए हैं जिनमें से पहले दो के नाम के साथ "सेनापति" की पदवी लिखी हुई है। इससे यह कल्पना की जाती है कि वे उज्जैन [३] के परमार राजाओं के आश्रित थे। बाकी सोलह राजाओं के नाम के साथ "महाराज" लिखा हुआ है। वे "श्री भट्टारक" भी कहलाते थे और यह भी ज्ञात होता है कि उनमें से अधिकतर महेश्वर (शिव) के भक्त थे क्योंकि उनकी राजमुद्रा और झण्डे पर शिवजी के बैल नन्दी का चित्र बना हुआ है और नष्ट हुई वलभी के खंडहरों में पाए गए शिवलिंग भी इस ओर ध्यान आकृष्ट किए बिना नहीं

---

(१) टॉड कृत Western India (Text) पृ० ५०६ में विलावल का लेख (इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद शीघ्र प्रकाशित होगा)

(२) देखिये बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल ४ का पृ० ४७७ तथा इसी की पुस्तक ७वीं का पृ० ९६६ बंबई एशियाटिक सोसायटी जर्नल ३ का पृ० २१३ इत्यादि।

(३) इस स्थान पर कल्याण के सोलंकियों का होना अधिक संभव प्रतीत होता है।

रहते। इन लेखों द्वारा अनुमान से प्राप्त हुआ समय सन् ५४४ ई० से ५५६ ई० तक का है। इनमे सब से अंतिम तिथि को ही वलभी के नाश का ठीक ठीक समय मान लेने से यह घटना बहुत ही पीछे चली जायगी। चीन के भारतीय वृत्तान्तों से पता चलता है कि टॉक वंशीय राजाओं के राज्य मे सन् ६१८ से ६२७ ई० तक भारतवर्ष मे बहुत लड़ाई झगड़े रहे। राजा (शिलादित्य ?) ने बहुत सी लडाइयाँ लडी। ह्युआन सॉग नामक चीनी बौद्ध साधु, जिसने अपनी यात्रा का वृत्तान्त लिखा है, इसी समय भारतवर्ष पहुँचा था और शिलादित्य से मिला था [१]

मॉशिये जैक्विट ने फ्रैंच भाषा मे इस वृत्तान्त [२] के विषय मे लिखा है कि वलभी देश लारिस (लाट) के उत्तर मे है और उसका विस्तार ६००० लीग (१३००मील) है। इस देश की राजधानी का विस्तार ३० लीग (५ मील) से भी अधिक है। इस देश का जलवायु उपज और यहां के निवासियों की रीति भाँति तथा शरीर की प्रकृति मालवा [३] देश के समान ही है। यहाँ की जनसंख्या घनी है और कुटुंब द्रव्यवान् हैं। अत्यन्त दूरदेशों से विशाल सम्पत्ति आकर इस

(१) रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल की पुस्तक छठी का पृ० ३५१

(२) चीन के एक बौद्ध साधु ने ६३२ई० तथा इसके बाद के वर्षों मे ट्रान्सोक्सियाना बैक्ट्रिया तथा इन्डिया की यात्रा की थी, उसी के लिखे हुए वृतान्त में से बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने वलभी विषयक वर्णन लेकर अपने जर्नल की पाँचवी पुस्तक के पृ० ६५८ मे छपाया है। यह उसी के आधार पर यहाँ लिखा गया है केवल सूचनार्थ नामो में हेर फेर किया गया है।

(३) (I) वलभी के आस पास का प्रदेश भादोद और गोहिलवाडा, यह सब भाग प्राचीन वालार्क क्षेत्र में सम्मिलित थे।

(II) मालवा का प्राचीन नाम अवंति देश है।

राज्य में इकट्ठी होती है। यहाँ सौ से भी अधिक संघाराम (बौद्धमठ) दिखाई पड़ते हैं और बौद्ध साधुओं की सख्या छः हजार से भी अधिक है। इनमें से अधिक "हीनयान" सम्बन्धी सम्मतीय सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। यहां सैंकड़ों देव मंदिर हैं और साधुओं की मख्या भी बहुत अधिक है। भगवान् बुद्ध जब मृत्युलोक में थे (ईसा से पूर्व ५६० से ४८०) तब प्रायः इस देश मे आया करते थे और सम्राट् अशोक ने (ईसा से २८० पूर्व) उन वृक्षों की छाया में, जहाँ उन्होंने विश्राम किया था, पहचान के लिये स्तूप खड़े करवा दिये हैं। यह राज्य क्षत्रियों के अधिकार में है।

भूतपूर्व राजा मालवा देश के शासक शिलादित्य का भतीजा था और वर्त्तमान राजा कन्नौज (कान्यकुब्ज) देश के शासक शिलादित्य का जामाता है। इसका नाम द्रौवभट (ध्रुवपटु अथवा ध्रुवभद्र) है।

मा० जैक्विट के मत से यह द्रौवभट वलभी के राजवंश का ग्यारहवाँ राजा ध्रुवसेन द्वितीय था। इस प्रकार शिलादित्य चतुर्थ [३] का राज्यकाल, जिसके समय में वलभी का नाश हुआ था (यदि प्रत्येक राजा का समय २० वर्ष गिना जाय तो), अधिक से अधिक ७७०ई० सन् ठहरता है, परन्तु मिस्टर वाथन के अनुमान से यह समय दो शताब्दी पहले था।

"राजस्थान" के लेखक का मत है कि जिन म्लेच्छों ने वलभी पर चढ़ाई की थी वे सीथियन लोग थे। मिस्टर वाथन का कथन है कि वे "बैक्ट्रो-इण्डियन" जाति के लोग थे, जिनके बहुत से सिक्के सोरठ में मिले हैं। मिस्टर एलफिन्स्टन के विचार से वे लोग नौशेरवाँ महान्

(३) छठा शिलादित्य ध्रुवभट कहलाता था। गुप्त स० ४४१ (ई० स० ७६०)

की अध्यक्षता में आये हुये पारसी थे। यदि यह न लिखा होता कि वलभी पर आक्रमण करने वाले म्लेच्छ अथवा अहिन्दू थे तो हम यह अनुमान कर लेते कि सोरठ में अपनी सत्ता फिर से स्थापित करने का प्रयत्न करने वाले दक्षिण में "कल्याण" के सोलकियों ने ही वलभी का नाश किया था। वलभी के नाश के समय का ठीक ठीक पता लगाने में इतनी बात अनिश्चित रह जाती है कि इसको नष्ट करने वाले लोग किस जाति के थे ? इस विषय में जो कल्पनाएं की जाती हैं उनके लिये कोई दृढ आधार नहीं मिलता। हिन्दुस्तान के इस भागमें राज करने वाला अनहिलपुर के चावड़ा राजपूतों का एक और भी वंश था। कहते हैं कि अनहिलपुर राजधानी की स्थापना ईस्वीय सन् ७४६ में हुई थी।

अब जो वृत्तांत लिखा जायगा उससे विदित होगा कि चावड़ों की राजधानी की नींव वलभी के नाश के बहुत पीछे नहीं पड़ी थी।



प्रकरण २

जयशेखर चावड़ा–पञ्चासर का राजा

कच्छ के रण के पास पंचासर है। हम पढ़ चुके हैं कि वलभी से श्रीमल्ल सूरि और दूसरे लोग भाग कर यहाँ आये थे। अब हम "रत्नमाला" [१] नाम की पुस्तक के आधार पर वहीं से अपनी कथा आरम्भ करते हैं। यह ग्रन्थ कृष्णाजी नामक ब्राह्मण ने गुजरात के महान् सिंह राजा [२] की प्रशंसा में लिखा है। कवि लिखता है :–

"सोलंकी वंश की कीर्ति बहुत है। यह देवताओं का वंश है, सिद्धराज इसमें एक कुलदीपक हो गया है।"

वह कहता है:–"मै जिस मार्ग पर चल रहा हूँ वह मेरे पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से सरल हो गया है और जिन मोतियों को पिरोने के लिए मैं उद्यत हुआ हूँ वे उनकी हीरे जैसे बुद्धि से पहले ही विध चुके हैं। यह केवल वाग्देवता (सरस्वती) का ही प्रताप है कि मै इस वीर राजा की प्रशंसा करने में समर्थ हुआ हूँ।"

उसने जिन शब्दों में आत्मप्रशंसा की है उनसे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि अन्य कवियों की प्रशंसा करने में वह जितना ही उदार था उतना ही अपने गुणों से भी सुपरिचित था।

---

(१) "रत्न माला" मेरुतुंग रचित "प्रबन्धचिंतामणि" के आधार पर लिखा हुआ एक पद्यात्मक ऐतिहासिक ग्रन्थ है यह सन् १२३० ई० मे रचा गया था।

(२) सिद्धराज जयसिंह।

"जिस मनुष्य ने समुद्र में स्नान कर लिया उसने सभी तीर्थों में मज्जन कर लिया। जिसने अमृतपान कर लिया उसे और भोजन की आवश्यकता नहीं; जिसके पास पारस मणि है, उसे सभी धन प्राप्त हैं; इसी प्रकार जिसने रत्नमाला का अध्ययन कर लिया उसने सभी ग्रन्थ पढ़ लिए।"

"जिस प्रकार संगमर्मर का बना हुआ सुन्दर जलाशय जल के बिना सुशोभित नहीं होता, विशाल देदीप्यमान मंदिर शिखर के बिना सुन्दर नहीं लगता उसी प्रकार किसी मनुष्य का अगाध पाण्डित्य 'रत्नमाला' के अध्ययन बिना अपूर्ण है।"

हमें खेद है कि इस अमूल्य रत्नमाला के १०८ रत्नों में से केवल आठ रत्न ही प्राप्त हैं।

विक्रमीय संवत् ७५२ अथवा ६६६ ई० में कल्याण [१] नगर में सोलकी वश का भूवड़ राजा राज्य करता था। उसके सोलह सामन्त थे जिनको वह निरन्तर अपने पास रखता था। वे राजभक्त, राजा की बढ़ती के प्रेमी, युद्ध में पीठ न दिखाने वाले और आकाश के स्तम्भों के समान अडिग थे। उनके नाम निम्न लिखित पद्य में दिये हुये हैं।

'चंद, द्रद, भट, वेद, वीर, सिह, सिन्धु, गिरि, धीर,
सामत, धीमत, धन्वि, पट, भीम, महारथी, मिहिर।'

इनमें मिहिर मुख्य था। वह कभी किसी भी काम पर बाहर नहीं भेजा जाता था। बाकी सब सामन्त विजययात्रा के लिये उत्तर, दक्षिण,

(१) प्रबन्धचिन्तामणि" कार मेरुतुग ने लिखा हैं कि "कल्याण" कटक नगर म राजा भूदेव (भूय, भूवड, अथवा भूयड) राज्य करता था और "कुमार-पाल चरित" में भी इसी का अनुसरण किया गया है। अन्य इतिहास ग्रन्थों में भी यह नगर दक्षिण में ही माना गया है।

पूर्व, पश्चिम सभी दिशाओं में जाया करते थे। आस पास के सभी राजाओं में भूवड़ की धाक जमी हुई थी, केवल एक गुजरात का राजा ही बच रहा था कि जिस पर उसने विजय प्राप्त नहीं की थी।

यह गुजरात का राजा चावड़ा वंश का था और उसका नाम जयशेखर तथा उसकी स्त्री का नाम रूपसुन्दरी था। पंचासर उसकी राजधानी थी और वह स्वयं बलवान्, तेजस्वी और बुद्धिमान् राजा था। उसका भण्डार अटूट और सेना असंख्य थी। इस राजा की सत्ता के विषय में भूवड़ को उसके सामन्तों ने अन्धकार में रखा और वह अपने को समस्त पृथ्वी का स्वामी मानने लगा।

विजित शत्रुओं की लूटी हुई सम्पत्ति, ऊँटों घोड़ों, रथों और हाथियों से राजधानी "कल्याण" भर गई थी। वहाँ जौहरी, जुलाहे, रथ बननेवाले और सुनार आदि सभी लोग बसते थे और भवनों की भित्तियाँ चित्र विचित्र रंगों से चित्रित थी। वैद्यों, कारीगरों तथा गवैयों की संख्या बहुत थी। सार्वजनिक शिक्षा के लिये पाठशालाय खुली हुई थीं। भगवान् सूर्य छः मास उत्तर में रहते हैं और छ. मास दक्षिण में, इसका कारण केवल यही जान पड़ता है कि वे इतने समय तक लंका की राजधानी की तुलना "कल्याण" से करते रहते हैं। [१]

अन्य सभी सद्गुणों के साथ भूवड़ में सभी अच्छी बातों की चाह थी, विशेष कर विद्या की। मुख्यतया, एक आदर्श हिन्दू राजा के समान व्याकरण और काव्यशास्त्र का तो वह महान् पोषक था। उसके आश्रय में विद्वान् लोग इतने उत्साहित होते थे कि सभी कलाऐं उसके दरबार की ओर इस प्रकार दौड़ी आती थी जैसे वर्षा ऋतु में नदियाँ समुद्र की ओर प्रधावित होती हैं।

(१) इससे विदित होता है कि कल्याण पुरी (कन्नौज देश में) उत्तर में थी।

एक दिन राजा अपने बाग में बैठा था और नृत्य गीत आदि का आनन्द ले रहा था। यह बाग शिवजी के कैलाश के समान सुन्दर था और बहुत से सुगन्धित फूलों तथा फलोंवाले वृक्षों से सुशोभित था। युवराज कर्ण उसके पास ही दरबारी पोशाक पहने हुये विराजमान था और चन्द आदि सामन्तों से सभा सुशोभित थी। विद्या और बुद्धि में एक से एक बढ़े चढ़े विद्वानों की मण्डली भी उस समय उपस्थित थी। इन विद्वानों में सबसे श्रेष्ठ कवीश्वर कामराज था जो राजा का मित्र था और कवियों मे उसी प्रकार शोभा पाता था जिस प्रकार राजा भवड योद्धाओं में।

उसी समय दरबार में उपस्थित होकर एक विदेशी कवि ने राजा भूवड़ की प्रशंसा में लिखे हुये कवित्तों की एक माला भेंट की। उसकी प्रतिभा से राजा बहुत प्रभावित हुआ और अपनी सभा के कवियों को बुला कर उसकी कविता के उत्तर में कविता पढ़ने की आज्ञा दी परन्तु उनमें से किसी ने भी साहस न किया। राजा ने उस कवि का सम्मान करके शिरोपाव दिया और पूछा कि आपका नाम क्या है और जिस देश मे आप अब तक गुप्त रहे, उसका नाम क्या है?

कवि ने उत्तर दिया "मेरा नाम शंकर है और मै गुजरात देश से आया हूँ। गुजरात पृथ्वी का सर्वोत्कृष्ट भाग है। वहाँ की भूमि उपजाऊ है और पानी, घास तथा वृक्षों से शोभायमान है। वहाँ धन अटूट है और मनुष्य उदार हैं।

"पञ्चासर में समुद्र की पुत्री लक्ष्मी निरन्तर निवास करती है और वह नगरी इन्द्रपुरी से किसी बात मे कम नहीं है इसीलिये वहाँ के निवासी कभी स्वर्ग में जाने की इच्छा नहीं करते।

"अग्रगण्य चावड़ा वंशीय राजा वहाँ पर राज करता है। उसने

अपने पराक्रम से यश का इतना विशाल पर्वत खड़ा कर दिया है कि कवि लोग उसको "जयशेखर" कहने लगे हैं। अनुपम सुन्दरी रुपसुन्दरी उसकी पटरानी है जिसका भाई शूरपाल महान् पंडित और शूरवीर है। जयशेखर और शूरपाल यदि चाहें तो इन्द्र को भी इन्द्रासन से उतार दें परन्तु उन्हे इसकी इच्छा नही है क्योंकि उनका राज्य गुजरात ही समस्त पृथ्वी का तत्व है।

"वहाँ साक्षात सरस्वती निवास करती है और वहीं मैंने यह विद्या प्राप्त की है। अब, वहीं से मै दिग्विजय करने को निकला हूँ।"

गुजरात का वर्णन सुन कर राजा भूवड़ ने अपनी मूछों पर हाथ फेरा। कामराज राजा के मन की बात जान गया और शंकर से काव्य विवाद करने लगा परन्तु बुरी तरह हारा। शंकर ने उसे स्मरण कराया कि शंकर (शिवजी) तो काम (कामदेव) के सदा से विजेता हैं ही।"

राजा उस दिन के विनोद से कुछ खिन्न सा होकर महलों में चला गया। सध्या समय उसने अपने सामन्तों को बुलाया और गुजरात के विषय मे और भी अधिक वृत्तान्त जानने की इच्छा प्रकट की। उपस्थित सामन्तों ने झूठ मूठ ही राजा को बहकाने के लिए कह दिया कि "उन लोगों ने जयशेखर को परास्त करके पंचासर ले लिया था परन्तु राजा के आत्म समर्पण कर देने पर उसको नष्ट नहीं किया।"

यह बात राजा के गले न उतरी और उसने चद को सच्चा सच्चा वृत्तान्त कहने के लिए बाध्य किया। उसके द्वारा विदित हुआ कि अर्बुद गिरि अथवा आबू पहाड़ से दक्षिण की ओर जाते समय "कल्याण" के योद्धाओं की शूरपाल के साथ उसके बहनोइ की फौज थी। कल्याण के सामन्तों ने उसके साथ भिड़ना टेढ़ी खीर समझ कर

आड़े मार्ग से सोरठ का रास्ता लिया। यह बात सुन कर राजा भूवड़ ने तुरन्त सेना सजाने की आज्ञा दी। उसकी आज्ञानुसार सेना तैयार हो गई और जयशेखर पर चढ़ाई करने के लिये प्रयाण हुआ। चलते समय अपशकुन हुये परन्तु राजा की आज्ञा का उल्लङ्घन करने का किसी को साहस न हुआ।

इसी बीच में शङ्कर कवि अपने घर पहुँच गया था और उसने अपने राजा को सारा वृत्तान्त कह सुनाया था। जयशेखर युद्धप्रिय राजा था, इसलिए युद्ध का अवसर जानकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने सामन्तों को कुंडल, कवच और अन्यान्य अलङ्कारों से विभूषित करने लगा।

उधर राजा भूवड़ की सेना बढ़ती चली आ रही थी। उसमें असख्य हाथी, घोड़े तथा चार हजार रथ थे! शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित घुड़सवार और पैदलों का कोई पार न था। जिन गावों मे होकर सेना आई वे ऊजड़ होते चले गये और जिन्होंने सामना किया उन पर छापा मार कर वे लूट लिये गये। जिधर से यह आक्रमणकारी सेना निकल गई उधर ही यह दशा हुई कि जहाँ पानी था वहाँ पानी न रहा और जो स्थान सूखे थे वे नमदार हो गये। जहाँ भी पड़ाव पड़ता वहीं फौजें मल्ल विद्या तथा शस्त्रास्त्रों का अभ्यास करतीं। अन्त में, वे शत्रु के देश के समीप जा पहुँचे और सीमा पर एक शहर को लूट कर पचासर से छः मील की दूरी पर पडाव ड़ाल दिया। वहीं से वे आस पास के गांवों को लूटने लगे और स्त्री पुरुषों को बन्दी बना कर ले जाने लगे।

जयशेखर ने जब यह बात सुनी तो उसके क्रोध का पार न रहा और उसने आक्रमणकारी सेना के अधिपति मिहिर को एक पत्र लिखा जिसमें गरीब लोगों पर जोर जुल्म करने के विषय में बहुत सी ड़ॉट डपट बताई। उसने लिखा "इस तरह निन्दनीय कार्य करना शूरवीरों

को शोभा नहीं देता । तू उस कुत्ते के समान है जिसकी ओर पत्थर फैंकने पर वह पत्थर फैंकने वाले को तो कुछ न कहे और पत्थर ही को काटने लगे ।" मिहिर ने उत्तर लिखा "मुँह में घास लेकर राजा भूवड़ की शरण में आ जाओ वरना लड़ाई की तैयारी करो ।" जयशेखर ने यह उत्तर पाते ही अपने भाई बन्धुओं को बुलाया और दूसरे ही दिन लड़ाई के लिये तैयार हो गया ।

जिस समय मिहिर का उत्तर आया था उस समय शूरपाल उपस्थित नहीं था । उसने राजा को बिना कुछ कहे सुने ही रात को शत्रु पर अचानक टूट पड़ने का निश्चय कर लिया । परिस्थिति उसके अनुकूल पड़ी और उसने शत्रु को बिलकुल असज्ज पाया । उनमे से कुछ तो आस पास के गाँवों को लूटने चले गये थे कुछ खाने पीने में लगे हुये थे, कुछ सो रहे थे और कुछ नाच गान में मस्त थे । शूरपाल के साथी हाथों में तलवारें लिए उन पर टूट पड़े और जिस प्रकार घास काटने वाले को घास काटने में विशेष मेहनत नहीं पड़ती उसी प्रकार शत्रुओं को काट डालने में उन्हें अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता न पडी । चंद स्वय शूरपाल के हाथों मारा गया और द्वंद बुरी तरह घायल हुआ । जिस प्रकार मृगों के झुण्ड पर जब सिह टूट पड़ता है तो वे तितर बितर होकर भाग जाते हैं उसी प्रकार मिहिर की सेना में भगदड मच गई और बड़ी घबराहट के साथ लोग इधर उधर भाग गये ।

द्वंद के घाव भयानक थे अतः वह वापस लौटते हुए रास्ते में ही चल बसा । वेद, जो परमार राजा (भूवड़) का सम्बन्धी था, इस अपमान से क्षुभित होकर अपने सैनिक वेष को छोड कर काशी चला गया सेनापति मिहिर ने अपने मुख में कालिख लगी जान कर लौटती हुई सेना को राजधानी से आठ दिन के मार्ग की दूरी पर ही

रोक कर पड़ाव डाल दिया। राजा भूवड ने जब इस पराजय का हाल सुना तो वह स्वय मिहिर की छावनी में गया और लौट कर आई हुई सेना की इस प्रकार हिम्मत बढ़ाने लगा "एक बार हार होना दूसरी बार जीत की निशानी है। तुम जानते हो कि हाथ में लिये हुए शस्त्र को जब तक एक बार पीछे न ले जाया जाय तब तक वार ठीक ठीक नहीं बैठता।" राजा भूवड अपने सिपाहियों को उत्साहित करने में सफल हुआ और उसने युद्ध के विषय में परामर्श करने के लिए अपने सामन्तों की एक सभा बुलाई। सभा में निश्चय हुआ कि स्वय राजा की अध्यक्षता में गुजरात पर तत्काल आक्रमण करने के लिए फौजे प्रस्थान करें। प्रस्थान करते ही उन्हें शुभ शकुन हुये और बाजों, रणसींगों और दुन्दुभि के घोर नाद से आकाश गूज उठा।

सेना के पहुँचने पर जयशेखर पंचासर के दरवाजों को बद करके अन्दर बैठ गया और राजा भूवड ने नगर के चारों ओर घेरा डाल लिया। पहले आक्रमण में शूरपाल ने मिहिर को पीछे हटा दिया। पंचासर के राजा ने अपने योद्धाओं को इकट्ठा करके कहा "जिनको अपने प्राण प्यारे हैं वे सुख से वापस घर चले जॉय।" परन्तु सबने एक स्वर से उत्तर दिया "हम उच्चकुल के शुद्ध राजपूत हैं और तुम्हारे साथ मरने को तैयार हैं। इस विपत्ति में जो कोई पीठ दिखायगा उसका मांस कौवे खावेंगे अथवा वह एक कल्प तक नरक में निवास करेगा।" बावन दिन तक लगातार हमले करने पर भी जब कोई फल न निकला, तो राजा भूवड़ ने मिहिर को दरबार में बुलाया। उसने सलाह दी कि इस अवसर पर शूरपाल को फोड़ना चाहिए। आकडे के दूध से एक पत्र लिख कर शूरपाल के पास भेजा गया, जिसको कुंकुम लगा कर उसने पढ़ा। उसने राजा भूवड़ की बात को स्वीकार नहीं किया और लिख दिया

"एक बार दूध से मिला हुआ पानी उससे अलग नहीं हो सकता इसी प्रकार मैं भी जयशेखर से दूर नहीं हो सकता। मूर्खराज ! मै ऊँचे कुल में उत्पन्न हुआ हूँ मुझसे ऐसी आशा ही तुमने क्यों की ? यदि त्रिलोकी का राज्य भी मिलता हो तो वर्णसंकर के अतिरिक्त और कोई ऐसा काम करने को उद्यत न होगा।"

रात के समय दोनों ही राजा अपनी अपनी सेना के शूरवीरों को उत्तेजित करने तथा स्वय युद्ध की रीतियों के जानने के लिए महाभारत के पद्य गवाया करते थे। भीम के अद्भुत पराक्रम की कथा सुन सुन कर गुजरात के वीर बहुत उत्तेजित हो जाते थे और कहते थे कि रात्रि का अन्त कब होगा और कब प्रातःकाल आवेगा जब कि हम लड़ेंगे।

"जिस प्रकार कोई वियोगिनी अपने पति की बाट देखती है उसी प्रकार वे सुभट अधीर होकर प्रातःकाल की प्रतीक्षा किया करते थे। उन्होंने महाभारत में पढ़ा था " जो रणस्थल में प्राण त्याग करते हैं उन्हे स्वर्ग में अप्सराये वरण करती हैं।" इसलिए वे इस मिट्टी धूल के घर को छोड़ कर स्वर्ग को प्राप्त करने की इच्छा करते थे। सूर्योदय होते ही जयशेखर की आज्ञा से वे युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते थे। युद्ध से विजयी होकर लौटने की उन्हे आशा नहीं थी वरन् लड़ने, मरने और अप्सराओं को वरण करने के लिए उनकी इच्छा अधिक प्रबल थी। उन वीरों के इस निश्चय को देख कर अप्सरायें उन्हें वरने को तैयार हो रही थीं। "ज्योंही वे वीर कवच धारण करते थे, त्योंही अप्सरायें शृङ्गार करके तैयार हो जाती थीं, ज्योंही वे योद्धा अपने शस्त्र ग्रहण करते थे, त्योंही वे (अप्सराये) अपने हाथों में वरमाला लेकर इधर उधर हिलाती थीं, जैसे जैसे योद्धा लोग अपने घोड़ों की बागडोर खींचते थे, वैसे ही अप्सराये अपने रथों को आगे बढाती थीं।"

रूपसुन्दरी ने अन्तः पुर मे युद्ध का भयङ्कर शब्द सुना और अपने स्वामी को बुला कर विनती की "हे स्वामी ! जब तक शकुन अनुकूल न हो तब तक आप रणक्षेत्र पर न पधारें"। परन्तु जयशेखर ने उत्तर दिया "कन्या के विवाह के समय तथा जब शत्रु द्वार पर आ पहुँचा हो तब शकुन का विचार नहीं करना चाहिए वरन् श्री कृष्ण का नाम ही लेना चाहिए।" यह कह कर उसने रानी का समाधान किया। वर्षा ऋतु मे जब घटाये घिर आती है और बिजलियाँ चमकती हैं उस समय जिस प्रकार एक बादल दूसरे बादल से टकराता है उसी प्रकार दोनों सेनाये एक दूसरी से भिड़ने लगीं। उनके शस्त्र बिजली की तरह चमकते थे, उनके पैरों से पृथ्वी बादल की गर्जना के समान थर्राती थी। रण-वाद्यों को सुन कर कायरों मे भी शूरता जाग उठती थी। वर्षा ऋतु मे जिस प्रकार पानी की बौछारे पड़ती हैं उसी प्रकार यहाँ शस्त्रास्त्रों की वर्षा हो रही थी। वे हल, मुशल और फरसियों से लड़ने लगे, हाथी हाथियों से, घोड़े घोड़ों से और रथी रथियों से भिडने लगे। रक्त की नदी में योद्धाओं के मृत शरीर बहने लगे और जैसे जैसे युद्ध का शब्द घोर होता जाता था, वैसे ही लोग अधिकाधिक अट्टहास करते थे। जो लोग हिम्मत हार जाते थे उनको भाट लोग इस प्रकार उत्साहित करते थे "वीर-पुत्रो ! तुम धन्य हो, इस सग्राम रूपी तीर्थ में, जो तुम्हे बार बार न मिल सकेगा, विश्वव्यापिनी ख्याति, स्वर्ग और देवताओं के मुख से प्रशसा प्राप्त करो और अमर हो जाओ।"

युद्ध का घोर रव आकाश में पहुँचा और देवताओं का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ। वे आपस में कहने लगे "क्या कुरुक्षेत्र में फिर युद्ध छिड़ गया है ?" अप्सरायें नृत्य करने लगीं। गंधर्व अपने वाद्य-यन्त्र बजाने लगे और पाताल लोक के नाग तथा देवता कॉपने लगे। रण-

भूमि मे आकर शिवजी घूमने लगे और कभी पूरी न होने वाली अपनी मुण्डमाला में शूरवीरों के मुण्ड ले ले कर पिरोने लगे, योगिनियाँ और अन्यान्य माँसभक्षी, हाथ में खप्पर लेकर उनको रक्त से भरने लगे तथा गिद्धों की भाँति रणस्थल पर एकत्रित होने लगे।

शूरपाल ने अपनी चिरपरिचित शूरता से भट की सेना को पीछे हटा दिया। परन्तु पीछे हटे हुये लोगों को धिक्कारते हुये स्वय राजा भूवड़ ने कहा "जो लोग रण से पीठ दिखा कर आये हैं वे मेरे हाथ से मारे जावेगे। प्राणों पर खेल कर भट शत्रुसेना पर टूट पड़ा और बहुत से योद्धाओं को मार गिराया परन्तु उसके ऊपर बाणों की निरन्तर वर्षा होने लगी और अन्त में वह शूरपाल के हाथों बुरी तरह घायल हुआ। भट के इस जी तोड़ पराक्रम का फल अन्त में मिल ही गया क्योंकि उसकी सेना जयशेखर की सेना को हटाने में सफल हुई और उसने पश्चिम की ओर डटकर किले को तोड़ दिया।

जब जयशेखर ने देखा कि इस घमासान युद्ध में उसके बहुत से योद्धा मारे गये और विजय की कोई आशा नहीं है तो उसने शूरपाल को बुला कर कहा "तुम अपनी गर्भवती बहन रूपसुन्दरी को किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाओ जिससे मेरे वंश के बीज की रक्षा हो।" शूरपाल ने पहले तो ना कर दी परन्तु राजा ने अपनी शपथ दिलाकर उससे कहा "तुम मेरे लिये इतना सा काम करो, मेरे वश में कोई भी श्राद्ध करने वाला नहीं है इसलिए मैं और मेरे पूर्वज मोक्ष न पा सकेंगे क्योंकि पुत्रहीन की मोक्ष नहीं होती। मेरे भाई! शत्रु अब निष्कण्टक राज्य करेंगे क्योंकि मेरे वंश का बीज नष्ट हो जाएगा।" इस प्रकार आग्रह करने पर शूरपाल अपनी बहन को लेकर किले से निकल पड़ा परन्तु जब रूपसुन्दरी को अपने भागने का कारण ज्ञात हुआ तो उसने

आगे जाने से इनकार कर दिया और अपने पति के शव को लेकर जल मरने का दृढ निश्चय प्रकट किया । वंश के नाशवाली बात शूरपाल पर असर कर चुकी थी । उसने यही बात अपनी बहन को समझा बुझा कर शान्त किया और उसे जंगल मे छोड़ कर राजा जयशेखर के साथ मरने का निश्चय करके वह लौट आया । [१]

इसी बीच में, राजा भूवड ने देखा कि उसके शत्रु अब किले की रक्षा अधिक नही कर सकते हैं तो उसने जयशेखर के पास एक दूत भेज कर कहलाया "यदि तुम हाथ पीछे बांध कर और मुँह में तिनका लेकर मेरे पास आओ और मेरे चरण छुओ तो गुजरात का राज्य पूर्ववत् तुम्हारे अधिकार मे छोड़ा जा सकता है ।" जयशेखर ने उत्तर दिया "इस प्रकार आत्मसमर्पण करने के पीछे मेरे जीवन में कोई आनन्द न रह जायगा, गुजरात के बदले स्वर्ग पाना उत्तम रहेगा। इस प्रकार चावडा वंश का अंतिम राजा होकर अपने पीछे कीर्ति तो छोड़ जाऊँगा ।"

इस उत्तर से क्रोधित होकर राजा भूवड अपनी विजय को पूर्ण करने के लिए तत्काल तैयार हो गया। जयशेखर के पास जो थोड़ी सी

---

(१) शेक्सपियरकृत Henry VI नाटक के अङ्क-४ दृश्य ४ में भी ऐसा ही एक प्रसग है—"मेरे गर्भ में राजा एडवर्ड का वंशज है, उसीके प्रेम के वश में होकर मैं अपनी निराशा का त्याग करती हूँ, और इसी कारण, अपने मनके आवेश को रोककर और विनम्र होकर मुझपर आई हुई विपत्ति को सहन करती हूँ । ओह ! इसीलिये तो मैं अपने निरन्तर टपकने वाले आँसुओं तथा रक्त को सुखा देने वाले निश्वासों को रोके रखती हूँ कि कहीं इंगलैण्ड की गद्दी का सच्चा उत्तराधिकारी और एडवर्ड राजा का वंश, मेरे इन आँसुओं की बाढ में न डूब जाये वा इन निश्वासों से न उड़ जावे ।"

सेना बची थी उसका भूवड़ की विशाल सेना के आगे कुछ भी वस न चला। स्वय राजा ने प्राणों पर खेलकर पराक्रम दिखाया और घास की तरह शत्रुओं की सेना को काटता चला गया। परन्तु, अन्त में वह मारा गया और उसके शरीर को रौंदते हुये शत्रुओं ने पचासर में प्रवेश किया। [१]

किले के रक्षकों और द्वारपालों ने मृत्युपर्यन्त सामना किया परन्तु घोर मारकाट के पश्चात् भूवड़ ने महल में प्रवेश किया। वहाँ दासियों ने उसका सामना किया, दरवाज़ों की आगलें इत्यादि जो भी शस्त्र हाथ लगा उसको लेकर उन्होंने प्रहार किया और शत्रुओं को नगर के दरवाजे से बाहर निकाल दिया। अब उनकी मनोकामना पूरी हुई क्योंकि वे जयशेखर के मृतशरीर को प्राप्त करना चाहती थीं और वह उन्हें मिल गया। इसके पश्चात् उन्होंने चन्दन और नारियल की चिता तैयार की और जयशेखर के शरीर को लेकर वे सब जलकर राख हो गई। उनमें दास दासियों सहित चार रानियाँ भी भस्म हुई। नगर-निवासियों में से जिन लोगों का राजा से घनिष्ठ स्नेह था वे भी अपने स्वामी के साथ

(१) रत्नमालाकार कृष्णदासने लिखा है "जयशेखर ने तीन दिन तक युद्ध किया। युद्ध में उसके दोनों हाथ कट गये फिर भी उसने भूवड की छाती पर लातों के खूब प्रहार किये जिनसे भूवड मूर्च्छित हो गया और लोगों ने यह समझ लिया कि उसकी मृत्यु हो गई। इतने ही में जयशेखर के पीछे आ कर दो योद्धाओं ने उसका शिर काट लिया परन्तु फिर भी उसका रुण्ड तीन दिन तक बराबर जूझता रहा। तब तक भूवड की भी मूर्छा टूट चुकी थी और उसने होश में आकर कहा "हे क्षत्रियपुत्र! तुम्हारे माता पिता धन्य हैं, तुम किसी अत्यन्त पराक्रमी देवता के अंश हो। हे बुद्धिशाली! तुम्हारे शरीरत्याग के स्थान पर तुम्हारी स्मृति में गुर्जरेश महादेव का एक विशाल प्रासाद बनवाऊँगा।" ऐसा कहकर उस वीर को बार बार प्रणाम करके निःशङ्क होकर उसने नगर में प्रवेश किया।"

स्वर्गद्वार तक गये। अन्त में, अपनी सेना सहित राजा भूवड़ फिर नगर में घुसा और चिता को बन्द करवा दी। उसने स्वय चावडा वंश के राजा की उत्तरक्रिया की और जिसने उस सच्चे वीर को जन्म दिया था उसकी प्रशंसा करने लगा। चिता के स्थान पर उसने एक शिवजी का मन्दिर बनवाया जिसका नाम "गुर्जरेश्वर" पड़ा। जिस दिन जयशेखर की मृत्यु हुई उस दिन सूर्य धुंधला पड गया, चारों दिशाये भयकर हो गई, पृथ्वी कॉपने लगी, नदियों का पानी गॅदला हो गया, पवन में गर्मी आ गई, होम की अग्नि मे से गहरी धुआँ निकलने लगी और आकाश में से तारे टूट टूट कर गिरने लगे। इन उत्पातों को देखकर लोगों ने जान लिया कि आज कोई वीर इस ससार से चल बसा है।

राजा भूवड़ ने कच्छ और सोरठ [१] पर अधिकार प्राप्त किया और गुजरात की शोभा देखकर वहीं रहने का विचार करने लगा, परन्तु उसके मन्त्रियों ने कहा "अभी आपके मार्ग का कॉटा शूरपाल जीवित है।" इसलिये वह आस पास के राजाओं पर कर नियुक्त करके अपने प्रतिनिधि मन्त्री को वहीं रख कर स्वदेश लौट गया।

शूरपाल जब अपनी बहन को सुरक्षित स्थान पर छोड़कर वापस आया तब तक जयशेखर मर चुका था। उसके मन में पहले तो यह विचार आया कि वह भी लड़ाई मे जाकर जयशेखर का अनुसरण करे परन्तु फिर उसको ध्यान आया कि यदि मैं युद्ध में मारा जाऊँगा तो

(१) कच्छ और सौराष्ट्र के राजा भी जयशेखर की सहायता को आये थे। इस युद्ध में उनकी भी हार हुई इसलिए भूवड ने कच्छ के वागड भाग मे गेडी (घृतपदी) तथा गरडामा के आधुनिक नखत्राणा के आधीन गुंतरी नामक स्थान पर सोलंकी राजपूतों के थाने नियुक्त किए। वनराज चावडा ने बड़े होकर जब तक अपना राज्य पुन प्राप्त न कर लिया तब तक यह स्थान सोलंकियों के ही अधिकार मे रहे।

भूवड का राज्य निष्कण्टक हो जायगा। जो कुछ होना था सो तो हो चुका। अब आगे सोच विचार कर काम करना चाहिए। यदि भाग्य से मेरी बहन के पुत्र उत्पन्न हो जाय तो वह फिर गुजरात पर अधिकार प्राप्त करेगा और मेरी सहायता के बिना यह कार्य होना दुष्कर है। यह विचार कर वह अपनी बहन को ढूंढने के लिए रवाना हुआ परन्तु उसका पता न लगा। कितने ही लोगों का कहना है कि उसे अपनी बहन को मुँह बताने में शर्म लगी इसलिए वहाँ गया ही नहीं। अस्तु, वह गिरनार पर्वत के आस पास जङ्गलों में शुभ वेला की प्रतीक्षा में दिन काटने लगा।

इधर, शूरपाल के चले जाने के बाद रूपसुन्दरी को एक भीलनी ने देखा और उसे किसी भले घर की स्त्री जान कर कहने लगी "बहन! मेरे साथ इस वन में रहो। फल, फूल शाक, पात, इस पर्वत में खब मिलेंगे। तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट तथा भय न होगा।" रानी ने उसकी बात मान कर प्रसवकाल तक ठहरना स्वीकार कर लिया।

समय पर उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। संवत् ७५२ की वसत ऋतु में इस पृथ्वी के सूर्य का उदय हुआ। इस महापराक्रमी वीर का जन्म गो-ब्राह्मण-प्रतिपालन के लिए हुआ था। उस दिन निर्मल आकाश में सूर्य का उदय हुआ, नदियों का पानी निर्मल होकर बहने लगा, ब्राह्मणों के यज्ञकुंडों में से धूआँ न निकलता था। इन सब शुभ शकुनों से लोगों ने जान लिया कि आज किसी वीर पुरुष ने जन्म लिया है।

जब यह बालक छ: महीने [१] का था तब उस जङ्गल में होकर जाते हुए एक जैन यति ने एक वृक्ष की डाल पर लटकते हुए पालने में

(१) मूल पुस्तक में ६ वर्ष लिखा हैं जो गलत है।

एक शिशु को देखा जो स्वर्ग के राजा (इन्द्र) के दरबार में रहने वाले किसी देवता के समान दिखाई देता था। [१] इसे देख कर जैन साधु को आश्चर्य हुआ और पूछ ताछ करने पर उसे ज्ञात हुआ कि उसकी माता एक रानी है। वह उसे आदर सहित नगर में ले गया। इसके पश्चात्

(१) शास्त्री व्रजलाल कालिदास ने प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर खोज करके इस प्रकार लिखा है:—

"विक्रमाय आठवीं शताब्दी में कान्यकुञ्ज (कन्नौज) के राजा ने खेटकपुर (खेडा जो उस समय गुजरात की राजधानी था) से गुर्जरवंशीय राजा को निकाल कर अपना राज्य स्थापित किया। उस समय वलभीपुर में सूर्यवंशी ध्रुवपट्ट नामक राजा राज्य करता था। कन्नौज के राजा आम ने रत्नगङ्गा नाम की पुत्री का विवाह उसके साथ और दूसरी पुत्री का विवाह लाट देश (भृगुकच्छ) के राजा के साथ किया था। कन्नौज का राजा राष्ट्रकूट वंश का क्षत्रिय था। वह गोपगिरि नामक दुर्ग में रहता था और सार्वभौम राज्य का उपभोग करता था। किसी बौद्धधर्म के आचार्य से प्रभावित होकर उसने वेदधर्म छोड कर बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। वलभीपुर के राजा ध्रुवपट्ट और भृगुकच्छ के चालुक्य राजा के साथ अपनी पुत्रियों का विवाह करके उसने उन दोनों को भी बौद्धधर्म में परिवर्तित कर लिया था और अपना गुर्जरदेश का राज्य अपनी बडी पुत्री रत्नगगा को काँचली (दहेज) में दे दिया था। इस प्रकार गुर्जरदेश का सयोग वलभीपुर के राज्य के साथ हो गया। गुर्जरवंशी राजा ने जो भूमि ब्राह्मणों को दान में दे दी थी, उस पर भी बौद्ध-धर्मानुयायी राजा ने कर लेना आरम्भ कर दिया। ब्राह्मणों ने कर माफ कर देने के लिए बहुत प्रार्थना की परन्तु वह माफ नहीं हुआ। इससे असन्तुष्ट होकर वे लोग गुर्जरदेश के वढियार प्रान्त में पचासरपुर को चले गये जहाँ चापोत्कट (चावडा) वंशीय वेदधर्मानुयायी जयशेखर राजा राज्य करता था। यद्यपि जयशेखर का राज्य छोटा था परन्तु बलवान् होने के कारण उसने ब्राह्मणों को आश्रय दिया और वलभी के राजा से गुर्जरदेश का राज्य छीनकर वहा अपना राज्य स्थापित करके ब्राह्मणों को करमुक्त कर दिया। ध्रुवपट्ट राजा ने अपने श्वसुर, कन्नौज के राजा सुधन्वा को यह समाचार कहलाया। इस पर राष्ट्रकूट का राजा बडी भारी सेना लेकर गुर्जरदेश के

उसने रानी को जयशेखर की मृत्यु का समाचार सुनाया और धीरज बँधा कर कहा "मैं इस बालक की रक्षा करूँगा।" वन में जन्म लेने के कारण यति ने इस बालक का नाम "वनराज" (वन का राजा) रखा। बालक के जन्म का भेद शीघ्र ही शूरपाल को भी विदित हो गया। वह अब तक जङ्गल

राजा जयशेखर को जीतने के लिये आया और पंचासर को घेर लिया। जयशेखर ने अपना पराजय और मरणकाल निश्चित देखकर अपने साले शूरपाल को बुलाकर कहा "जो कुछ होना था सो तो हुआ, तुम्हारी बहन (रानी) गर्भिणी है उसको यहां से थोड़ी दूर पर धर्मारण्य क्षेत्र में इस तरह ले जावो कि किसी के कानों कान खबर न हो। वहा मोढेरा ब्राह्मण ऋषि तप करते हैं और पीलुओं के वन में रहते हैं। तुम मेरा नाम लेकर इसको वहां सौंप देना जिससे इसका रक्षण हो सकेगा।" शूरपाल अपनी बहिन अक्षता रानी को ब्राह्मणों के आश्रम में छोड आया। ब्राह्मणों ने उसका भली प्रकार रक्षण किया। शूरपाल के लौट आने के बाद रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ। वन में पैदा होने के कारण ब्राह्मणों ने उसका नाम वनराज रक्खा और जातकर्मादिक सभी संस्कार पूरे किये। इस आश्रम के पास ही इन्द्र नामक सरोवर था, वहीं पर बालक वनराज ब्राह्मण बालकों के साथ खेला करता और ब्राह्मणों के पास विद्याभ्यास किया करता। यज्ञोपवीत हो जाने के बाद उसने वेद पढना आरम्भ किया और विष्णुगुप्तादिरचित नीतिग्रन्थ भी पढे। वह प्राचीन इतिहास की बातों को बड़े ध्यान से सुनता और उन पर विचार करता। इसके बाद वह अपने गुर्जरदेश का राज्य पुनः हस्तगत करने का विचार करने लगा। एक दिन ग्रीष्म ऋतु में वनराज इन्द्रसरोवर के किनारे बड के पेड के नीचे सो रहा था। सूरज की तेज धूप उसके मुँह पर पडने लगी तो एक सर्प ने आकर अपना फण फैला कर उसके मुंह पर छाया कर दी। जब ब्राह्मणों ने यह देखा तो कहा "यह बालक विदेशी शत्रुओं को बाहर निकाल कर गुर्जरदेश का राजा होगा और साथ ही सौराष्ट्र तथा लाट देश भी इसके अधिकार में आ जाएंगे। इसके जन्मलग्न में राजपद के साथ साथ पराक्रमशील होने के भी ग्रह पडे हैं।" इसके बाद वनराज अपने मामा को साथ लेकर बाहर निकला। पहले दस योद्धा उसके साथ हुए, फिर धीरे धीरे सेना बढती गई।

में रह कर भूवड के सूबेदार को निरन्तर हैरान करता रहता था। फिर अपने भानजे को चुपके से ले आया, वह (वनराज) उसके पास रह कर चौदह वर्ष की अवस्था तक तेज, पराक्रम और बुद्धि में सिंह के बच्चे के समान निरन्तर बढ़ता रहा, साथ ही अपने पिता के राज्य को पुनः प्राप्त करने के विचार उसमें पनपते रहे।

एक बार कन्नौज के राजा भूभट की सेना गुर्जरदेश से कर वसूल करने के लिए आई थी। चौबीस लाख सोने की मोहरें व चार सौ सुसज्जित घोडे साथ लेकर ये लोग लौट रहे थे कि बीच ही में वनराज ने उन पर हमला कर दिया और सब मालमता लूट लिया। इसके बाद वह एक वर्ष तक कालुम्भर के वन में छुपा रहा और आगे चलकर इसी धन के बल पर गुर्जरदेश का राजा बन गया।

मोढेरा ब्राह्मणों के ग्रन्थों मे वनराज की माता छता (अछता) के वन में जाने, उनका आश्रय लेने तथा वनराज के बडे होने का वर्णन विस्तार सहित लिखा है। जैन ग्रन्थो मे लिखा है कि उसने जैन साधु शीलगुण सूरि का आश्रय लिया था। यह बात सही ज्ञात नहीं होती क्योंकि जैन साधु अपने धार्मिक नियमानुसार वन में रानी का आश्रय नही दे सकते थे अपितु उन्होंने लिखा है कि "तद्द्वेषी नैव मन्यते" हमने रानी को आश्रय दिया परन्तु द्वेषी ब्राह्मण मानते नहीं हैं इसलिये रानी द्वारा ब्राह्मणों का आश्रय ग्रहण करने की बात ही सच्ची ठहरती है।

वनराज चावडा अपना नया नगर बसाने के लिये कोई वीरभूमि तलाश कर रहा था इतने ही मे अणहिल रैबारी ने उसे ऐसी भूमि दिखाई जहां "शशकेन श्वा त्रासित." शशक से डर कर कुत्ता भग गया। इसके बाद उसने उसी जगह अणहिल रैबारी के नाम पर अणहिलपुर नगर बसाया। उस समय वनराज की अवस्था ५० वर्ष की थी। विक्रम संवत् ८०२ आषाढ सुदि ३ के दिन वनराज का राज्याभिषेक हुआ था।

प्रकरण ३

वनराज और उसके क्रमानुयायी—अणहिलपुर का चावड़ा वंश (१)

वनराज की उत्पत्तिके विषय में जैन ग्रन्थकारों के लेख तथा जो दन्त-कथाएँ अब तक गुजरात में प्रचलित हैं उनमें रत्नमाला के वर्णन से

---

(१) रासमाला के अनुसार राजावली :—

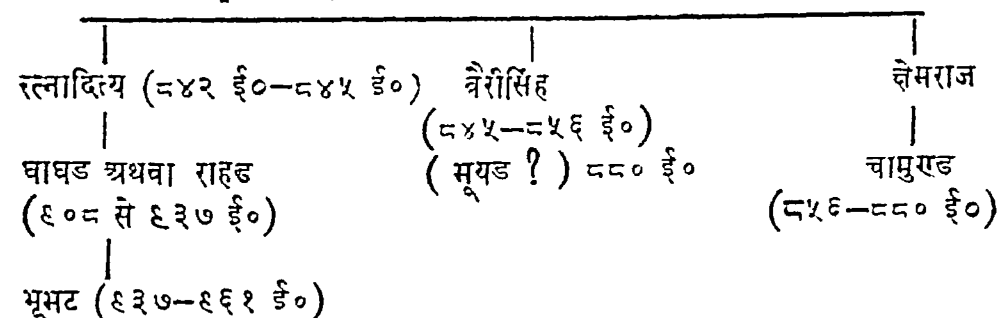
क्रमाङ्क	नाम	संवत्	सन्	से	संवत्	सन्	तक	वर्ष	राज्य किया
१	वनराज	८०२	७४६	,,	८६२	८०६	,,	६०	,,
२	योगराज	८६२	८०६	,,	८९७	८४१	,,	३५	,,
३	क्षेमराज	८९७	८४१	,,	९२२	८६६	,,	२५	,,
४	भूवड (पिथु)	९२२	८६६	,,	९५१	८९५	,,	२९	,,
५	वैरीसिंह (विजयसिंह)	९५१	८९५	,,	९७६	९२०	,,	२५	,,
६	रत्नादित्य(रावतसिंह)	९७६	९२०	,,	९९१	९३५	,,	१५	,,
७	सामतसिंह(भूयडदेव)	९९१	९३५	,,	९९८	९४२	,,	७	,,

योग १९६ वर्ष

बहुत साम्य है। पचासर पर राज्य करने वाले चापोत्कट अथवा चावड़ा वंश की उत्पत्ति सिन्धु नदी के पश्चिमी भाग में बताई जाती है।

[राव० ब० गोविन्ददास भाई कृत "प्राचीन गुजरात" (Early Gujrat) नामक ग्रन्थ के पृ० १४१ में नवीन शोध व कल्पना के अनुसार इस प्रकार हैं]

वनराज— [जन्म सन् ७२० ई०; राज्याभिषेक सन् ७६५ ई० मृत्यु ७८० ई०
| इस प्रकार १५ वर्ष राज्य किया। फिर २६ वर्ष का अन्तर]
योगराज [८०६ ई० से ८४१ ई० तक



इस प्रकार उनका वंश क्रम लिखा है। इन राजाओं ने निम्न तालिकानुसार राज्य किया :—

क्रमाङ्क	नाम	संवत्	सन्	से	संवत्	सन्	तक	वर्ष	राज्य किया
१	वनराज	८२१	७६५	,,	८३६	७८०	,,	१५	,,
२	चामुण्ड युवराज	८३६	७८०	,,	८६२	८०७	,,	२६	,, ❀
३	योगराज	८६२	८०७	,,	८९१	८३६	,,	२९	,,
४	रत्नादित्य	८९१	८३६	,,	८९४	८३९	,,	३	,,
५	वैरीसिंह	८९४	८३९	,,	९०५	८४९	,,	११	,,
६	क्षेमराज	९०५	८४९	,,	९३७	८८१	,,	३४	,,
७	चामुण्डराज	९३७	८८१	,,	९६४	९०८	,,	२७	,,
८	घाघड़	९६५	९०८	,,	९९२	९३६	,,	२७	,,
९	उसका कुंवर भूमट	९९३	९३७	,,	१०१७	९६१	,,	२४	,,

योग १९६ वर्ष

❀ अमर चन्द मुनि ने हिन्दी में राजमण्डल ग्रन्थ रचा है जिसमें लिखा है कि

इस वंश का सम्बन्ध न सूर्य वंश से है न चन्द्रवंश से, क्योंकि यह केवल पश्चिमी हिन्दुस्तान में ही पाया जाता था। कहते हैं कि सोरठ के 'देव' और 'पट्टण सोमनाथ' नामक दो बन्दरगाहों पर जयशेखर अथवा यशराज चावड़ा के पूर्वजों का राज्य था। वे कभी वलभी के राजा के अधिकार में रहे होंगे और इस नगर का नाश होने पर सुरक्षित स्थान समझ कर पञ्चासर चले आये होंगे। इनके साथ ही वलभी के जैन आदि अन्य प्रजागण भी अपनी रक्षार्थ यहीं चले आये।

पंचासर नाम का एक छोटासा कस्बा अब भी कच्छ के छोटे रण के किनारे पर स्थित है और राधनपुर के नवाब के अधिकार में है। पंचासर से कुछ मील उत्तर की ओर चदूर नामक ग्राम को वनराज की जन्मभूमि बताया जाता है और एक दूसरा छोटासा कस्बा उसीके नाम पर वनोड़

युवराज चामुण्ड का जन्म स. ८२५ में हुआ। उसने २६ वर्ष राज्य किया। इस प्रकार २६ वर्ष का अन्तर पूरा हो जाता है।

"सुकृत संकीर्तन" नामक काव्य मे चापोत्कट वंश के राजाओं की तालिका इस प्रकार लिखी है :—

(१) वनराज (२) योगराज (३) रत्नादित्य (४) वैरीसिंह (५) क्षेमराज (६) चामुण्डराज (७) राहुराड अथवा राहड़ (८) भूभर अथवा भूभड, इसको संवत् १०२२ (ई० स० ९६६) में चालुक्य वंश के मूलराज ने मार डाला और राज्य ले लिया।

मेरुतुंगाचार्य रचित 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक संस्कृत ग्रन्थ की टीका शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथ ने लिख कर सन् १८८८ में छपाई जिसमें चावडा वंश को इस प्रकार लिखा है:—

वनराज:—वैशाख सुदी २ सोमवार संवत् ८०२ वि० मे अणहिलवाड़ा की गद्दी पर बैठा और सं० ८६२ में उसकी मृत्यु हुई। इस प्रकार १०९ वर्ष २ महीने और २१ दिन की आयु भोग कर ५९ वर्ष २ महीने २१ दिन राज्य किया।

कहलाता है। कहते हैं कि वनराज ने अपना बाल्यकाल यहीं व्यतीत किया था। वहाँ उसकी कुल देवी वनावी माता का मन्दिर और वेन नाम का एक कुँआ है जो उसी की आज्ञा से बना हुआ बताया जाता है। गुजरात प्रान्त का यह भाग आज भी जैन ग्रन्थकारों के दिये हुये वढियार नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ की धरती सपाट है परन्तु कृपि

योगराज'—संवत् ८९२ के आषाढ की शुक्ला ३ गुरुवार को आश्विन नक्षत्र सिंह लग्न में राज्याभिषिक्त हुआ। सं० ८७८ (८७९) श्रावण शुक्ला ४ तक वर्ष १७ मास १ दिन १ राज्य किया। क्षेमराज आदि तीन पुत्र हुए।

रत्नादित्य -संवत् ८७९ श्रावण शुक्ला ५ उत्तराषाढ नक्षत्र धनुर्लग्न में गद्दी पर बैठा सं. ८८१ (सं० ८८२) कार्तिक शुक्ला ९ तक ३ वर्ष ३ महीने राज्य किया। (सं ८८२ कार्तिक सुदी १० से सं. ८८७ तक ५ वर्ष ३ महीने १९ दिन का अन्तर)

क्षेमराज देव —संवत् ८९८ (सं० ८८७) ज्येष्ठ शुक्ला १३ शनिवार को हस्त नक्षत्र सिंह लग्न में गद्दी पर बैठा संवत् ९२२ (सं० ९२५) भाद्रपद शुक्ला १५ रविवार तक ३८ वर्ष ३ मास १० दिन राज्य किया।

चामुण्डराजदेव—संवत् ९२५ (सं० ९३५) आश्विन सुदि १ सोमवार रोहिणी नक्षत्र, कुम्भ लग्न में पट्टाभिषेक हुआ। तब से संवत् ९३८ (सं० ९३९) माघ वुदी ३ सोमवार तक वर्ष १३ मास ४ और १६ दिन राज्य किया।

श्रीआकड देव:-सं० ९३८ (९३९) माघ वुदि १४ मंगलवार, स्वाति नक्षत्र सिंह लग्न मे राज्याभिषेक हुआ तब से संवत् ९६५ पौष शुक्ला ९ बुधवार तक २६ वर्ष १ मास और २० दिन राज्य किया।

श्री भूयगडदेव—संवत् ९९० (९६५) पौष शुक्ला १० गुरुवार आर्द्रा नक्षत्र कुम्भ लग्न में पट्टाभिषेक हुआ। इसने "भूयगडेश्वर" प्रासाद नामक देवालय बनवाया। सं ९९१ (९९३) आषाढ सुदी १५ तक २७ वर्ष ६ मास और १० दिन राज्य किया। इसको मार कर इसका भानजा मूलराज सोलंकी सं. ९९३ में आषाढ शुक्ला १५ गुरुवार

बहुत कम होती है क्योंकि बिलकुल पास ही में कच्छ का रण आ गया है अत: जमीन प्राय: वैसी ही हो गई है। इसी भूभाग में छोटे छोटे ग्राम बसे हुये हैं जो आसपास में उगे हुये वृक्षों की झुरमुटों के कारण दूर ही से स्पष्ट दिखाई पडते हैं। पंचासर के पास ही रांतज और शखेश्वर नामक ग्रामों में अब भी जैन मंदिरो के खंडहर वर्तमान

को अश्विनी नक्षत्र सिंह लग्न में दो पहर रात्रि गए इक्कीस वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा।

इस प्रकार चापोत्कट वश के सात राजाओं ने १९० वर्ष २ मास ७ दिन राज्य किया।

ऊपर के कोष्ठको मे दिये हुए सवनों को गिनने से ही राज्यकाल के वर्ष ठीक ठीक आते हैं।

शास्त्री व्रजलाल कालिदास के अनुसार चापोत्कट वंश के राजाओं की तालिका इस प्रकार है.—

(१) वनराज (२) योगराज (३) वैरसिंह (इसने अपनी पुत्री का विवाह बिल्हण पंडित के साथ किया था) (४) क्षेमराज (५) चामुण्डराज (६) आहूड और (७) भूमट (इसके पुत्र नहीं था इसलिये इसके बाद इसका भानजा चालुक्य मूलराज (सोलकी) गद्दी पर बैठा।

मेरुतुंग के "प्रबन्धचिन्तामणि", जिनमण्डन उपाध्याय के "कुमारपालप्रबन्ध और "पट्टावलि" में चावडा वंश के राजाओं का क्रम तथा उनके राज्यकाल के वर्ष "रासमाला" के अनुसार दिये हुए हैं, केवल "पट्टावलि" में लिखा है कि योगराज ने ३२ वर्ष राज्य किया और दूसरे ग्रन्थों में लिखा है कि उसने ३५ वर्ष राज्य किया।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित मुँहणोत नैणसी की ख्यात, द्वितीय खण्ड में पृ० ४७७—७८ पर पाटण में चावडों का राज रहा, जिसकी तफसील इस प्रकार दी है—"वनराज ने राज किया ६० वर्ष ६ मास, राजादित्य ने ३ वर्ष, क्षेमराज ३९ वर्ष, गुडराज १९ वर्ष, जोगराज १० वर्ष, वीरसिंह ११ वर्ष, चूडाव

है। इन देवालयों का यद्यपि कई बार जीर्णोद्धार हो चुका है परन्तु यह निश्चित है कि ये उस स्थान पर अत्यन्त प्राचीन काल से स्थित हैं। 'वला' के आसपास मे जैसे खंडहर आजकल दिखाई पडते हैं वैसे ही प्राचीन नगरों के ध्वंसावशेष विश्रोडा तथा अन्य निकटवर्ती स्थानों में भी पाये जाते हैं।

जिस जैन साधु ने वनराज की रक्षा की थी उसका नाम शीलगुण सूरि [शीलांग सूरि] था। कहते हैं कि इसी साधु के उपासरे में इस

(चामुंड) २७ वर्ष, और मोयडराय (मूवड) ने २९ वर्ष राज किया, साक्षी का छप्पय इस प्रकार है:—

"साठ वरस वनराज, बरस दस जोगराज मण ।
राजादित त्रण वरस, बरस ग्यारह सिंह सण ॥
खेमराज चालीस, बरस एक उण गुणजे ।
चुंडराव सत वीस, बरस भोगवी मणीजे ॥
उगणीस वरस गुडराज कहि, गुण तीस मोवंड भुव ।
चामुंडराज अणहलनयर, कीध वरस सौ छिनवहन ॥
"आठ छत्र चामुंड, कीन्ह पाटण घर रज्जत ।
वरस एक सो छिन्तु, गया भोग वैस कज्जह ॥
हुय सोलंकिया वरस बरस सौ सत्तह ।
हुआ पॉच वाघेल बरस सूची सौ सत्तह ॥
पाच सो वरस चालीस सू, बसूह भार साचौ वह्यौ ।
पचवीस छत्र गूजर धरा, अणहलवाडौं आगस्यौ ॥"

जब तक और कोई प्रमाणिक आधार न मिलें तब तक चावड़ा वश की यह गड़बड़ी ठीक नहीं हो सकती।

राजकुमार ने अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था। प्राचीन कालमें साइरस (१) तथा आधुनिक साहित्य में गाइडेरियस (२) आरवीरेगस (३) व नारवल (४) के विषय मे जिस प्रकार कथाएँ प्रचलित है उसी प्रकार इस राजकुमार के असाधारण बल और पराक्रम के विषय मे भी

(१) सायरस ईरान का राजा था। उसने पूर्वीय एशिया विजय करने के बाद सिथिया के मोसेजिटी की रानी टामेरिस को हरा कर उसका माथा काट लिया और उसको मनुष्यों के रक्त से भरे हुए कडाह में डाल कर कहा "तुम से जितना लहू पिया जा सके तृप्त होकर पीलो।"

(२–३) ये दोनों ब्रिटेन के राजा सिम्बलाईन के पुत्र थे। इन्हीं के राज्य का बिलेरियस नामक सरदार इनको चुराकर ले गया था। इसका कारण यह था कि एक बार राजा ने इस सरदार को अकारण ही देश निकाले का दण्ड दे दिया था। इसने इन दोनों कुंअरों को लेजा कर एक गुफा में छुपा दिया। जब वे बडे हुए तो एक बार ऐसा हुआ कि राजा को रोमन लोग पकड कर ले गये और इसी सरदार ने उसको उनसे मुक्त कराया। इसी कारण राजा उसपर बहुत प्रसन्न हुआ, तब उसने भी दोनों कुवरों को वापस राजा को सोंप दिये।

(४) नारवल नामक गड़रिया सर मालकम की जागीर मे रहता था। वहाँ पर उसको सन्दूक मे छुपाया हुआ एक बालक मिला जिसको उसने अपने पुत्र की भाति पाला। बाद में मालूम हुआ कि वह बालक सर मालकम का दौहित्र था और उसकी पुत्री लेडी रेडाल्फ के पहले पति लार्ड डगलस से उत्पन्न हुआ था। यह बात उसकी माता को विदित हो गई।

इस बालक ने बडे होने पर एक समय लार्ड रेडाल्फ के प्राण बचाये थे इसलिए उसने उसको अपने लश्कर में नौकर रख लिया। रेडाल्फ का उत्तराधिकारी ग्लेनलेव इस बालक को हमेशा धिक्कारा करता था। उसने अपने पिता को उसके विरुद्ध ऐसा समझा दिया कि उसका लेडी रेडाल्फ से अनुचित सम्बन्ध है। इसी भ्रम वश एक दिन जब वह लड़का अपनी असली मा लेडी रेडाल्फ के पास गया हुआ था तब लार्ड ने उस पर अचानक हमला कर दिया। इस झगडे में इस बालक के हाथ से

कितनी ही कथायें कही जाती हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि मनुष्य देहधारी राजा रानियों से तो उसके शरीर मात्र की उत्पत्ति हुई थी और वह असाधारण तेज तो उसे दैव से ही प्राप्त हुआ था। जीवन की कठिनाइयों को सहने योग्य होने पर वह अपने मामा शूरपाल के साथ कितने ही आक्रमणों में सम्मिलित हुआ और प्रबल पराक्रम दिखा कर प्रसिद्ध हुआ। अपनी शूरवीरता दिखाते हुये उसने अपने राज-चिन्हों को धारण किया, जिससे उसके साथियों का साहस द्विगुणित हो गया। मानों उसको प्राप्त होने वाला राज्य उसके अधिकार में आ ही गया हो इस प्रकार उसने उनको सम्मान एवं अधिकार प्रदान किये। श्रीदेवी (१) एक व्यापारी की स्त्री थी। उसने उसके साथ बहुत ही मान सम्मान का व्यवहार किया था इसलिये उसने वचन दिया था "जब मेरा राज-तिलक होगा तो मैं तेरे ही हाथ से तिलक कराऊँगा"।

ग्लेनलेव मारा गया और वह स्वयं लार्ड रेडाल्फ के हाथों मारा गया इसके बाद सच्ची बात प्रकट हो गई और इसी दुख से दुखी होकर लेडी रेडाल्फ एक ऊँची जगह से गिर कर मर गई तथा लार्ड रेडाल्फ डेनमार्क और स्काटलैण्ड की लडाई में मारे गये।

(१) कुमारपालचरित के रचयिता मेरुतुंग ने लिखा है कि वनराज अपने मामा के साथ काकर ग्राम में एक व्यापारी के घर में चोरी करने गया था। वहाँ पर घर में से मालमता (सामान) निकालते समय उसका पंजा दही में पड गया इसलिए सब वस्तुएं वहीं छोड़ कर भाग निकला। दूसरे दिन व्यापारी की बहिन ने गोरस में पंजे की रेखाओं को देख कर विचार किया कि यह तो किसी भाग्यवान् महापुरुष के पंजे की रेखाएं हैं और यह मेरे भाई के समान है इसलिए उसको देखे बिना भोजन नहीं करूंगी। खोज करने पर वनराज का पता चला और उसको घर बुलाकर उसने भोजन कराया और अपना भाई बना लिया। उसने वनराज को सहायतार्थ रुपये भी दिये। वनराज ने भी राज्याभिषेक के समय उस बहन के हाथ से तिलक कराने का वचन दिया।

जाम्ब अथवा चम्पा [१] नाम का एक व्यापारी था। वह अपने पराक्रम एवं युद्धकला के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया था और आगे चलकर चम्पानेर नगर का बसाने वाला भी वही हुआ, उसको पहले ही प्रधान की पदवी दे दी गई थी। अणहिल भी उसके साथियों में था। उस स्थान के गुप्त मार्गों का ज्ञान उसने ही वनराज को कराया था इसलिए उसका आभार मानते हुए अपनी राजधानी का नाम उसीके नाम पर रखने का निश्चय किया। इस प्रकार भटकते भटकते कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। वन में ही उसके सच्चे और वीर मामा शूरपाल की मृत्यु हो गई परन्तु उसके नये मित्रों ने इस कमी को पूरी कर दी थी। अब तक वनराज केवल वनराज ही था और निकट भविष्य में वन के राज्य से अधिक कुछ भी प्राप्त होने के कोई चिन्ह प्रकट नहीं हुए थे। परन्तु अन्त में, उसकी सच्ची लगन का फल मिल ही गया। राजा भूवड़ ने गुजरात की उपज अपनी पुत्री मिलण देवी [२] के नाम करदी थी, जिसकी प्रबन्धकारिणी सभा ने चावड़ा सरदार को "सेलभृत्" (बरछी सरदार) के अधिकार पर नियुक्त किया था और उसको

---

(१) कुमारपालचरित के कर्ता मेरुतुंग के लेखानुसार एक दिन वनराज अपने दो साथियो सहित वन में घूम रहा था। तब उन्होंने जाम्ब को रास्ते में लूटने के लिए रोका। उस समय जाम्ब के पास पाँच बाण थे जिनमें से दो को व्यर्थ समझ कर उसने तोड डाले। कारण पूछने पर उसने कहा कि एक एक के लिए एक-एक बाण ही बहुत है जो अधिक थे उनको उसने तोड़ दिये। इस प्रकार जाम्ब बनिये के बल की परीक्षा करके वनराज उससे प्रसन्न हुआ और अपने राज्याभिषेक के समय उसे महामात्य बनाने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद अपना मालमता (धन दौलत) उनको सौंप कर वह बनिया अपने घर चला गया।

(२) मेरुतुंग ने इसका नाम महणिका और कुमारपालचरित्रकार ने महणल देवी लिखा है।

आजकल के अधिकारियों के समान, बहुत बड़ा वेतन इसलिए मिलता था कि वे रक्षण करने की अपेक्षा अपना सर न उठा सके। परन्तु उसके किए एक भी बात पार न पड़ी। "कल्याण" के प्रतिनिधि इस (गुजरात) प्रान्त में छः महीने तक रह कर पुष्कलद्रव्य तथा सोरठ को प्रसिद्धि देने वाले श्रेष्ठ घोड़ों को लेकर अपने देश को लौट रहे थे। उन पर वनराज ने आक्रमण करके लूट लिया और उनको मार डाला। [१] इस घटना के बाद ही उसमें और कल्याण के राजा मे वैर-भाव उत्पन्न हो गया इसलिए कुछ समय तक उसको देश के विभिन्न पहाड़ों और जङ्गलों में, जहाँ भी स्थान मिला, शरण लेनी पड़ी परन्तु लूट खसोट के धन से उसने शीघ्र ही अपनी राजधानी के नये नगर अणहिलपुर अथवा अणहिलवाड़ा के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया और इस प्रकार उसका चिरचिन्तित मनोरथ पूर्ण हुआ।

एक कवित्त में लिखा है कि सम्वत् ८०२ (ई० स० ७४६) में एक चिरस्थायी नगर की स्थापना हुई। माह बुदि ७ बलिष्ठ शनिवार के दिन तीसरे पहर तीन बजे वनराज की दोहाई फिरी। ज्योतिष-शास्त्र में कुशल एक जैन साधु को 'नगर की (जन्म) कुण्डली दिखा कर पूछा गया तो उसने कहा कि संवत् १२६७ में अणहिलपुर ऊजड हो जायगा। अलाउद्दीन खूनी के समय में यह भविष्यवाणी किस प्रकार सत्य प्रमाणित हुई, इसका वर्णन आगे लिखा जायगा।)

वनराज ने अपने वचनों के अनुसार श्रीदेवी से राज्याभिषेक [१]

(१) "प्रबन्ध चिन्तामणि" मे लिखा है कि वनराज ने उनसे एक लाख रुपये और अच्छे अच्छे चार हजार अश्व लिए। कुमारपालचरित मे चौबीस लाख स्वर्ण मुद्रा और चार सौ घोड़ों का लेख है। एक दूसरी पुस्तक मे केवल एक लाख रुपये ही लिखे हैं।

(१) मेरुतु ग के लेखानुसार संवत् ८०२ वैशाख शुक्ला २ सोमवार, पाटण के

कराया और जाम्ब को अपना मन्त्री नियुक्त किया। इसके पश्चात् उसका ध्यान अपने पूर्व रक्षक शीलगुण सूरि की ओर गया। अभी तक उसकी माता रूपसुन्दरी उसी की शरण में रह रही थी। जैनधर्म के सच्चे उपासक को अपने धार्मिक नियमों का पालन करने में शान्ति प्राप्त होती है, इसी नियम के अनुसार रूपसुन्दरी ने अपनी वैधव्य अवस्था और दुर्दैव के दिनों मे शान्ति प्राप्त की थी। वनराज, वृद्धा रानी और उसके धर्म गुरु को, तथा जिस मूर्ति को वे पूजते थे उसके सहित, अणहिलपुर मे लाया। एक मन्दिर बनवाकर उस मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई गई और उसका नाम "पचासर पारसनाथ" रखा गया। प्रदक्षिणा के स्थान पर लाल राजच्छत्र सहित वनराज की मूर्ति भी उपासक की दशा मे स्थापित की गई (जो अब तक विद्यमान है)।

इस प्रकार जैनधर्म ने वनराज का आश्रय प्राप्त किया और इसीलिए यदि "जैन ग्रन्थकार" यह कहते हैं कि ईर्ष्यावश भले ही कोई न माने परन्तु वनराज के समय में गुजरात का राज्य श्रावकों ने स्थापित किया था, तो उनके इस जात्यभिमान में सत्य का अंश अवश्य है। स्वयं वनराज किस धर्म का अनुयायी था, यह निश्चित नहीं है, परन्तु वह देवभक्त कहलाता था और जिस कामदेव ने महादेव (शिवजी) को भी थोड़े समय के लिए वश मे कर लिया था उसको (कामदेव को) भी उसने जीत लिया था, इस प्रकार उसकी प्रशंसा की जाती है। उमामहेश्वर और गणपति की मूर्तियां आजकल पट्टण में विद्यमान् है और उन पर लिखे हुए लेख से विदित होता है कि अणहिलवाड़ा की स्थापना के

गणेश के लेख मे सवत् ८०२ चैत्र शुक्ला २ और पाटण की राजवंशावली में संवत् ८०२ श्रावण शुक्ला २ सोमवार वृष लग्न लिखा है। शास्त्री व्रजलाल के मत से यह तिथि आषाढ शुक्ला ३ सवत् ८०२ है।

समय (सं० ८०३) वनराज ने उनकी प्रतिष्ठा की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम चावड़ा (जैसा कि उसके वंशजों की नीति से पता चलता हैं) ने धार्मिक विपयों में उदार नीति को ही अपनाया था क्योंकि उसके शैव होते हुए भी कृतज्ञता, मातृभक्ति अथवा राजनीति के कारण तीर्थ-करों के धर्माचार्यों को उससे पर्याप्त सहायता मिली थी।

वनराज (१) सन् ६९६ मे जन्मा और अणहिलवाडा में ६० वर्ष तक राज्य करके ८०६ ई० में मर गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र योगराज सिहासन पर बैठा।

वनराज के पुत्र के विपय में बहुत कम वृत्तान्त मिलता है किन्तु जो कुछ प्राप्त हुआ है उससे ज्ञात होता है कि वह भी भाग्यशाली

---

(१) मेरु तुंग के लेखानुमार १०९ वर्ष २ मास २१ दिन जीवित रहा जिसमें से उसने ५९ वर्ष ८ मास २१ दिन राज्य किया। सवत् ७५२ वि० वैशाख शुक्ला १५ को उसका जन्म हुआ। ८६२ वि० आपाढ शुक्ला ३ गुरुवार को योगराज का राज्याभिषेक हुआ, इसी के आस पास वनराज की मृत्युतिथि हैं।

रत्नमाला ग्रन्थ में लिखा है कि वनराज का जन्म सवत् ६९६ ई० में हुआ था। आईन-ए-अकबरी के आधार पर विलफोर्ड साहब ने लिखा है कि सन् ७४६ ई० मे उसने नहरवाला बाधा उस समय उसकी अवस्था ५० वर्ष की थी। इसके अनुसार उसका जन्म ६९६ ई० मे होना सिद्ध होता है। प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि वनराज ने ७४६ ई० से ८०६ ई० तक ६० वर्ष राज्य किया। इस गणना के अनुसार भी उसकी आयु ११० वर्ष ठहरती है। कर्नल टॉड ने लिखा हैं कि वनराज ने ७४६ ई० से पचास वर्ष तक राज्य किया और ६० वर्ष की अवस्था में मर गया। इस गणना के अनुसार उसने १० वर्ष की अवस्था मे ही अणहिलपुर का राज्य स्थापित किया, यह संभव प्रतीत नहीं होता और न दूसरे लेखों से ही वनराज की जन्मतिथि इमसे मिलती है। इसलिए टॉड साहब ने उसकी जन्मतिथि निश्चित करने में भूल की हैं। बाल्हार राजाओं के लम्बे राज्यकाल के विषय मे टॉड कृत वेस्टर्न इन्डिया नामक पुस्तक के "अरबिस्तान के प्रवासी" शीर्णक लेख में विस्तृत वर्णन पढिये।

और अपने समय का योग्य राजा था। उसने निरन्तर अपने राज्य और धन की वृद्धि की। वह युद्धकला मे प्रवीण एव धनुर्विद्या में इन्द्र के समान था, इन गुणों के साथ ही उसमें एक असाधारण वात यह थी कि वह साहित्य मे भी निपुण था। कहते हैं कि योगराज द्वारा रचित पुस्तक उसके इतिहास लेखकों के समय तक मिलती थी परन्तु वह किस विषय पर लिखी गई थी इसका ठीक पता नहीं है। कदाचित यह चापोत्कट (चावड़ा) वंश के इतिहास के विषय में लिखी गई हो अथवा अधिक संभव है कि वह उमापति (शिव) की प्रार्थना अथवा राधा के अवतारी प्रियतम श्रीकृष्ण की प्रशस्ति में कवितावद्ध रचित हुई हो।

जिस समय योगराज अणहिलवाड़ा में राज्य करता था उस समय की एक मात्र घटना का उल्लेख गुजरात के इतिहासकारों ने किया है। सोरठ के पट्टण वंदर पर व्यापार के लिए बहुमूल्य सामान से लदे हुए कुछ विदेशी जहाज आकर ठहरे। वे किस बन्दर से आये थे और कहाँ जाने वाले थे, इसका कोई पता नहीं है। उन जहाजों पर राजा की आज्ञा का उल्लङ्घन करके युवराज क्षेमराज ने आक्रमण किया और उन्हें लूट लिया।[१] नियमभंग करके विदेशियों के साथ किये हुये इस दुर्व्यवहार से राजा को वहुत खेद हुआ और उसने क्षेमराज तथा हमले में भाग लेने वाले उसके दोनों भाइयों को बुला कर कहा "मैंने जीवन भर में जो कुछ किया था उस पर तुमने पानी फेर दिया। दूर दूर देशों के बुद्धिमान् मनुष्यों ने जव राजाओं की परस्पर तुलना की तो उन्होंने कहा था कि गुजरात के राजा तो चोरों पर राज्य करते हैं। अपने

(१) मेरुतुंग के लेखानुसार सोमेश्वर पट्टण पर आए हुए इन जहाजों में तीन हजार घोड़े, १५० हाथी और करोड़ों रुपये का माल था।

पूर्वजों के इस कलंक को धो डालने के लिए और राजाओं की श्रेणी मे गिना जाने के लिए मैंने प्रयत्न किया था, परन्तु तुम्हारे इस लोभमय कृत्य ने उस कलंक को फिर से हरा कर दिया है। नीतिशास्त्र में लिखा है कि :—

"आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणां वृत्तिच्छेदोऽनुजीविनाम्
पृथक्शय्या च नारीणामशस्त्रो वध उच्यते ॥"

"राजाज्ञा का भंग, सेवक की वृत्ति (आजीविका) का छेद और स्त्री से पृथक् शय्या पर शयन तो विना शस्त्र के किये हुए वध कहलाते हैं।"

योगराज [१] बहुत वर्षों तक जीवित रहा और पैंतीस वर्ष राज्य करके [२] उसने चिता प्रवेश किया।

---

(१) योगराज के समय मे चितौड़ का शासक खुमाणसी था जिसने ८१२ ई० से ८३६ ई० तक राज्य किया था। उसके समय में मुसलमानों ने चितौड़गढ पर चढाई की। इस अवसर पर गुजरात मे बाद मे प्रसिद्धि पाने वाले गेहलोत राजाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित राजाओं ने खुमाण की सहायता की थी। मागरोल से मकवाहन, तारागढ (तारिंगा ?) से रेहवर, पट्टण से राजवंशी चावडा, सिरोही से देवड़ा, जूनागढ से जादव, पाटडी से झाला, चोटियाला (चोटयला) से वल्ल और पीरमगढ से गोहिल। जो प्रमाण हमें प्राप्त हुए हैं उनसे यह सिद्ध नहीं होता कि योगराज को मुसलमानों के विरुद्ध बुलाया गया हो। उस समय गुजरात में अत्यन्त प्राचीन काल से चले आये सौराष्ट्र के यदु और वल वंश के अतिरिक्त उपर्युक्त जातियों का अस्तित्व था भी या नहीं यह हम नहीं कह सकते। (ग्रन्थकर्ता)

ऊपर की टिप्पणी में तारागढ के नाम के आगे कोष्ठक में तरिंगा लिखा है यह भूल है क्योंकि "पृथ्वीराजरासो" में अजमेर का नाम तारागढ लिखा है इसलिए कोष्ठक में अजमेर पढिये।

(२) ऊपर लिखे अनुसार अपने पुत्र को अयोग्य समझकर उसने "प्रायोपवेशन" व्रत धारण करके १२० वर्ष की अवस्था में संवत् ८९७ वि० में चिता प्रवेश किया।

योगराज के क्रमानुयायियों के विषय में और भी थोड़ा वृत्तान्त प्राप्त है। उसका पुत्र क्षेमराज क्रोधी स्वभाव का था इसलिए उसकी किसी के साथ बनती न थी और इसी कारण वह अपने संबन्धियों से भी विलग हो गया था। इतना होते हुये भी उसने अपने राज्य और कोष की वृद्धि की और २५ वर्ष राज्य करके ८९९ ई० में दिवंगत हुआ।

क्षेमराज के पुत्र श्री भूवड़ [१] ने ८९५ ई० तक राज्य किया। इसका राज्यकाल पूर्ण सुखशान्तिमय रहा, किसी शत्रु से उसका सामना नहीं हुआ।

उसके बाद वैरीसिंह [२] सिंहासन पर बैठा। इसका राज्यकाल इसके पिता भूवड़ के समय की अपेक्षा बहुत अधिक आपत्तियों और झगड़ों से भरा हुआ बीता। उसने जंगली जातियों से सामना किया और विजयी हुआ। "वह युद्ध में कभी पराजित नहीं हुआ।" उसको अपने बुद्धिमान् मन्त्री का भरोसा प्राप्त था। विदेशियों के साथ हुये युद्धों के विषय में कोई वृत्तान्त नहीं मिलता।

वैरीसिंह का पुत्र रत्नादित्य, जिसका नाम मुसलमान इतिहास लेखकों ने रेशादत्त [३] लिखा है, ९२० ई० में सिंहासन पर बैठा।

---

(१) इसका दूसरा नाम राजा पिथु था।

(२) मुसलमान इतिहासकारों ने वेहीरसिंह अथवा वीरसिंह नाम लिखा है और कहीं कहीं पर विजयसिंह भी लिखा हुआ मिलता है।

(३) आईन–ए–अकबरी में चावडा वश के वृत्तान्त में रावतसिंह का नाम लिखा है :—

रामराज (वनराज) ने	६० वर्ष राज्य किया
योगराज ,,	३५ ,,
चेमराज (भीमराज) ,,	२५ ,,

"वह पृथ्वी का सूर्य था, उसकी शोभा अतुल थी, उसने संसार का दुख दूर कर दिया था। वह बलवान्, साहसी और दृढ़प्रतिज्ञ विख्यात था। अपने राज्य में चोर, ठग और व्याभिचारियों को वह नहीं बसने देता था। रत्नादित्य ६३५ ई० में परलोकवासी हुआ। उसका पुत्र सामंतसिंह [१] गद्दी पर बैठा। यह (सामंतसिंह) वनराज के वंश का अन्तिम राजा था और इसी के साथ चावड़ा वंश की इति श्री हो गई।"

एम' रेनॉड़ो M Renaudot के लेखानुसार अरब के यात्री [२] खेमराज और भूवड़ के राज्यकाल में ही भारतवर्ष आये थे। इनके राज्यों का यद्यपि बहुत थोडा वृत्तान्त मिलता है परन्तु उन यात्रियों द्वारा लिखित वनराज के वंश से सम्बन्धित विवरण एक विशेष महत्व रखता है।

पहले यात्री ने लिखा है :—

"दोनों ही, हिन्दू और चीनी स्वीकार करते हैं, कि पृथ्वी पर चार ही बड़े राजा हैं। उनमें अरबिस्तान का राजा प्रधान (प्रथम) है। वह निः संदेह सब राजाओं से अधिक शक्तिशाली, धनवान् और उत्तम है

राजा पिथु (भूवड़) ने	२६	वर्ष राज्य किया
राजा विजयसिंह	२५	,,
राजा रावतसिंह (रत्नादित्य) ,,	१५	,,
राजा सावतसिंह (सामंतसिंह) ,,	७	,,
	योग १६६	वर्ष

(१) मेरुतुंग ने इसका नाम भूयगड देव लिखा है।

(२) यहाँ "सिलसिलात उल् तवारीख" के कर्ता सुलेमान से तात्पर्य है। इस अरबी यात्री ने गुजरात की यात्रा की थी। यह पुस्तक "इब्न जैद अल् हसन" ने ६१० ई० में पूरी की। हसन पारस की खाडी पर स्थित सिराफ नामक स्थान पर रहता था और यात्रियों द्वारा प्राप्त विवरण के आधार पर अपनी पुस्तक लिखता था। (देखिये इलियट एण्ड डासन कृत Hist. of India Vol. I p. 188)

क्योंकि वह एक महान् धर्म का अध्यक्ष है और महानता व शक्ति मे उससे बढ़ कर कोई नहीं है।

"चीन का सम्राट् अपने को अरबिस्तान के राजा से दूसरे स्थान पर मानता है और उसके बाद ग्रीकों के राजा की गणना है। सबसे अन्त में "मोहर्रमी अल अदन्" अर्थात् जो अपने कान बिधवाते हैं उन लोगों के राजा बल्हार का स्थान है। यह बल्हार राजा सारे भारतवर्ष मे प्रसिद्ध है और दूसरे राजा लोग यद्यपि अपने अपने राज्यों में स्वतन्त्र हैं परन्तु इसकी असाधारण शक्ति और श्रेष्ठता को मानते हैं। जब वह अपने प्रतिनिधि उनके पास भेजता है तो वे उसकी मान्यता से उनका खूब सत्कार करते हैं। अरबों की रीति के अनुसार यह भी बहुमूल्य तुष्टि-दान (इनामें) देता है और इसके पास बहुत से हाथी, घोड़े और धन से भरे पूरे खजाने हैं। इसके राज्य मे "थारतेरियन" द्रम नाम का चाँदी का सिक्का चलता है। यह सिक्का तोल में अरबी द्रम से आधा ड्राम अधिक है। इसमें राजा की मोहर का सिक्का पड़ता है और इसके पूर्व-वर्ती राजा के अन्तिम वर्ष से आगे इस राजा के राज्यकाल के आरम्भ का वर्ष ठपा रहता है। अरबों के समान ये लोग मुसलमानी सन् के अनुसार वर्षगणना न करके अपने राजाओं के राज्यकाल से करते हैं। इनमें से बहुत से राजा दीर्घकाल तक जीवित रहे हैं और बहुतों ने तो पचास वर्ष से भी अधिक समय तक राज्य किया है। यहाँ के लोग सोचते हैं कि इनकी दीर्घ आयु व लम्बा राज्यकाल अरब लोगों की कृपा का फल है। वास्तव में, अरब लोगों पर इन राजाओं से अधिक प्रीतिभाव रखने वाले और राजा नहीं हैं और उनकी प्रजा का भी हमारी ओर वही मित्रभाव है।"

"खुसरू आदि दूसरे सामान्य नामों के समान 'वल्हार' भी एक सामान्य नाम है। जो सभी राजाओं के नाम के साथ लगता है। यह कोई विशेष नाम नहीं है। इस (वल्हार) राजा का राज्य 'कमकम' नाम के प्रान्त से लेकर भूमि मार्ग से चीन की सीमा तक जा पहुँचा है। इसके आस पास मे इससे लड़ने वाले बहुत से राजाओं के राज्य हैं परन्तु यह किसी पर चढाई नहीं करता। इन राजाओं में से एक हरज (Haraz) का राजा है जिसकी सेना बहुत बड़ी है और जिसके पास हिन्दुस्थान के अन्य राजाओ की अपेक्षा बहुत अधिक घोड़े है। परन्तु यह अरबों का शत्रु है और साथ ही यह भी स्वीकार करता है कि अरबों का राजा सब राजाओं का शिरोमणि है। मुसलमानों से इस राजा की अपेक्षा, अधिक घृणा करने वाला और कोई राजा भारतवर्ष में नहीं है। इसका राज्य एक भूशलाका [१] पर है, जहाँ बहुत सा द्रव्य, ऊँट और अन्य जानवर हैं। यहाँ के लोग चाँदी को धोकर उसका व्यापार करते हैं और कहते हैं कि इस खण्डस्थ भाग में चाँदी की खाने हैं। इस देश में चोरों के विषय की तो बात ही नहीं चलती। यहीं क्या, हिन्दुस्थान भर मे चोर नहीं है।"

"इस राज्य के एक ओर तफेक (Tafek) का राज्य है जो अधिक बड़ा नहीं है। यहां के राजा के पास भारतवर्ष भर मे सबसे अधिक सुन्दर और गोरी स्त्रियां हैं, परन्तु सेना कम होने के कारण वह आस-पास के राज्यों के अधीनस्थ राज्य है। बल्हार तथा अरब दोनों ही से इसका मित्र भाव है।"

"इन राज्यों की सीमा राहमी (Rahmi) राज्य की सीमा से मिलती

(१) किनारे पर समुद्र में निकला हुआ भूभाग

है जहाँ का राजा हरज और बल्हार दोनों ही राजाओं से युद्ध करता है। वंश-परम्परा एवं राज्य की प्राचीनता के विषय में यह राजा प्रसिद्ध नहीं है परन्तु इसकी सेना बल्हार, हरज और तफेक के राजाओं से भी अधिक है। यह प्रसिद्धि है कि जब वह रणभूमि के लिए प्रस्थान करता है तो उसके साथ पचास हजार हाथी चलते हैं और वह प्रायः सरदी के दिनों में ही चढ़ाई करता है क्योंकि हाथी अधिक प्यास सहन नहीं कर सकते। लोगों का यह भी कहना है कि इसकी फौज में प्रायः दश अथवा पन्द्रह हजार तंबू हैं इसी देश में सूती कपड़ों की पोशाक ऐसी विचित्र रीति से बनाते हैं कि और कहीं देखने में नहीं आई। ये पोशाकें अधिकतर गोलाई लिए हुए होती हैं और इतनी बारीक बुनी हुई होती हैं कि एक साधारण अगूँठी में होकर निकाली जा सकती हैं।"

"इस देश में छोटे सिक्के के रूप में कौड़ियां प्रचलित हैं, साथ ही, सोना चाँदी के सिक्के भी चलते हैं। घोड़ों के सामान बनाने व घरों की छत बनाने में यहाँ काले रोओं वाला चमड़ा व अलोय की लकड़ियां काम में आती है। इसी देश में प्रख्यात करकन्दन (Karkandan) व गैंड़े भी होते हैं।" इत्यादि।

"इस राज्य के पीछे एक और राज्य है जो समुद्र तट से दूर स्थित है और काशबीन राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ के निवासी गोरे रंग के होते हैं और कान बिंधवाते हैं। ये लोग ऊँट पालते हैं और इनका देश ऊजड़ व पहाड़ी है।

"आगे चल कर किनारे पर हित्रंज (Hitrange) नामका एक छोटा राज्य है। यह राज्य बहुत गरीब है परन्तु इसमें एक खाड़ी है जिसमें होकर समुद्र अम्बर के ढेर के ढेर फेंकता रहता है। यहाँ हाथी-

दाँत बहुत होता है और काली मिर्च भी, परन्तु यहाँ के लोग काली मिर्च को कच्ची ही खा जाते हैं क्योंकि उनके यह थोड़ी ही मात्रा में हाथ लगती है।"

"बल्हार" [१] इस नाम का अणहिलवाड़ा में राज्य करने वाले प्राचीन चावड़ा राजाओं के साथ कोई सम्बन्ध ठीक ठीक नहीं बैठता और न कम कम के किनारे से चीन की सीमा तक विस्तृत बल्हार राज्य की ही बात समझ में आती है। बल्हार हिन्दुस्थान के अन्य सभी राज्यों से बढ़कर है, यह लिखने में भी यात्रियों ने सीमा का अतिक्रमण ही किया है। एक जगह लिखा है "यहाँ के राजा यद्यपि बल्हार की श्रेष्ठता को मानते हैं परन्तु वे अपने अपने राज्यों में स्वतन्त्र हैं" फिर आगे चलकर दूसरी जगह लिखते हैं 'हिन्दुस्थान की कुछ रियासतें यद्यपि एक ही राजा के आधीन नहीं हैं और प्रत्येक प्रान्त में अलग अलग राजा हैं तो भी बल्हार इन्डीज (भारत) में राजाधिराज है।" हरज (Haraz) के राजा के विषय में लिखा है कि उसका राज्य एक भूशलाका पर स्थित था और आसपास के राज्यों की अपेक्षा उसके पास घोड़े अधिक थे। यह वृत्तान्त यादव कुल के 'राह' राजा से मिलता हुआ ज्ञात होता है क्योंकि उसकी राजधानी गिरनार के पास की पहाड़ी पर एक प्राचीन किले में थी। तफेक, काशबीन और राहमी के राजाओं के विषय में हमें कोई सूत्र नहीं मिलता। कर्नल टॉड का कथन है कि काशबीन से कच्छभुज का अर्थ है परन्तु कच्छभुज

(१) ऐसा प्रतीत होता है कि बाल्हार, यह शब्द बालार्कराय (सूर्यराय) का अपभ्रंश है। बलीराय (वलभीराय अथवा वलभी के राजा) के अर्थ में अथवा भटार्क (भट अर्क) पोषक सूर्य तथा माल प्रान्त के नाम से भी इसका उद्भव संभव प्रतीत होता है। (रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल १२ वें के पृ० १०७ के आधार पर।)

के विषय में 'किनारे से दूर भूभाग में स्थित' वाली बात ठीक नहीं बैठती। इसी ग्रन्थकर्ता (टॉड) का अनुमान है कि हित्रंज से शत्रुञ्जय समझना चाहिए। स्वयं रेनोड़ो (Renaudot) ने इस विषय में जो अपना मत प्रकट किया है वह फिर भी कुछ संगत प्रतीत होता है। उनका कहना है:—

"इन देशों के जो नाम मिले हैं उनका रूप अधिकतर अपभ्रष्ट हो गया है और अरबी अक्षरों में उनका लिखा जाना भी कठिन है इसलिए ऐसी कल्पनायें करना व्यर्थ है जिनसे कोई अर्थ निकलता प्रतीत नहीं होता।"

इस प्रवासी ने यहाँ के रीति रिवाजों के विषय में जो कुछ लिखा है वह गुजरात के तत्कालीन हिन्दू समाज पर लागू हो सकता है। अग्नि और जल-परीक्षा के विषय में जो कुछ इसने लिखा है वह तो हम आगे चल कर उद्धृत करेंगे। इसके अतिरिक्त मुर्दों को जलाना, स्त्रियों का पति के साथ चिता पर जलना, तपस्वियों का नग्न अथवा मृगचर्म मात्र से ढके हुये फिरना, बहुत समय तक सूर्य के प्रकाश में एक ही आसन से खड़े रहना इत्यादि प्रचलित रिवाज हैं जिनके विषय में इसने प्रकाश डाला है। यात्री ने लिखा है:—

"इन राज्यों में राजसत्ता राजवंश में ही स्थित रहती है और इससे बाहर नहीं जाती। एक ही कुटुम्ब के लोग क्रमशः गद्दी पर बैठते हैं। इसी प्रकार विद्वानों, वैद्यों और शिल्पशास्त्र सम्बन्धी कलाविदों के भी घराने बंधे हुए हैं और एक वंश दूसरे वंश के व्यवसाय में पैर नहीं रखता।" एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करना, चावल खाने का प्रयोग, मूर्तियों से प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना, भोजन करने से पहले स्नान करना इत्यादि अन्य रिवाजों के विषय में भी इसने लिखा है।

इसने यह भी लिखा है "हिन्दुस्तानी राज्यों मे लड़ाई के समय सिपाहियों की बहुत बड़ी सख्या इकट्ठी होती है। इन सिपाहियों को राजा कुछ नहीं देता। जो लडाई के समय इकट्ठे होते हैं वे अपने खर्चे से ही लड़ाई के मैदान मे जाते हैं, राजा के शिर पर उनका कोई बोझा नहीं पड़ता।"

इसके आगे अबू जैद अल हसन दूसरा यात्री कहता है :—

"हिन्दुओं में यह एक साधारण रिवाज़ है कि प्रत्येक स्त्री अथवा पुरुष की यह प्रबल इच्छा होती है कि अधिक वृद्ध होने पर वह अपने कुटुम्बियों द्वारा अग्नि में जला दिया जाय अथवा पानी में बहा दिया जाय क्योंकि यह उसका कट्टर विश्वास रहता है कि उसके लिए दूसरे रूप (शरीर) में ससार में आना आवश्यक है।"

वह कहता है "हिन्दुओं में योगी और वैद्य होते हैं जो राजा की प्रशसा में कविताएँ लिखते हैं। यहाँ ज्योतिषी, दार्शनिक, भविष्यवक्ता, पक्षियों की उड़ान को जानने वाले तथा जन्मान्तरों के पढ़ने वाले भी होते हैं। ये लोग विशेषत· गोराज [१] की राजधानी मे कन्नौज नाम के एक प्रसिद्ध शहर में अधिक हैं।"

---

(१) एशिया खण्ड के अधिकांश लोगों का ज्योतिष विद्या पर अधिक विश्वास है। वे मानते हैं कि जो कुछ लेख उनके भाग्य में पहले से लिख दिये गये हैं वे ही आगे आते हैं। प्रत्येक कार्य करने के पूर्व वे ज्योतिषी से अवश्य पूछते हैं। लडाई के लिए दोनों सेनाएँ सज कर तैयार खड़ी हो जाएँगी परन्तु जब तक ज्योतिषी अनुकूल मुहूर्त न बतलायेगा तब तक युद्ध आरम्भ नहीं होगा। ज्योतिषी के पूछे बिना कोई सेनापति ही नियुक्त नहीं किया जाता। जब तक लग्न ठीक न हो तब तक कोई यात्रा करने के लिए नहीं निकलता। दास को मोल लेने, नए वस्त्र धारण करने आदि छोटे छोटे कामों के लिए भी ज्योतिषियों से पूछा जाता है और उनके बिना कोई काम नहीं चलता। ऐसे मूर्खतापूर्ण भ्रमों के बड़े बड़े दुखदायक और अशुभ परिणाम

वर्षाऋतु के विषय में उसने लिखा है "वर्षा हिन्दुओं का जीवन है, जब वर्षा नहीं होती तो इन पर घोर विपत्ति पड़ जाती है।"

अबू जैद ने योगियों के विषय में जो वृत्तान्त लिखा है वह नीचे दिया जाता है। उसने इन्हें 'भिखार' लिखा है। कर्नल टॉड कल्पना करते हैं कि यह शब्द फकीर शब्द का अपभ्रंश है परन्तु इन लोगों के लिए साधारणतया प्रयुक्त "भिखारी" शब्द का रूपान्तर होना अधिक संगत प्रतीत होता है।

"हिन्दुस्तान में एक जाति के लोग 'भिखार' कहलाते हैं। ये लोग जीवन पर्यन्त नंगे रहते हैं। वे अपने नाखून भी बढाते हैं जो तलवार की तरह नुकीले हो जाते हैं। वे नाखूनों को कभी काटते नहीं और जब वे अपने आप झड़ कर गिर जाते हैं तो गिर जाने देते हैं। इस कार्य को वे लोग धर्म मानते हैं। ये लोग अपने गले मे एक डोरी रखते हैं जिसमें पिरोया हुआ एक मिट्टी का बर्तन लटका रहता है। जब उनको बहुत ज्यादा भूख लगती है तो वे किसी हिन्दू के द्वार पर जाकर खड़े हो जाते हैं और उस घर के लोग जल्दी से और प्रसन्नता से उबले हुए चावल लाकर देते हैं और इसको बड़ा पुण्य-कार्य समझते हैं। वे (भिखार) अपने मिट्टी के पात्र में खाते हुए चले जाते हैं और अत्यधिक आवश्यकता पड़े बिना माँगने के लिए नहीं लौटते। यहाँ हिन्दुस्तान में, आम रास्तों मे यात्रियों के आराम के लिए धर्मशाला बनवाना बड़ा भारी पुण्यकार्य समझा जाता है। इन्हीं

निकलते हैं परन्तु मुझे आश्चर्य है कि ये बातें अब तक प्रचलित ही हैं। गुप्त अथवा खुले सभी भेद ज्योतिषियों से कहने पडते हैं और उनके लिए जो उपाय करने पडते हैं वे भी सब उनके सामने प्रकट करने पडते हैं।

(बर्नियर—इरविंग ब्रॉक कृत अंग्रेजी भाषान्तर का अनुवाद)

धर्मशालाओं के आस पास दुकानदार भी बसाये जाते हैं जिनसे यात्री लोगों को अपनी आवश्यकतानुसार चीजें खरीदने में सुविधा रहे।"

दूसरी जगह लिखते हैं "कितने ही हिन्दू ऐसे हैं जो एक पात्र में दो व्यक्ति बैठ कर भोजन नहीं करते, ऐसा करना उनकी समझ मे बड़ा भारी पाप है। यदि सौ मनुष्यों को भोजन कराना हो तो उनके लिए पृथक् २ सौ पात्र आवश्यक होते हैं और एक पात्र दूसरे पात्र से इतनी दूर रखते हैं कि छू न सके। उनके राजा व बड़े बड़े धार्मिक लोगों के लिए नित्य ताजा भोजन तैयार होता है जिसको वे नारियल के पत्तों से बनी हुई पत्तलों और दोनों[१]मे रख कर खाते है। भोजन करने के पश्चात् बचा हुआ झूंठा सामान व पत्तल दोने पानी मे डाल दिये जाते हैं। इस प्रकार उनके लिए नित्य नई सामग्री तैयार होती है।

"हिन्दू राजा हीरों से जड़ी हुई सोने की बालियां कानों में पहनते है। वे भिन्न भिन्न रगों के बहुमूल्य हार भी पहनते हैं। उनमें विशेष कर नीलम और लाल जड़े रहते है परन्तु वे मोतियों को अधिक पसन्द करते हैं जिनका मूल्य दूसरे जवाहरात से अधिक होता है। आजकल वे लोग दूसरी बहुमूल्य वस्तुओं के साथ अपने खजानों में मोतियों का संग्रह कर रहे है। बड़े बड़े दरबारी रईस अधिकारी व व्यूहपति भी इसी प्रकार के जवाहरात से जड़े हार पहनते हैं। आधी अँगरखी उनकी पोशाक होती है और जब वे अपने अनुचरों के साथ बाहर निकलते हैं तो सूर्य की तेजी से बचने के लिए मोर की पंखों का बना हुआ छत्र लगाते है।"

---

[१] पत्तों से बनाई हुई कटोरी।

प्रकरण ४

मूलराज सोलंकी (९४२ ई०—९९७ ई०)

सोलंकी वंश [१]

इतिहासकारों ने सामन्तसिंह के विषय में कुछ अच्छा नहीं लिखा

---

[१] रासमाला के अनुसार राजावली इस प्रकार है :—

क्रमाङ्क	नाम	संवत्	सन्	से	संवत्	सन्	तक	वर्ष	राज्य किया
१	मूलराज	९९८	९४२	,,	१०५३	९९७	,,	५५	,,
२	चामुंडराज	१०५३	९९७	,,	१०६६	१०१०	,,	१३	,,
३	वल्लभसेन	१०६६	१०१०	,,	१०६६	१०१०	,,	०॥	,,
४	दुर्लभसेन	१०६६	१०१०	,,	१०७८	१०२२	,,	१२	,,
५	भीमदेव (प्रथम)	१०७८	१०२२	,,	११२८	१०७२	,,	५०	,,
६	कर्ण	११२८	१०७२	,,	११५०	१०९४	,,	२२	,,
७	सिद्धराज जयसिंह	११५०	१०९४	,,	११९९	११४३	,,	४९	,,
८	कुमारपाल	११९९	११४३	,,	१२३०	११७४	,,	३१	,,
९	अजयपाल	१२३०	११७४	,,	१२३३	११७७	,,	३	,,
१०	मूलराज (दूसरा)	१२३३	११७७	,,	१२३५	११७९	,,	२	,,
११	भीमदेव (दूसरा) (भोला भीम)	१२३५	११७९	,,	१२९८	१२४२	,,	६३	,,
१२	त्रिभुवनपाल	१२९८	१२४२	,,	१३००	१२४४	,,	२	,,
							योग	३०२	वर्ष

है क्योंकि उनकी दृष्टि में वह योग्य राजा न था। उसके विषय मे

"प्राचीन गुजरात" के कर्त्ता ने चालुक्य (सोलंकी) वंश की वंशावली इस प्रकार दी है :—

क्रमांक	नाम	संवत्	सन्	से	संवत्	सन्	तक वर्ष	राज्यकिया
१	मूलराज	१०१७	९६१	,,	१०५२	९९६	,, ३५	,,
२	चामुंडराज	१०५२	९९७	,,	१०६६	१०१०	,, १३	,,
३	वल्लभसेन	१०६६	१०१०	,,	१०६६	१०१०	,, ०	,,
४	दुर्लभसेन	१०६६	१०१०	,,	१०७८	१०२२	,, १२	,,
५	भीमदेव (प्रथम)	१०७८	१०२२	,,	११२०	१०६४	,, ४२	,,
६	कर्णदेव	११२०	१०६४	,,	११५०	१०९४	,, ३०	,,
७	सिद्धराज जयसिंह	११५०	१०९४	,,	११९९	११४३	,, ४९	,,
८	कुमारपाल	११९९	११४३	,,	१२३०	११७४	,, ३१	,,
९	अजयपाल	१२३०	११७४	,,	१२३३	११७७	,, ३	,,
१०	मूलराज (दूसरा)	१२३३	११७७	,,	१२३५	११७९	,, २	,,
११	भीमदेव (दूसरा)	१२३५	११७९	,,	१२९८	१२४२	,, ६३	,,

द्व्याश्रय की टीका में पाद-टिप्पणी में और सुरथोत्सव में लिखा है —"मूलराज सं० ९९३ मे गद्दी पर बैठा।"

प्रबन्धचिन्तामणि (मेरुतुंगाचार्य कृत) कुमारपाल-प्रबन्ध (जिनमंडन उपाध्याय कृत) और पट्टावलि में लिखा है कि मूलराज ने ५५ वर्ष, चामुण्डराज ने १३ वर्ष, वल्लभराज ने ६ मास, दुर्लभराज ने ११ वर्ष ६ महिने, और भीमराज ने ४२ वर्ष राज्य किया। (प्रबन्धचिन्तामणि की एक प्रति में ५२ वर्ष लिखा है) "कुमारपाल प्रबन्ध" और 'पट्टावलि' में लिखा है कि कर्णदेव ने२९ वर्ष राज्य किया।

प्रबन्धचिन्तामणि में सिद्धराज का राज्यकाल ४९ वर्ष और पट्टावली में ४८ वर्ष ८ मास और १० दिन लिखा है।

लिखा है "वह कीर्तिमान् राजा नहीं था। उसके वचन में दृढ़ता नहीं थी, उसे दिन को रात कहते भी कोई विचार न होता था। विवेक और दृढ़ता ने उसका स्पर्श भी नहीं किया था। भले और बुरे, मित्र और शत्रु के भेद का ज्ञान उसे न था और उसका मस्तिष्क प्रतिक्षण बदलता

प्र० चि० और कु० प्र० में लिखा है कि कुमारपाल ने २७ वर्ष राज्य किया, पट्टावलि के अनुसार उसने ३० वर्ष ८ मास और १० दिन राज्य किया।

अजयदेव के राज्य-काल के विषय मे प्र० चि० में ३ वर्ष और पट्टावलि में ३ वर्ष ११ मास और २८ दिन लिखे हैं।

मूलराज द्वितीय ने प्र० चि० में लिखे अनुसार २ वर्ष और पट्टावलि के अनुसार २ वर्ष १ महीना २४ दिन राज्य किया।

भीमदेव (द्वितीय) ने प्र० चि० में लिखे अनुसार ६३ वर्ष और पट्टावली के अनुसार ६५ वर्ष २ महीने ८ दिन राज्य किया।

पट्टावली में लिखा है कि भीमदेव (द्वितीय) के बाद ६ दिन तक पादुका का राज्य रहा। फिर त्रिभुवनपाल ने २ महीने १२ दिन राज्य किया। इसके बाद गुजरात की गद्दी चालुक्यों की दूसरी शाखा बाघेलों के हाथ में चली गई।

मुंहणोत नैणसी के अनुसार सोलंकी राज समय की साक्षी का कवित्तः—

"मूलू पैंतालीस वरस, दस कियो चंद गिर,
वलभ अढाई वरस, साढ बारह द्रोणा गिर।
भीम वरस चालीस, वरस चालीस करणगह,
एक घाट पंचास, राज जैसिंह वरणगह।
कँवरपाल तिस किहु आगल, वरस तीन मूलराज लह।
विलमीज भीम सतरस हरस, वरस सात अगलीक चह॥

मूलराज ४५ वर्ष, चन्दगिर १० वर्ष, वल्लराज २॥ वर्ष, द्रोणगिर १२॥ वर्ष भीमदेव नागसुत ४० वर्ष कर्ण ४० वर्ष, सिद्धराज जयसिंह ४९ वर्ष कुंवर पाल ३३ वर्ष, दूसरा मूलदेव ३ वर्ष और मूलराज के छोटे भाई भीमदेव (दूसरे) ने ६४ वर्ष राज किया।

रहता था। उसके सात वर्ष के स्वल्प राज्यकाल के विषय में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा है कि उसके कोई सन्तान [१] नहीं थी, अतः अणहिलवाड़ा के राज्य पर सोलंकी वंश का अधिकार हुआ।

(१) चावड़ों के भाटों का कथन है कि सामन्तसिंह के कोई सन्तान नहीं थी। ऐसी दशा में जब कि मूलराज की उसके बाद में गद्दी ले लेने की सम्भावना थी तो उसने मूलराज को मरवा क्यों न डाला? परन्तु सामन्तसिंह के एक कुंवर था जिसका नाम अहिपति था। जब मूलराज ने सामन्तसिंह का वध किया उस समय अहिपति को लेकर उसकी मां, जो भाटी राजपूतों की कन्या थी, अपने पीहर, तणोत ग्राम में (जो मारवाड़ की सीमा पर है) चली गई। जिस स्थान पर जैसल ने जैसलमेर बसाया वहां पर पहले भाटी राजपूत राज्य करते थे। उस समय अहिपति की अवस्था एक वर्ष की थी। कुछ वर्ष बाद वह कच्छ में आकर लाखा फूलाणी की शरण में रहा जहां पर उसे मोरगढ ग्राम तथा उसके आसपास की जमीन निर्वाह करने के लिये मिल गई। मूलराज और लाखा फूलाणी की शत्रुता के कारणों में से यह भी एक कारण सम्भव प्रतीत होता है। लाखा फूलाणी आटकोट की लड़ाई में सन् ९७९ ई० में मारा गया तब मूलराज ने कच्छ पर अधिकार कर लिया। उसी समय अहिपति ने भी बहुत से ग्रामों पर अपना कब्जा कर लिया। कुछ लोगों का कहना है कि उसने ९०० गांवों पर कब्जा किया था। अहिपति की १५ वीं पीढी में पूंजोजी चावडा हुआ, उसने अपने समय में मोरगढ खो दिया। उसके समय में जाम धावजी और फिर वेणजी कच्छ के राजा हुए। इनके समय में जाम अबडा ने बहुतसी लड़ाइयां लड़ीं थी इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उसी ने चावड़ों को भगा दिया था। पूंजोजी मोरगढ से धारपुर (पालनपुर के अन्तर्गत) चले गये और वहां पर ८४ गावों का एक ताल्लुका जमाया किन्तु अलाउद्दीन खिलजी ने जब गुजरात को जीत लिया, तब पूंजोजी का ताल्लुका भी उनके हाथ से निकल गया और उन्होंने बादशाह की नौकरी करली। इनकी सेवा से प्रसन्न होकर बादशाह ने अम्बासर के नीचे के ७५२ ग्राम इनको दिये। अम्बासर में पूंजोजी के बाद पांचवीं पीढी में जयसिंह चावडा हुआ जिसके तीन कुंवर थे। इन तीनों ने गावों को आपस में बांट लिए। सबसे बडा ईश्वरदास अम्बोड़ में, सूरजमल बरसोडा में और सामन्तसिंह अम्बासर में रहे। सामन्तसिंह की पांचवीं पीढी में सूरसिंह हुआ जिसने महीकांटा के माणसा

कल्याण के राजा भूवड़ [१] की चौथी पीढ़ी में भुवनादित्य नाम का राजा हुआ। उसके तीन पुत्र थे जिनके नाम राज, बीज और दण्डक थे। ये तीनों सोमनाथ महादेव की यात्रा करके लौटते समय सामन्तसिंह के दरबार में गये। सम्भवतः केवल यात्रा ही उनका उद्देश्य नहीं था अपितु ऐसा प्रतीत होता है कि वे उस सौभाग्य की तलाश में घर से निकल पड़े थे जो प्रायः राजवंशीय राजपूतों में छोटे भाइयों को राजगद्दी के बहुत निकट सम्बन्धी होने पर भी घर पर प्राप्त नहीं होता और जिसको प्राप्त करने के लिए बहुधा बाहर निकल पड़ने की उनमें चाल ही पड़ गई है। रत्नमाला में लिखा है कि इन तीनों में सबसे बड़ा मध्यम कद का व गोरे रंग का सुन्दर राजकुमार था। आगे लिखा है "वह अपने धर्म को पालता था, नित्य शिवजी की पूजा करता था परन्तु अपनी स्त्रियों की ओर से उसे बड़ा दुख था और इसीलिये भाग्य से मिली हुई दूसरी सुविधाओं से भी उसे कोई सुख प्राप्त नहीं था। राजकुमार 'राज' के उच्चकुल और उसकी शूरवीरता के कारण अणहिलवाड़ा के राजा [२] ने अपनी बहन लीलावती का विवाह उसके साथ कर दिया।

ग्राम में अपनी गद्दी कायम की। माणसा के वर्तमान् (गुजराती अनुवाद के समय सवन् १९२५ वि० में) ठाकुर राजसिंह हैं जो सूरसिंहजी की १२ वीं पीढ़ी मे हैं।

(१) प्रबन्धचिन्तामणि में भूदेव, भूयड़देव लिखा है और इसके वंश को भूयड राजवंश (भूदेवक) लिखा है। भूयड के कर्णादित्य, उसके चन्द्रादित्य, उसके सोमादित्य और सोमादित्य के भुवनादित्य हुआ, ऐसा रत्नमाला में लिखा है।

(२) रत्नादित्य ने सन् ९२० ई० से ९३५ ई० तक १५ वर्ष राज्य किया। उसके बाद सामन्तसिंह ने ९३५ से ९४२ ई० तक सात वर्ष राज्य किया, फिर ९४२ में उसका वध करके मूलराज ने राज्य ले लिया। उस समय मूलराज की अवस्था २१ वर्ष की थी इसलिये उसका जन्म ९२१ में होना सिद्ध होता है। ऐसा मालूम होता है कि उस समय रत्नादित्य तो गद्दी पर था और सामन्तसिंह युवराज पद से उसके राज्य

यह राजकुमारी गर्भवती हुई और प्रसववेदना के कारण चल बसी, परन्तु उसकी कोख से जीवित बच्चा निकाल लिया गया, जिसका नाम मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण मूलराज [१] रखा गया। सामन्तसिंह ने उसे दत्तक ले लिया और उसने बाल सूर्य के समान अपने प्रताप का प्रसार करते हुये अपने मामा के राज्य की वृद्धि करके सर्वप्रिय होकर

कार्य में हाथ बॅटाता था। अपनी बहन के विवाह में वह प्रधान रहा होगा इसीलिए शायद उसको राजा लिख दिया है परन्तु वास्तव में, जब रत्नादित्य गद्दी पर बैठा था तो तुरन्त ही राज और बीज आए होगें। यदि लीलादेवी का विवाह सन् ९२० में हुआ होगा तो ९२१ ई० में मूलराज का जन्म होना सभव है। सामन्तसिंह गद्दी पर बैठा उस समय मूलराज की अवस्था १४ वर्ष की थी, उस समय से ७ वर्ष तक अपने मामा के साथ राज काज में हाथ बटाने के कारण उसे अच्छा आश्रय मिल गया होगा। यदि गद्दी पर बैठने के बाद सामन्तसिंह ने अपनी बहिन का विवाह किया होता तो उस समय मूलराज की उमर अधिक से अधिक ६ वर्ष की होती। इतनी छोटी सी अवस्था में वह मामा को मार कर गदी पर बैठ गया हो, ऐसा सभव प्रतीत नहीं होता।

(१) सोलकी वश के विषय में भाटों की कथा इस प्रकार है —अन्तर्वेद अथवा गगा यमुना के बीच के प्रदेश (दोआवे) में टूकटोडा-मदावती नगरी में सोलकियों का राज्य था। उस वंश में राज और बीज हुए। जागीर के कारण भाई बन्धुओं से उनका झगडा हुआ और कितनों ही को उन्होंने मार भी डाला। बाद मे गोत्रहत्या के पाप का पश्चात्ताप हुआ इसलिए वे द्वारका और काशी की यात्रा करने के लिये निकले। पहले काशी में जाकर एक वर्ष तक रहे और पुण्य दान किया, फिर गंगा-जल की कावडें भर भर कर द्वारका के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में वे पाटण में ठहरे। उसी समय वहा के राजा का चरवादार (साईस) राजा की घोडी को पानी पिलाने के लिए उधर से निकला। राज और बीज के भॅगवा रंग के वस्त्र देखकर घोडी चमक गई, तब साईस ने उसके एक चाबुक मारा। यह देख कर बीज, जो घोडों की परीक्षा में कुशल था और जिसने "शालिहोत्र" नामक ग्रन्थ का अध्ययन किया था, खिन्न हुआ और बोला, "अरे! मूर्ख! तूने चाबुक मार कर इस घोडी के पेट

बचपन में ही बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली। रत्नमालाकार ने लिखा है "वह विश्वासघाती, दयाहीन और निरन्तर अपनी उन्नति में तत्पर रहने वाला था।" ये सब बातें उसके बाद के कृत्यों से सिद्ध हो जाती हैं। 'वह रंग का काला परन्तु सुडौल और स्वरुपवान् था, कामदेव का दास था,

---

में जो पँचकल्याण बछेरा है उसकी दाहिनी आँख फोड दी।" साईस को यह सुनकर बडा आश्चर्य हुआ और उसने जाकर सब समाचार राजा को कह सुनाया। यह सुन कर उसे महापुरुष समझ कर राजा उसके पास गया और उसकी आकृति देख कर जान गया कि वह अवश्य ही कोई प्रतापी मनुष्य है और उसमें कोई चमत्कार है। फिर उसने कहा "यदि तुम्हारे कहने के अनुसार मेरी घोडी के पँचकल्याण बछेरा होगा तो मैं तुम्हें पाटण का आधा राज्य दूंगा व मेरी बहिन सेनाजी (कुमारपालरासो में लीलावती लिखा है) का विवाह तुम्हारे साथ कर दूंगा और यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारे पास जो कुछ है वह सब छीन लूँगा।' यह बात तय हो गई और वे दोनों भाई दरबार में रहने लगे। पन्द्रह दिन बाद घोडी के एक बछेरा हुआ जिसके चारों पैर व मुँह सफेद थे और दाहिनी आँख फूटी हुई थी। यह देख कर सामन्तसिंह चावडा ने अपने वचन के अनुसार आधा राज्य देना तो स्वीकार कर लिया परन्तु जाति और कुल जाने बिना अपनी बहन का विवाह उनके साथ करने में आना कानी की। इस पर राज और बीज ने अपने वंश और जाति आदि का परिचय दिया और राजा ने प्रसन्न होकर अपनी बहन का विवाह बीज के साथ करना स्वीकार कर लिया। परन्तु बीज एक आँख से काना था और उसने अपने बडे भाई के साथ ही उस कन्या का विवाह करने की इच्छा प्रकट की इसलिए सेनाजी का विवाह राज के साथ हुआ। कुछ समय दोनों भाई वहीं पर रहे और इसी अवसर में सेनाजी के पेट से मूलराज ने जन्म लिया।

मेरुतुंग ने लिखा है कि सामन्तसिंह स्वयं ही घोड़ा फेर रहा था तब उसने घोडी के चाबुक मारा। इस पर उक्त भाईयों में से एक ने 'हूँ हूँ' कह कर इस प्रकार सिर धुना मानों उसको बडी भारी पीडा हुई हो। उसने राजा से कहा 'अच्छी गति से चलने वाली घोडी के तुमने चाबुक मारा इससे मुझे ऐसी पीडा हुई कि जैसे मेरे ही चाबुक लगा हो' इस पर सामन्तसिंह ने उसे घोडी फेरने के लिए कहा। उसने इतनी सरलता से घोड़ी फेरी कि राजा ने प्रसन्न होकर अपनी बहन लीलावती देवी का विवाह उसके साथ कर दिया।

महाकंजूस और धन को पृथ्वी मे गाड़ कर रखने वाला था, युद्ध मे तो इतना कुशल नहीं था परन्तु शत्रु का सामना होने पर उसमें विश्वास उत्पन्न करके चालाकी से उसे नष्ट कर देता था।" जब मूलराज जवान हुआ तो एक दिन सामन्तसिह ने अपने नशे की धुन में उसका राज्याभिषेक करवा दिया परन्तु, होश आते ही उसने अपना राज्य वापस ले लिया। जैन ग्रन्थकारों का कहना है कि उसी दिन से "चावड़ों के दान का कोई मूल्य नहीं है" यह कहावत प्रचलित हो गई। एक बार राज्य का स्वाद लेकर उसे छोड़ देना मूलराज को अच्छा न लगा। उसने सेना इकट्ठी करके अपने मामा पर आक्रमण किया और उसे मार कर उसी गद्दी पर बैठ गया जिस पर वह पहले एक प्रकार की भयङ्कर मस्ती मे बैठाया गया था [१]

---

(१) इस विषय में भाट की कथा इस प्रकार है:—"जब मूलराज बडा हो गया तो उसको लेकर राज और बीज द्वारका चले गये। रास्ते में उसके पिता राज को लाखा फूलाणी ने मार डाला। उस समय मूलराज की अवस्था ग्यारह वर्ष की थी। जब उसका पिता मारा गया तब उसके काका (चाचा) बीज ने उससे कहा, "तुम्हारे मामा ने आधा राज्य देने का वचन दिया था इसलिए अब जाकर उससे आधा राज्य माग लो।" इसके अनुसार उसने जाकर अपने मामा से कहा। उसने उत्तर दिया 'मैंने तेरे पिता को नीबू उछाल कर वह वापिस आकर भूमि पर गिरे इतनी देर राज्य देने का वचन दिया था वही अब तुझे दे सकता हूँ।" मूलराज ने यह सब बात अपने काका (चाचा) से आ कर कही। उसने सलाह दी "जितनी देर तुझे राज्य मिले उस अवसर में सामन्तों को शिरोपाव और जमीनें देना, जिससे वे तेरे पक्ष में हो जावेंगे।" मूलराज नित्य ऐसा ही करने लगा। इससे सभी लोग यह चाहने लगे कि मूलराज राजा हो जाय तो बडा अच्छा हो। इसी तरह एक वर्ष बीत गया, तब सामन्तसिंह ने सोचा कि इस प्रकार तो राजकोष बहुत शीघ्र खाली हो जायगा। इधर मूलराज को उसके काका ने एक सलाह दी "मास के टुकडों को फेंक फेंक कर गिद्धों को साध लो जिससे वे सदैव तुम्हारे सिर पर मँडराया

कुमारपालचरित के कर्ता ने कहा है "सात वस्तुएं कृतघ्न हैं [१] जामाता (जँवाई) (२) बिच्छू (३) बाघ (४) मद्य (५) मर्ख (६) भानजा और (७) राजा। इनमें से किसी को भी गुण की पहचान नहीं होती।" निष्कण्टक राज्य भोगने के लिए उसने एक ब्राह्मण के कहने से अपनी माता के वश वालों का मरवा डाला। इस पापकर्म के लिए आगे चल कर उसने स्वय पश्चात्ताप किया, परन्तु उसके इतिहासलेखकों ने मरने वालों का मूल्य कम करने का प्रयत्न करते हुए लिखा है कि वे सभी पापी, गर्विष्ठ, मद्यपान करने वाले, प्रजा को दुख देने वाले और देव ब्राह्मणों का तिरस्कार करने वाले थे। [१]

चावड़ा वंश का नाश होते ही आस पास के सभी राजा गुजरात का राज्य प्राप्त करने के लिए लोलुप हो गये थे। अतः मूलराज को अब अपने सद्यः प्राप्त राज्य की रक्षा करने के लिए राजनैतिक चालों में व्यस्त

करेंगे, फिर एक दिन नीबू खून में भिगो कर फेंको जिसको मॉस का टुकडा समझ कर गिद्ध ले जावेंगे और वह नीबू न कभी जमीन पर आकर गिरेगा और न तुम गद्दी से हटोगे।" मूलराज ने ऐसा ही किया और एक दिन खून से रंगा हुआ नीबू फेंका जिसको लेकर गिद्ध उड गया। सामन्तसिंह ने उसे गद्दी मे उतरने के लिए कहा परन्तु उसने कहा कि नीबू तो भूमि पर आकर गिरा ही नही। इस पर उनमें झगड़ा हो गया और दरबारियों की सहायता से मूलराज ने सामन्तसिंह को मार डाला। मेरुतुंग के लेखानुसार संवत् ९९८ में २१ वर्ष की अवस्था में मूलराज स्वतन्त्र रीति से गद्दी पर बैठा।

(१) शेक्सपीयर ने किंग जॉन नामक नाटक के तीसरे अंक के दृश्य ४ में इस प्रकार लिखा है "जो 'राजदण्ड' (राज्य) अन्यायपूर्वक अपहरण करके लिया जाता है उसको निभाने के लिए कलहपूर्ण उपाय ही काम में लाने पडते हैं। जो मनुष्य फिसलनी जगह पर खड़ा होता है उसको निर्बल आधार गिरने से नहीं बचा सकते।"

होना पड़ा। उत्तर में नागोर [१] अथवा साम्भर का राज्य था जो बाद में अजमेर राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ का राजा एक लाख गाँवों का स्वामी था। इसी राजा ने पहले पहल मूलराज पर हमला किया।

इसके साथ ही लगभग उसी समय तिलगाना [२] के राजा, तैलिप के अधिकारी (सेनापति) वारप ने भी गुजरात पर आक्रमण कर दिया। [३] मूलराज के इतिहास लेखक लिखते हैं कि उसके मन्त्रियों ने उसे

---

(१) मेरुतुंग ने सपादलक्ष देश लिखा है।—चौहानराज विग्रहराज।

(२) मि० वाल्टर इलियट ने रायल एशियाटिक सोसायटी की पुस्तक के भाग ४ के पृ० १ में कल्याण के चालुक्य अथवा सोलंकी वंश का वर्णन करते हुए तैलप देव नामक राजा के विषय में लिखा है कि उसने शक संवत् ८९५ से ९१९ तक (९७४ ई० से ९९८ ई०) तक राज्य किया। इससे विदित होता है कि वह मूलराज का समकालीन था। निस्सन्देह यह वही तैलप था जिसने मालवा के वीर राजा मुंज को मारा था। मिस्टर इलियट ने कल्याण राज्य की उत्तर दिशा की सीमा नर्मदा नदी लिखी है। 'प्राचीन गुजरात' के कर्त्ता ने लाट देश का वारप लिखा है।

(३) कीर्ति कौमुदी में लिखा है कि लाटेश्वर का सेनापति वारप ऐसा असाधारण पराक्रमशाली था कि कोई भी उसके सामने ठहर नहीं सकता था। मूलराज ने उसका वध करके उसके हाथियों का समूह ले लिया।

"अथ चौलुक्यभूपालः पालयामास तत् पुरम्।
जितराजसमाज श्री मूलराज इति श्रुत ॥१॥
आवर्जिता जितारातेर्गुणैर्बाणरिपोरिव।
गुर्जरेश्वरराज्यश्रीर्यस्य जज्ञे स्वयंवरा ॥२॥
लाटेश्वरस्य सेनान्यमसामान्यपराक्रमः।
दुर्वारं वारपं हत्वा हास्तिकं यः समग्रहीत् ॥३॥

समझाया कि जिस प्रकार मैंढा पीछे हट कर जोर से टक्कर मारता है तथा बाघ क्रोधित होकर अपने अंगों को समेट लेता है जिससे कि वह अधिक भयानक हमला कर सके उसी प्रकार आप भी एक बार हट कर अपने पराक्रम को रक्षित रखें। इनके कहने से अथवा अपनी नित्य की प्रपचभरी नीति से मूलराज अणहिलवाडा से दूर जहाँ कोई हमला न कर सके ऐसे कंथकोट [१] किले में, जो कच्छ के नाके पर स्थित है,

---

सपत्नाकृतशत्रूणां सम्पराये स्वपतत्त्रिणाम् ।
महेच्छ· कच्छभूपाल लक्षं लक्ष चकार य· ॥४॥
दानोपद्रुतदारिद्र्य· शौर्यनिर्जितदुर्जनम् ।
कीर्तिस्थगितकाकुत्स्थं, यो राज्यमकरोच्चिरम् ॥५॥
(कीर्ति कौमुदी सर्ग २)

भाषान्तर में आचार्य वल्लभ की कविता दूसरे सर्ग में इस प्रकार है :—

हवै चौलुक्य भूपाल, पुरने पालतो हतो ।
जीती राज–समाज ने, मूलराज करी छतो ॥१॥
जित–शत्रु थी छुटेली, कृष्णनीवत् गुणे करी ।
गुर्जरेश्वर–राज–श्री, जेने पोता थकी वरी ॥२॥
सेनानी लाटेश्वरनो, असामान्य पराक्रमी ।
ते बार्पने हणी जेणे, हाथी सेना ग्रही दमी ॥३॥
पीडेला छे शत्रु जेणे, ते स्वबाणों तणु रणे ।
निशान कच्छ भूपाल, लाखानु करयुं जे हणे ॥४॥
हण्यों दारिद्र दानो दई, जित्या शौर्य थी दुर्जनो ।
कीर्तिए रामने ढाँकी, कर्यू राज्य घणा दिनो ॥५॥

(१) कच्छ के भचाऊ तालुके में यह किला है जो कंथा दुर्ग अथवा कंथा गढ कहलाता था। ६४३ ई० में जाम साडजी ने इसको पूरा किया। उसके पिता जाम मोडजी ने इसको बनवाना शुरू किया था।

जा बैठा। उसको यह भी आशा थी कि वर्षा ऋतु में दुख पाकर अजमेर का राजा अपने आप वापस लौट जायगा परन्तु, वह राजा वर्षा ऋतु मे भी जैसे तैसे रणक्षेत्र में डटा रहा और नवरात्र आते ही हमले की तैयारियाँ करने लगा। मूलराज ने कैसा क्या प्रलोभन [१] देकर अजमेर

---

[१] मेरुतु ग के लेखानुसार प्रलोभन देने की बात इस प्रकार है —

"नागोर के राजा ने जहाँ पडाव डाला था वहीं पर शाकंभरी नामकी नगरी बसाई। अपनी गोत्र देवी की स्थापना करके वहीं नवरात्र पूजन करने के बाद मूलराज ने देवी-पूजन (लहथिका) के मिष से अपने सामन्तों को कु कुमपत्रिगा भेजीं। जब वे लोग आए तो उनकी अगवानी के लिए सामन्त भेजे और मुहूर्त के समय स्वय भी ऊ टनी पर सवार होकर आ पहुँचा। सपादलक्ष की छावनी में घुस कर उसने कहा "इस भूमण्डल में मुझसे मुकाबला करने वाला कोई नहीं है परन्तु आप युद्धार्थ पधारे हो इसलिए मुझे हर्ष है क्योंकि मुझे युद्ध करने का प्रसग तो प्राप्त हुआ, परन्तु तैलिप के सेनापति बारप ने भी अभी चढाई की है इसलिए मैं उसे शिक्षा देकर आता हूँ, तब तक आप यहीं आराम करें, फिर हम लोग परस्पर युद्ध का रस लेंगे। बस, मैं यहीं निवेदन करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ।" सपादलक्ष के राजा ने कहा, "एक कटार मात्र के बल पर आप मेरे जैसे शत्रु की अनगिनती सेना के बीच मे घुस आये इसलिए आपका साहस धन्य है। आपके साथ तो मुझे मित्रता करना उचित है।" मूलराज तुरन्त ही उठ खडा हुआ और अपने साथियों सहित ऊँटों पर सवार होकर चल दिया। वहाँ से चल कर वह सीधा बारप की सेना पर "हर! हर! महादेव!" कहता हुआ टूट पडा और उसका विध्वस कर दिया। विजय करके मूलराज शाकम्भरी की ओर आया, तब तक उसके पराक्रम की बात सुनकर सपादलक्षेश्वर भी चलता बना। मूलराज भी इस घटना से बहुत प्रसन्न हुआ। इस वृत्तान्त को अमर करने के लिए उसने 'मूलराज वसहिका' और मुंजाल देव स्वामी का प्रासाद बनवाया। कहते हैं कि उसके भक्तिभाव से प्रसन्न होकर सोमेश्वर महादेव ने उसे मण्डलिक नगर में दर्शन दिये और कहा, "मैं तेरे अणहिलवाडा पट्टण में निवास करता हूँ इसका परिचय तुझे शीघ्र ही मिल जायगा" वहाँ जाकर उसने देखा कि नगर के सभी कुओं का जल खारा हो गया है वह जान गया कि सोमेश्वर भगवान्

की सेना को वापस कर दिया, इसके विषय में कोई सहज ही ध्यान में आने वाला लेख नहीं मिलता परन्तु इस सेना के लौट जाने के पश्चात

अपने सेवक समुद्र सहित पधारे हैं इसलिए उसने त्रिमूर्ति प्रासाद बनवाया, तब तुरन्त ही सब कुओं का जल मीठा हो गया।

त्रिपुरुषप्रासाद के लिए पुजारी ढूँढता हुआ मूलराज सरस्वती नदी के किनारे कथडो नामक पवित्र तपस्वी के पास पहुँचा और उसे पुजारी बनने के लिए कहा। परन्तु उसने कहा :—

"अधिकारात्त्रिमिर्मासैर्मठपत्यात्त्रिभिर्दिनैः।
शीघ्रं नरकवाञ्छा चेत् दिनमेकं पुरोहितः॥"

"अधिकारी को तीन महीने में और मठाधीश को तीन दिन में नरक की प्राप्ति होती है, यदि और भी शीघ्र नरक में जाने की इच्छा हो तो एक दिन के लिए पुरोहित बन जावे।" इसलिए हे राजन्! मैं इस संसार समुद्र से पार हो जाने के लिए ऐसे लोभ से दूर ही रहता हूँ।" राजा ने सोचा कि आदमी तो सत्पात्र ही है परन्तु स्वीकार नहीं करता है, अब क्या करना चाहिए? ऐसा सोच कर उसने एक युक्ति की कि कंथड़ी की झोली में भिक्षा की रोटियों के साथ उसके नाम का एक ताम्रपट्ट डाल दिया। कंथड़ी ने वह ताम्रपट्ट अपने एक राजवंशीय शिष्य वयजल्ल देव को दे दिया और उसे राजा के पास जाने की आज्ञा दी। ताम्रपट्ट के अनुसार उसको ३२ वारांगना, ८ पल केसर, ४ पल कस्तूरी, स्नान के लिए १ पल कपूर, आच्छादन के लिए श्वेत छत्र और ग्राम आदि मिले। सम्यक् प्रकार से त्रिपुरुषप्रासाद के अधिकारी के धर्मस्थान पर उसका अभिषेक कर दिया गया। यह स्थान ककरौल अथवा आजकल कॉकरोल" कहलाता है।

यह पुजारी राजवंशी था इस लिए मन्दिर में राजसी ठाठ बाट बहुत रखता था। मूलराज की रानी को उसके चरित्र पर सन्देह हुआ इसलिए वह एक दिन रात्रि के समय पुजापा (पूजा सामग्री) लेकर गई। वयजल्ल देव उसकी बुद्धि को समझ गया था इसलिए उसने रानी पर पान के पीक की पिचकारी मार दी। जिस जिस स्थान पर पीक लगा रानी के कोढ निकल आया। फिर बहुत कुछ अनुनय विनय करने पर उस ब्रह्मचारी ने अपने स्नान किए हुए जल से उसको स्नान कराया तब वह कोढ़ मिट गया।

उसने अपने सामन्तों को (१) इकट्ठा करके वारप पर आक्रमण किया, उसके सेनापति को मार डाला और खूब मार काट करके सेना को भगा दिया।

इस प्रकार शत्रुओं से छुटकारा पाकर मूलराज ने अणहिलपुर में कितने ही धार्मिक स्थान बनवाना आरम्भ किया। इनमें से एक प्रख्यात सिद्धपुर का रुद्रमाला नामक महादेव का मन्दिर था जिसके पूरा होने के पूर्व ही वह चल बसा। कहते हैं कि, उसने शिवजी की बहुत आराधना की थी इसलिए शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे मन्दिरों मे सबसे अधिक स्मरणीय सोमनाथ के मन्दिर सहित सोरठ का राज्य दे दिया था। सोरठ की प्राप्ति के विषय में सुप्रसिद्ध हेमाचार्य ने अपने "द्व्याश्रय' काव्य मे जो वृत्तान्त लिखा है उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं.--

जैन आचार्य का कथन है कि "मूलराज संसार का उपकार करने वाला, उदार और सद्गुणों का भडार था। सब राजा लोग सूर्य के समान उसकी पूजा करते थे, जो लोग अपना देश छोड़ कर उसके देश में बसते थे उन्हें सुख मिलता था, इसी कारण उसने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। उसके शत्रुओं में से आधे तो उसके हाथों मारे गये और

---

(१) सामन्तों में नॉदोल के चौहानों के विषय में प्राय ऐसी दन्त-कथा प्रचलित है :—

सवत् १०३९ (९८३ ई०) में पट्टण शहर के आदि दरवाजे पर लाखनराय चौहान कर वसूल करता था। उसने मेवाड के राजा से मनमाना कर वसूल किया था।

मेरुतुंग ने प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि सपादलक्षीय (चौहानराज विग्रह-राज द्वितीय) ने मूलराज पर चढाई की परन्तु उसकी हार हुई और वह इसी लडाई में मारा गया। मूलराज ने उसके हाथी घोडे ले लिए।

आधों को उसने अन्त्यजों के समान शहर के बाहर भिखमंगा करके छोड़ दिया। उनकी स्त्रियों को, जिन्होंने कूपमण्डूक के समान कभी घर के आँगन के बाहर कुछ न देखा था, जंगल में घूमते हुए भीलों ने पकड़ लिया और नगरों में दासियों के समान बेच दिया।"

एक समय सोमनाथ महादेव ने मूलराज को स्वप्न में दर्शन दिये और आज्ञा दी "ग्राहरिपु [१] तथा दूसरे दैत्यों को, जिन्होंने प्रभास

(१) चंद्रवंश में आदिनारायण से चौथा पुरुष चन्द्रमा हुआ, जिसके वंशज चन्द्रवंशी कहलाये, दशवां पुरुष यदु हुआ जिसके वंशज यादव अथवा जादव कहलाये। इसी वंश के ५४ वें पुरुष श्रीकृष्ण हुए। इनके पुत्र साम्ब का विवाह मिश्र (ईजिप्त) देश में शोणितपुर के राजा बाणासुर के बाद में होने वाले कौभाण्ड की पुत्री रामा से हुआ था। इनसे ५६ वां पुरुष उष्णीक उत्पन्न हुआ जो यादवस्थली के समय अपने ननसाल शोणितपुर में था। कौभाण्ड के कोई पुत्र नहीं था, इसलिए वह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके वंश का १२५ वां पुरुष देवेन्द्र ईसा की छठी शताब्दी के अन्त में शोणितपुर का राजा हुआ। उसके चार पुत्र हुए (१) असपत (अश्वपति) उपनाम उग्रसेन (२) गजपत (गजपति) (३) नरपत (नरपति) और भूपत (भूपति)। उसी (देवेन्द्र) के समय में हजरत मुहम्मद साहब ने मुसलमान धर्म चलाया। मिश्रदेश के बहुत से लोग मुसलमान हो गये। इन चारों भाइयों पर भी यह आपत्ति आई तो ये राज्य छोड कर भाग निकले। बड़ा भाई असपत तो मुसलमान हो गया और बाकी तीनों भाई भाग कर अफगानिस्तान चले आए। यहां पर इन तीनों में से बडे गजपति ने अपने नाम पर विक्रम संवत् ७०८ (६५२ ई०) के वैशाख की शुक्ला ३ शनिवार रोहणी नक्षत्र में गजनी नामक शहर बसाया और नरपति को वहां का जाम नियुक्त किया। गजनी और खुरासान के बीच के प्रदेश में भूपति ने अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंशज भट्टी अथवा भाटी कहलाए। कुछ पीढियों बाद खुरासान के राजा ने उसको वहां से निकाल दिया, तब उन्होंने पंजाब में आकर (लाहौर के आस-पास) सलभाणा शहर बसाया और वहीं पर अपना राज्य स्थापित किया। परन्तु, यहां भी शत्रुओं ने उनका पीछा न छोडा इसलिए वे सिंध और मारवाड के बीच के

तीर्थ का नाश किया है, नष्ट करो। मेरे प्रताप से तुम उन पर विजय प्राप्त करोगे।"

दूसरे दिन ही प्रातःकाल जब दरबार में बहुत से मुकुटधारी राजा

हिस्से में आकर बस गये। यहा पर उमरकोट के परमार राजा व जालोर के सोनिंगरा के साथ इनका बेटी व्यवहार हुआ। सवत् ७८७ मे उन्होंने "तणोत" का किला बंधवा कर राजधानी कायम की। इसके बाद देवराज रावल ने तणोत के अतिरिक्त "देवराजगढ" नामक दूसरा किला बनवाया। देवराज की छठी पीढी में जेसल हुआ जिसने सन् ११५६ ई० में नगर से दस मील की दूरी पर अपने नाम पर जैसलमेर का किला बनवाया। तब से इस वश की राजधानी वहीं है।

गजपत के १५ कुंअर थे जिनके नाम ये हैं—(१) सालवाहन (२) बलद (३) रसलू (४) धर्मगध (५) वाचा (६) रूप (७) सुन्दर (८) लेख (९) जसकर्ण (१०) नेमा (११) मात (१२) निमक (१३) गगेव (१४) जगेव और (१५) जयपाल। अपने इन १५ कुंवरों के साथ वह हिन्दुस्तान में आया। कुछ पीढियों बाद ठठ्ठा नगर में चूडचन्द (चूडाचन्द्र) यादव हुआ हुआ जो सौराष्ट्र में वामनस्थली (वनथली) के राजा वालाराम चावड़ा का भानजा था। बालाराम अपने पुत्र से असतुष्ट था, इसलिए उसने चूडचन्द्र को अपना उत्तराधिकारी बनाया। इसके वशज चूडासमा राजपूत कहलाए।

"श्री चन्द्रचूडे चूडाचन्द्रे चूडासमानमधृत यतः।
जयति नृपहसवशोत्तस संसत्प्रशंसितो वंश. ॥"

यह सस्कृत पद्य अशुद्ध है।

वामनस्थली की गद्दी पर चूडचन्द्र ने ८७५ ई० से ९०७ ई० तक राज्य किया। उसका पुत्र हमीर उसके जीवनकाल में ही मर गया था इसलिए हमीर का पुत्र मूलराज चन्द्रचूड की गद्दी पर बैठा, जिसने ९०७ से ९१५ ई० तक राज्य किया। उसके पुत्र विश्ववराह ने ९१५ ई० से ९४० ई० तक राज्य किया। इसने राह पदवी धारण की, इसके बाद ग्रहअरिसिंह (राहगरियो १ ला अथवा ग्रहारिसिंह) उपनाम ग्राहरिपु हुआ। उसने ९४० ई० से ९८२ ई० तक राज्य किया। यह महा बलवान् था, इससे दिल्ली,

नित्य की रीति के अनुसार एकत्रित हुए तो सोलंकी राजा (मूलराज) ने अपने प्रधान जम्बुक और खेरालू के राजा जेहल से पूछा 'महादेव की आज्ञा का पालन किस प्रकार किया जाय?' जेहल से उसने पुनः पूछा "ग्राहरिपु [१]

देवगढ़, लंका आदि के राजा डरते थे। अणहिलवाड़ा के राजा मूलराज सोलंकी से ९७८ ई० में लड़ाई हुई जिसमें उसकी हार हुई। जूनागढ का ऊपरकोट इसी का बँधवाया हुआ है।

गजनी शहर की गद्दी पर जाम नरपत के बाद उसका पुत्र, उसके वंश में १३ वा पुरुष, सम्पत अथवा साम हुआ। उसके वंशज समा कहलाये जो बाद मे जाडेचों के नाम से प्रसिद्ध हुए। जाम समा को मुसलमानों के साथ लड़ाई में गजनी का राज्य खोना पडा, इसलिए अफगानिस्तान व सिंध की सरहद पर उसने राज्य जमाया। उसकी दसवीं पीढी में (१४६ वां पुरुष) लाखियार भड हुआ जिसने समै नगर (बाद में नगर ठठ्ठा) वसा कर अपनी राजधानी कायम की। उसका पुत्र (१४७ वा पुरुष) लाखोजी (अथवा लाखा धुरारा) हुआ। उसके बाद उसका छोटा पुत्र उन्नडजी गद्दी पर बैठा, बड़ा पुत्र (१४८) मोडजी कच्छ में आ गया और पाटगढ के राजा, अपने मामा वाघम चावडा का राज्य लेकर ८१९ ई० में गद्दी पर बैठा। उसके पश्चात् उसका कुंवर (१४९) साडजी हुआ जिसने कच्छ के बागड में कथकोट के किले को, जिसको उसके पिता ने बनवाना शुरू किया था, पूर्ण किया। उसका पुत्र फूलजी हुआ जिसने ८५५ ई० से ८८० ई० तक राज्य किया। फूलजी का पुत्र लखराज (लापाक) अथवा लाखोजी वा लाखो फूलाणी हुआ। उसने ८८० ई० से ९७९ ई० तक राज्य किया।

इस प्रकार विदित होता है कि लाखा फूलाणी और ग्राहरिपु चचेरे भाई थे। इससे यह भी विदित होता है कि ग्राहरिपु यादव कुल का ही था इसीलिए उसको यहाँ गायें चराने वाला (ग्वालिया) लिखा है।

(१) ग्राहरिपु कोई नाम नहीं है वरन् उपनाम है। द्व्याश्रय के टीकाकार ने इसका अर्थ यों किया है:— ग्राह=मगर, रिपु=शत्रु अर्थात् शत्रु को पकड़ने वाला।' अजमेर के किसी राजा ने किसी मुसलमान सुलतान को हराकर पकड़ लिया था इसलिए वह "सुल्तान ग्राह" कहलाता था।

को मैने ही राजा बनाया है परन्तु बुरे नक्षत्रों में जन्म लेने के कारण वह निर्लज्ज और यात्रियों को दुख देने वाला हो गया है। उसने मुझसे ही अधिकार प्राप्त किये हैं, यह बात ठीक है, परन्तु जब वह ऐसे कुकृत्य करता है तो मैं उसका वध क्यों न कर दूँ ?।"

जेहल ने ग्राहरिपु के अवगुणों का वर्णन करते हुये कहा :—❀

"यह ग्वालिया बहुत ही अन्यायी है। श्रीकृष्ण के राज्यकाल से इसके पूर्व तक जो गद्दी प्रताप से प्रकाशमान थी उसी सौराष्ट्र की गद्दी पर बैठ कर यह राज्य करता है और प्रभास की ओर जाने वाले यात्रियों को मार कर उनके हाड मांस मार्ग में बिखेर देता है। जिस वामनस्थली नगरी मे कभी हनुमान् व गरुड की ध्वजाएं फहराती थी वहीं आज वह रावण के समान निर्भीक होकर राज्य करता है [१] और अन्यान्य पवित्र स्थानों मे चोरों को बसाता है। वह ब्राह्मणों का तिरस्कार करता है और यात्रियों को बीच ही में लूट लेता है, इसलिए धार्मिक मनुष्यो के हृदय मे कॉटे की तरह खटकता है। वह युवा है, कामी है, और मोह का पुतला है, इसलिए अपने शत्रुओं का नाश करके उनकी स्त्रियो को बलात अपने

---

(१) यहाँ ठीक नही लिखा है—पद्य का भावार्थ इस प्रकार है —

"जो सुराष्ट्र भूमि श्री विष्णु (श्रीकृष्ण) जैसे उत्तम राजा से राजवन्ती थी और जो गरुडध्वज (श्रीकृष्ण) तथा कपिध्वज (अर्जुन) जैसे नर नारायण के बसने योग्य थी वहीं आज ग्राहरिपु जैसा खराब राजा राज्य करता है।"

(❀) द्व्याश्रय काव्य के द्वितीय सर्ग मे श्लोक स. ५९ से ६५ तक मूलराज, जम्बुक और जेहल का सम्वाद बहुत ही रोचक शब्दों मे निगुम्फित है। प्रो मणिलाल नभु भाई द्विवेदी ने इसका गुजराती में अनुवाद किया है, उसी का हिन्दी भाषान्तर यहाँ दिया दिया जाता है।

"मैने ही ग्राहरिपु को गद्दी पर बिठाया है, परन्तु कुलग्न में जन्म लेने के

अन्तःपुर में खींच ले जाता है। यह बर्बर मनुष्य गिरनार के पर्वत पर भटकता रहता है और प्रभास के हरिणों की शिकार करता है। वह गोमांस का भक्षण करता है, मद्य पीता है और युद्ध में भूतों, पिशाचों और उनके गणों को शत्रु का रुधिर पिलाता है। पश्चिम देश के राजा

कारण वह निर्लज्ज, परिव्राजकों का हिंसक हो गया है। इसीलिए पूछता हूँ कि मैं उसका नाश किस रीति से करूँ? क्योंकि मैंने स्वयं जिसको स्थापित किया है उसी का उच्छेद करके विनाशक कैसे बनूं? कोई भी सात्त्विक पुरुष ऐसा कैसे कर सकेगा? (ग्राहरिपु के) वध्यत्व और अवध्यत्व का प्रश्न उपस्थित होने पर (मेरा) क्या कर्त्तव्य है? यही मैं तुम से पूछता हूँ, सो विचार कर मुझसे कहो।"

"भीति के अस्थान और बुद्धि के परम धाम, शत्रुओं के सहारकर्त्ता, हे महाशय जम्बुक! तुम बृहस्पति के समान हो, और हे जेहल! तुम शुक्र के समान बुद्धिमान् हो, अतः एक क्षण का भी विलम्ब मत करो और जो योग्य (उचित) बात हो वह कह दो।"

तब जेहल बोला "चर्मण्वती नदी का सृजन करने वाले (बहुत से यज्ञों के विधायक रन्तिदेव) सदृश. तथा रुमण्वान् (पर्वत) के समान अति उन्नत, और कृत्तिवान के समान परम धार्मिक! हे समस्तभूपतियों द्वारा (घुटने टेक कर) नमस्कृत राजा! इस आभीर (अहीर) चक्रीवान् (गधे) को उद्देश्य करके जो आपको (शम्भु ने) आदेश दिया है वह युक्त ही है।

"उदन्वान् (जिनमें पानी है ऐसे) ऋषि के अपत्यों औदन्वतों और (जो पानी में स्थित हैं ऐसे) औदन्वत नामक आश्रमों में रहने वाले ऋषियों से द्रोह करने वाले इस (आभीर) ने सुराष्ट्र देश के राजाओं को मार डाला है और तीर्थपान्थों (यात्रियों) के अस्थिचर्मादिक से समुद्र के किनारे आई हुई प्रभास भूमि को पाट दिया है जो प्रयत्नवान् लोगों के लिये भी अगम्य हो गई है।

"जो सुराष्ट्र भूमि श्रीविष्णु के कारण राजन्वती (अच्छे राजा से युक्त) थी उसीको, दम्भि नामक अस्त्रवाला होने से ऊर्मि सहित के समुद्र समान भयङ्कर दिखाई देने वाले और कृमिरोग वाले के शरीर की गरमी के समान जिसके शौर्य का ताप दुख देने वाला

इस ग्राहरिपु ने बहुत से उत्तर व दक्षिण के राजाओं को रथ छुडा कर भगा दिया है और अब ऊँचा मुह करके चलता है मानों स्वर्ग को ही जीतने की इच्छा करता हो। ग्राहरिपु यमपुरी के स्वामी यमराज के समान विकराल शरीर वाला है। उसका स्वभाव भी वैसा ही उग्र है और ऐसा प्रतीत होता है मानो वह समस्त पृथ्वी को ही निगल जायगा अथवा स्वर्ग को झपट लेगा। इसके राज्य में जो कारीगर लोग हैं वे उग्र

है ऐसे, इस राजा ने निकृष्ट राजा से युक्त बना दिया है।

"हाथ मे यव लिए हुए मुनियों से उनकी गौओं को, माहिष्मतीपुरी के ईश (कार्तवीर्य-सहस्त्रार्जुन) के समान, हरने वाला, वृषभ जैसे कन्धों वाला, भानुमति के पति (दुर्योधन) जैसा यह ग्राहरिपु रूपी दुष्ट राजा गरुडध्वज (कृष्ण) और कपिध्वज (अर्जुन) के वसने योग्य वामनस्थली मे रह रहा है।

"रात्रि में आक्रमण करने वाले, रात्रि में जो सोना (निद्रा) नहीं जानता, जो उग्र-बाहु है और जो आसन डाल कर बैठना नहीं जानता ऐसे ग्राहरिपु के होते हुए भी, बीस भुजाओं वाले रावण का भाई विभीषण चिरायु होने के कारण तीर्थों मे भ्रमण तो करता है, परन्तु मुझे लगता है कि (इस दुष्ट राजा के कारण) प्रभासतीर्थ में महीना डेढ महीना रहने की इच्छा होने पर भी वह यहाँ ठहर नहीं सकता।

"जो हृदय से ही दुष्ट है, जो लोगो के हृदय में सालता रहता है, जो रावण से भी चौगुणा अथवा अठगुणा ओछा (क्षुद्र) है और जो समुद्र के जल से भी नहीं अटकता (रुकता) ऐसा यह (राजा) खून पीने वाले (राक्षसों) को शत्रुओं का लहू पिला कर प्रसन्न रखता है।

"और (डर के मारे) निकल पडते हुए लींडों तथा आँतों वाले शत्रु के हाथियो के समूह को यमके दाँत के समान अस्त्रों से मारता हुआ, मद्यपानादि के समान रक्तपान से, तथा जिनमें से विष्टा निकल पडी है ऐसी अन्त्रावलियों से पिशाचियों को यह राजा तृप्त करता रहता है।

"तीर्थयात्रियों के शत्रु इस ग्राहरिपु ने व्याघ्रपादि ऋषि का, जिनकी दृष्टि निरन्तर नासाग्र पर स्थित रहती है, जिनका मन सदैव द्विपद्यादि छन्दों की रचना में

दुष्ट के संग के कारण कला को ऐसे ऐसे शस्त्र बनाने में काम में लेते हैं कि उनकी चपेट से कोई बच नहीं सकता। उसको अपने धर्म अधर्म का विचार नहीं है। उसके पास सेना बहुत है और इसलिए सभी राजा उसको नमस्कार करते हैं। वह बहुत धनी है—उसने सिन्ध के राजा को पकड़ लिया और दण्ड में उससे हाथी घोड़े छीन लिए। इसी प्रकार उसने और भी बहुत से राजाओं को दबा लिया है। मेरा विश्वास

रत रहना है और जो मनुष्य मात्र के हितचिन्तन में निरत रहते हैं उनका नाक हिलाकर और अनुचित वचन कह कर, तिरस्कार किया है।

"मनुष्यमात्र के प्रति दुष्टता करने वाले, बुद्धिहीन तथा कुटिल कर्म करने वाले, चतुर्थांश लेने की प्रतिज्ञा करके लोगों से सम्पूर्ण भाग छीन लेने वाले इस दुष्ट के कारण क्या धर्म विपत्ति में नहीं पड़ गया है ?

"पश्चिम दिशा का स्वामी यह ग्राहरिपु, दक्षिण तथा उत्तर दिशा के राजाओं को पशुओं के समान अपने आगे आगे पैदल चलाता हुआ अहकार में भरकर हृदय और चक्षुओं को ऊंचे से ऊचे रखता हुआ मानो स्वर्ग के ही मार्ग पर जा रहा हो इस तरह, अधर चलता है।

"बहुत से विद्वानों के होते हुए भी केवल पापियों की संगति में रहने वाले, मनुष्यों के विषय में धर्मज्ञों के होते हुए भी पाप-ही में रत रहने वाले. अति रौद्र अस्त्रादि के प्रयोग में नैपुण्यप्राप्त इस राजा के चरित्रों को इसके डर से नीचे धसकती हुई पृथ्वी ही जानती है (और कोई नहीं जान सकता है)।

"अति क्रूरता के कारण वरु (वरुण) के समान तथा इन्द्र के वैभव की इच्छा रखने वाले इस युवान् की कुत्ते की पूंछ के समान वक्र बुद्धि, इन्द्राणी का भोग करने वाले इन्द्र के हृदय में कॉंटे के समान सालती रहती है।

"यौवन के मद में श्वान के समान उन्मत्त, स्त्रीलम्पट तथा इन्द्र से अन्यून इस राजा ने अन्य भूपतियों को रुधिराक्त बाणों से मार मार कर उनकी रोती हुई रानियों को अपने अन्त:पुर में रख लिया है।

"सामवेद में (रथन्तर और वृहद्रथन्तर) साम के समान वृत्र तथा अर्जुन के

है कि यदि यमलोक का राजा यम भी उसके साथ युद्ध करे तो उसके (यम के) लिए दण्ड देकर छुटकारा पाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। पहाड़ों पर बने हुये किलों और सुरक्षित स्थानों को वह नष्ट कर देता है और समुद्र में भी आ जा सकता है इसलिए उससे बच

समान बली, राजाओं को बन्दी बनाकर रखने वाले, सुन्दर अश्वों वाले, दुष्ट कर्म करने वाले, ऐसे इस पापादिवस रूप राजा के सामने देख कर कौन नहीं झुकता है ?

"शतघ्नी नामक आयुध से हजारों ब्राह्मणों को मार डालने के कारण यज्ञमात्र को बन्द कर देने से पृथ्वी के लिये प्लीहा रोग के समान इस राजा से (डर कर) अपना यज्ञभाग न मिलने से क्षुधातुर हुआ इन्द्र प्रतिदिन इस दुष्ट को पृथिवीपति बनाने वाले विधाता को कोसता रहता है।

"विशालता के कारण दीप्तिमान, मद से घूर्णित, चलायमान और यम से स्पर्द्धा करते हुए, पृथ्वी और आकाश को निगल जाने के लिये तत्पर इसके नेत्र इसी के शरीर के अनुरूप हैं।

"जिस प्रकार इसके भाथे के चपल बाण शत्रुओं के प्रति दौड़ते हैं, उनको दलते (रौंदते) हैं और दूर फेंक देते हैं उसी प्रकार देवता भी जिसको छोड़कर भाग गये हैं ऐसा, स्वर्ग भी देवताओं के पुनरागमन की कामना करते हुए स्वर्ग कहलाने का अधिकारी कैसे हो सकता है ?

"जिस प्रकार कारक अनेक क्रियाओं का कर्त्ता होता है उसी प्रकार वह भी महा महा पापों का हेतु है, स्वतन्त्र है, कुकर्मों का कर्त्ता है, विश्व को अतिशय ताप देता है, दिशामात्र में घूमता है, समुद्र को भी तैर जाता है, दुर्गुणों में लिप्त हो जाता है और तनिक भी भय नहीं खाता है।

"खेल में भी अन्य भूपतियों को भड़काता है, पृथ्वी में से सब द्रव्य खींच लेता है, उस द्रव्य से अधर्म का प्रवर्तन करता है, मुनियों के पास अध्ययन नहीं करता है (इतना ही नहीं) उनकी वृत्ति का भी रोध करता है उनसे सन्मार्ग पूछना तो दूर रहा अपितु उनसे कर ग्रहण करता है।

"रत्नाकर में से रत्नों को निकाल लेता है फिर भी कुबेर के भंडार की इच्छा

निकलने के लिए लोगों के पास एक भी उपाय नहीं है। इस समय ऐसी दशा हो रही है कि जैसे दैव के कुपित हो जाने पर बचने का कोई उपाय नहीं रहता और नष्ट होना ही पड़ता है। पृथ्वी उसके पापों के भार से दबी जा रही है। जिस राजा में पापी के नाश करने की शक्ति हो और यदि वह

करता है, युद्ध में प्रतिपक्षी इससे अपने प्राणों की याचना करते हैं और इसको अपने स्वामी के रूप में स्वीकार करते हैं।

"रावण परस्त्री को हर कर अपने पुर में ले गया था, कार्त्तवीर्य मुनि की गाय चुराकर ले गया था, कंस ने अपनी बहिन के बालकों का वध किया था। क्या इन्हीं तीनों से इस दुष्ट ने सारी अनीति सीख ली है?

"सिन्धुपति को मथ कर गज, अश्व, गाय आदि दंड में ले लिए हैं और इस युक्ति से महीधर परस्पर विपक्षी (विरोधी) हो गए हैं क्योंकि इसने सिन्धुपति अर्थात् समुद्र का मन्थन करके ऐरावत, उच्चैः श्रवा और कामधेनु को प्राप्त करने वाले तथा महीधर अर्थात् पर्वतों के पक्षों का छेद करने वाले इन्द्र के गुण दण्ड के रूप में ग्रहण किए हैं। यह यम को घात करने के लिए प्रेरित करता है परन्तु स्वयं उससे प्रेरित नहीं होता है।

"इसने सैन्य के समूह से पृथ्वी को खेद का, शेषनाग को भार से पीड़ा का और शत्रुओं को यमपुरी का अनुभव कराया है। उन (शत्रुओं) का मांस पिशाचों को खिलाया है।

"बन्दी हुए राजाओं को इसने कठोर वचन सुनाए हैं और उन्होंने इसे दण्ड स्वरूप बड़ी बड़ी रकमें भेंट की हैं। शत्रुओं के शिर पर पैर रखने वाले इस (राजा) के उग्र तेज ने किसको नहीं रौंध डाला (संतप्त किया) है?

"यह उज्जयन्त पर मृगया खेलते समय कुत्तों के झुंड द्वारा चमरी गायों को फड़वाकर उनका मांस (कुत्तों को) खिलाता है और प्रभास के आश्रमों की चीत्कार करती हुई हरिणियों को इसने रंग बिरंगे कुत्तों को खिला दिया है।"

"संसार भर में जो अभक्ष्य वस्तुएं मानी जाती हैं उनका भक्षण करने वाले, अखिल जगत् को कुकर्म में प्रेरित करने वाले इस (ग्राहरिपु) के पास दूत के द्वारा

उसका नाश न करे तो उसको भी पापी ही समझना चाहिए। इसलिए, हे राजन् यदि आप उसको नष्ट नहीं करते हैं तो यह आपका ही पाप है। शिवजी ने आपको इसी लिए आज्ञा दी है कि आप उसे मार सकते हैं। अतः अपनी सेना इकट्ठी करो और शीघ्र ही उसको नष्ट करो अन्यथा वह दिन प्रति

सन्देश भेजने अथवा यहाँ बुलाने का काम नहीं है। पलाण सहित हाथियों की सेना तैयार कराओ और उसको आधीन करने के लिए सेनापति को आज्ञा प्रदान करो।

"जो प्रजामात्र को कुमार्ग पर चलाता है, उसको मृत्यु के मार्ग पर चला देना युक्त है। जो ऐसे कुमार्गगामी को दण्ड नहीं देता है वह उसके पाप से अपने धर्म को भी खो देता है।

"यदि आप इसको दण्ड नहीं दोगे तो यह अपने बल से यम को भी कुछ नहीं गिनेगा (आप जैसों की फिर क्या दशा होगी ?) क्योंकि सत्पुरुषों द्वारा उपेक्षित होने पर दुष्ट लोग किस किस को कष्ट नहीं देते ?

"इस दुष्टनीतिवाले ने (वाह्यचार में जो अनुकूल दिखाई देता है) क्या कभी आज तक आपको प्रसन्नता से देखा है ? इस कपटी का तनिक भी सत्कार मत कीजिये जो न्यायप्रिय हैं वे न्याय के ही सामने झुकते हैं।

"हे नाथ ! रात्रि को आपने जिससे प्रार्थना की है उस नाथ अर्थात् शिव को यदि आप प्रसन्न करना चाहते हो, यदि आप उत्तम यश प्राप्त करने की इच्छा रखते हो, यदि अपने वंशपरंपरागत धर्म एवं स्मृतिप्रेरक धर्म को समझते हो तो आप इस सम्बन्ध में क्रोध पर ही दया करो, क्षमा पर नहीं।

"आपके स्वामी श्री शंभु आपसे कह गये हैं कि आप ही इस पर शासन करने में समर्थ हैं अत इसका वध करने के लिये सैन्य और बुद्धि दोनों को शुद्ध करके तैयारी करो क्योंकि शत्रु की उपेक्षारूपी व्याधि से, उपेक्षा करने वाले राजा को ही नहीं अपितु समस्त राज्य को पीडा होती है।

"पृथ्वी को सन्ताप देने वाले और (प्रजा को) चूसकर खाने वाले इस व्याधिस्वरूप (राजा) का हनन करने के लिए आपको उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। पृथ्वी

दिन बलवान् होता जाता है और अन्त में इतना शक्तिशाली हो जायगा कि आपके किये नष्ट न हो सकेगा।"

इस प्रकार मूलराज ने जेहुल की बात सुनी[१] और फिर देवताओं के मन्त्री के समान बुद्धिमान् अपने प्रधान मन्त्री जम्बुक की ओर इशारा किया। जम्बुक ने कहा :—[२]

को पीडित करने वाले पर्वतगण का पक्षच्छेद करने के लिए इन्द्र को किसने प्रेरणा की थी ?"

"लोकों को पेल (रौंद) डालने वाले को दण्ड न देने वाला राजा समस्त पृथ्वी को पेल डालता है। यदि ऐसा नहीं करना है तो प्रजा को रगड डालने वाले इस दुष्ट को भी रगड डालो।

"जिस प्रकार इन्द्र ने जम्भ का हनन किया, जिस प्रकार जलशायी विष्णु ने मधु को मारा और शम्भु ने पुर नामक दैत्य का नाश किया उसी प्रकार हे राजा! पृथ्वी को पीडा देने वाले इस पापी को आप मारो।"

(१) कितने ही वारइठों का कहना है कि ग्रहारिसिंह आग्रही शिवभक्त था इसलिए जैन लोगों से पूर्ण वैर रखता था। जैन यात्रियों को मार पीट कर लूट लेता था इसीलिए जैन ग्रन्थकारों ने उसके विषय में इतना बुरा लिखा है।

(२) द्व्याश्रय में जम्बुक का वक्तव्य इस प्रकार है: —"वामनस्थली में निवास करने वाले इस (ग्राहरिपु) का एक गाव के घेरे में उज्जयन्तादि दुर्ग है और एक योजन के अन्तर पर समुद्र रूपी दुर्ग है। इस प्रकार के इसके रक्षणस्थान हैं। यह सदा उद्यत रहता है। भात राँधने में जितना समय लगता है उतनी सी देर भी यह नहीं सोता है। इसको साधना सहज कार्य नहीं है।

"गाय दुहने में जितना समय लगता है उतने से समय के विराम बिना राजा लोग इसकी सेवा करते हैं। सौ कोस के अन्तर पर बैठे हुए सेनापति को आज्ञा देने की रीति से इसके संहार के लिए आप एक हँसिया से वृक्ष को काटने जैसा (असंभव) प्रयास कर रहे हैं।

"यदि आपको विजय और यश की स्पृहा है तो लोकों पर कोप करते हुए, उग्र

"वामनस्थली, [१] जहां ग्राहरिपु रहत . महा गिरनार की [ग्राहरिपु] से ईर्ष्या करते हुए और द्रोह करते हुए उस दुष्ट का संहार करने के लिए आप स्वयं ही कुपित होकर खडे हों।

"वन की गुफा में से निकलकर जैसे सिंह वनपशुओं के यूथ में से ढूँढ कर उद्दाम हाथी का ही वध करता है उसी प्रकार जगत् का रक्षण करने हेतु आप भी इसके सामने जाने के विचार से पीछे न हटें। इसमें आपकी हलकाई [न्यूनता] होने जैसी कोई बात नहीं है।

"युद्ध में अपराजित, शत्रु से निर्भय, कच्छ का अधिपति, जो जगत् के लिए भयंकर है, म्लेच्छ करद राजाओं का संरक्षक तथा किसी से भी न टलने वाला ऐसा प्रसिद्ध लक्षराज (लाखोजी) उसके साथ सहोदर भाई के समान व्यवहार करता है।

"जिस प्रकार आश्विन की पूर्णिमा से दीपोत्सव एक पक्ष मात्र दूर है उसी प्रकार कच्छ से सौराष्ट्र की दूरी केवल आठ योजन है, इस प्रकार फूल महाराज का कुमार लक्षराज, जो पृथ्वी के समस्त बलशाली राजाओं से बढ कर है, इससे अधिक दूर नहीं है।

"पर्वत के ऊपर, और समुद्र के किनारे रहने वाले जो राजा क्षत्रियत्व धारण करते हैं और जो इसकी आँखों के आगे रहते हैं वे सब इस युद्ध में सम्मिलित होंगे। आप यह न समझें कि एक या दो ही आपके प्रतिपक्षी हैं वरन् बहुत से हैं।

"एक ही मित्र के सामीप्य में एक मात्र दुर्ग में रहने वाले एक राजा को ही जीत लेना कठिन पडता है अत उभय रीति (मित्र और दुर्ग) से सम्पन्न इस (ग्राहरिपु) को मारने में समर्थ, आकाश और पृथ्वी के बीच में इस समय तो, आपके अतिरिक्त और कोई दिखाई नहीं पडता है।

सुराष्ट्र में जो आभीर लोग ग्राहरिपु आदि क्षत्रिय बसते हैं उनके प्रति पराक्रम में अर्जुन को भी अतिक्रांत करने वाले आप जब युद्ध के लिए चढाई करेंगे तो उस समय उनकी स्त्रियां 'हे प्राणनाथ! धिग् विधि" इस प्रकार प्रलाप करेंगी। हे प्रभु! ऐसी मेरी कल्पना है।

(सर्ग २ श्लोक १०१ से १०८ का प्रो० मणिलाल नभुभाई कृत गुजराती भाषान्तर का हिन्दी रूपान्तर)

(१) वामनस्थली वही है जो आजकल जूनागढ के पास वनस्थली है। कर्नल

तलहटी में स्थित है जहाँ पर समुद्र का गर्जन भी सुनाई देता है। इस पर भी एक और दुर्ग बना कर दृढ़ता करली गई है। यह दुर्ग एक ओर समुद्र से और दूसरी ओर पर्वतों से सुरक्षित है। ग्राहरिपु ऐसा राजा है कि वह रात को भी आँख मींच कर नहीं सोता है। बहुत बड़ी फौज के बिना उसे जीतना उसी प्रकार असाध्य है, जिस प्रकार घास काटने के हँसिया से बड़े वृक्ष को काटना। उसके नगर के आस-पास कई मीलों तक सेना के लिए छावनी डालना कठिन है, और यदि ऐसा हो भी जावे तो वह उसे घेर कर दूसरी सहायता प्राप्त न होने देगा। कच्छ भी सोरठ के पास ही है, वहाँ का महाराजा लाखा जो फूल [१]

वाकर ने अपने सोरठ के परगना विषयक विज्ञापन मे लिखा है कि सोरठ के असली राजाओं का प्रथम गृहठांण (राजस्थान) वनस्थली में ही था।

(१) कच्छ के जाडेचों के भाटने इस प्रकार लिखा है :—"कच्छ वागड़ के कथकोट में समा (जाडेचा) राजा जाम साड राज्य करता था। उसको गेडी (घृतपदी) के सोलकी धरण ने अपना बहनोई जानकर पास रखने के लिए एक पहाड़ी बता दी जिस पर कण्ड योगी तपस्या करते थे। परन्तु साड ने वहाँ पर कोट खिंचवा कर अपनी सत्ता बढाना शुरू कर दिया इसलिए धरण ने उसको जीमन में बुलाकर मार डाला (ई० स० ८४३)। उस समय धरण की बहन के फूल नाम का एक कुंअर था। सोलकी राणी ने यह समझ कर कि धरण फूल को भी मार डालेगा इसलिए उसे अपनी फरक नाम की दासी (खवासिन) को सौंप कर वहाँ से भगा दिया। धरण ने भी उसका पीछा करने के लिए आदमी भेजे। उन आदमियों को पास आते देखकर फरक ने तुरन्त अपने लड़के के कपडे तो फूल को पहना दिये और कुंवर के कपडे अपने पुत्र को पहना दिये और पास आते ही उसे (अपने लड़के को) सौंप दिया। उन मनुष्यों ने उसे फूल समझ कर तत्काल मार डाला। उनके चले जाने के बाद फरक, सिंध के रण के पास बॉमणसर के राजा परमार सोढा घलूरा के गांव में जाकर कराड़ जाति के बनिए के घर दासी बन कर रही। बनिऐ के अज और अणगोर नाम के दो भाई थे और इनके वोलाटी नाम की एक बहन थी। फरक

का पुत्र है, किसी से जीता नहीं जा सकता और ग्राहरिपु से उसका ऐसा मेल है मानों वे दोनों एक ही माता के पुत्र हों। ससार को भयभीत करने वाले और भी बहुत से जगली राजा उसके सहायक हैं। हे महाराज! यह बात प्रसिद्ध है कि जो शत्रु पर्वतों, घने जगलों और समुद्र से रक्षित है उसे जीतना कठिन है। इस ग्राहरिपु के ये तीनों ही

इनके यहां दासी का काम करती थी और फूल उनके ढोर (पशु) चराया करता था। बनियों के ढोरो (पशुओं) के साथ साथ वह एक लोहार की गाय भी चराता था, जिसकी मजदूरी में उसने लोहार से एक साग (बरछी) बनवाली थी। इसके बाद स्वभावतः वह शिकार का शौकीन हो गया। एक बार सोढा घलूग सिंह का शिकार करने निकला, उसके साथ फूल भी गया था। उस समय ऐसी घटना हुई कि घलूरा ने जिस सिंह पर वार किया था उसने छलाग मार कर सोढा का हाथ पकड लिया परन्तु फूल ने उसी समय उछल कर सिंह के साग मार दी और उसको मार डाला। उसके इस पराक्रम को देखकर घलूग बहुत प्रसन्न हुआ और पूछताछ करने पर जब उसके जन्म की सच्ची कथा मालूम हुई तो उसके साथ अपनी पुत्री बाछा सोढी का विवाह कर दिया।"

प्रबन्धचिन्तामणि में मेरुतुंग ने फूल के 'लग्न' सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है:—"प्राचीन काल में कीर्तिराज नाम का कोई परमार राजा था जिसके कामलता नाम की एक सुन्दर लडकी थी। एक दिन सायंकाल, वह अपनी सखियों सहित किसी प्रासाद में खेल रही थी। खेल में सखिया खम्भों को पकड पकड कर 'यह मेरा वर' 'यह मेरा वर' इस तरह कह रही थीं। उसी समय फूल नाम का एक ग्वाला किसी तरह वहां जा पहुँचा और एक खम्भे का सहारा लेकर बैठ गया। संयोगवश अँधेरे में उसके हाथ लगा कर कामलता ने कह दिया "यह मेरा वर।" फूल तो शरमा कर वहा से चल दिया परन्तु राजकुमारी ने उसे पहिचान लिया और मन में सकल्प कर लिया कि यही मेरा पति हो सकता है।

एक वर्ष बाद कामलता के विवाह की बात चलने लगी तब, उसने अपने माता पिता से सब वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी कह दिया कि "फूलडा ग्वालिया के सिवाय

सहायक मौजूद हैं, इसलिए इस बार और किसी पर भरोसा न करके आप स्वयं ही उस पर चढ़ाई करके विजय प्राप्त करें। यद्यपि ये ग्वाल जाति के वीर और किसी के द्वारा नहीं दबाये जा सकते परन्तु वे आपकी चढ़ाई होते ही थर थर काँपने लग जावेंगे और उनकी स्त्रियां विधवाओं के समान शोक भरे गीत गाने लग जावेंगी।"

सब पुरुष मेरे पिता व भाई के समान हैं।" लड़की का आग्रह देखकर उसके माता पिता ने फूल के साथ ही उसका विवाह कर दिया। फूल से कामलता के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम लाखा था जो अब भी "लाखा फूलाणी" के नाम से प्रसिद्ध है। कालान्तर में वह कच्छ देश का अधिपति हुआ। मालवे का राजा यशोराज, भैरव के प्रसाद से महा समर्थ और अजेय राजा हुआ। उसने ११ बार मूलराज की सेना को हरा दिया था। एक बार वह कपिलकोट (केरा के कोट) के दुर्ग में था (जो आजकल भुज परगने में केरा नामक गाव में है)। मूलराज ने भेद पाकर उसको घेर लिया। उस समय लाखा भी वहीं था और उसने अपने शूरवीर भृत्य माहेच का स्मरण किया। उस समय माहेच अन्य देशों को विजय करने गया हुआ था। मूलराज ने उसको आने से रोकने का प्रयत्न किया परन्तु वह शस्त्र छोड़ कर खाली हाथ अपने राजा से जा मिला। उस समय दोनों (लाखा व मूलराज) में द्वन्द युद्ध चल रहा था। इस प्रसंग पर उसने लाखा को ललकारा :—

"उग्गा तावि्उ जहिं न किउ, लक्खउ मगार निघट्ठ।
गणिया लब्भद दीहडा के दहक अहवा अट्ठ॥"

(रवि का प्रकाश प्रकट होते ही यदि अरितम (अन्धाकार रूपी शत्रु) का नाश नहीं हुआ तो "लाखा" नाम के साथ अधमता का अतिशय दोष लग जावेगा।)

अपने नगर को लौटने के लिए निश्चित दिन से आठ दश दिन पहले से ही माहेच ने बहुत से शौर्यगर्भित वचन कह कर लाखा को उत्तेजित किया था, परन्तु मूलराज के शरीर में रुद्रकला का प्रवेश हो चुका था इसलिए उसने लाखा को मार डाला।

इन युद्ध-विषयक मन्त्रणाओं से उत्तेजित हुए मूलराज के हृदय में युद्ध के लिए जलती हुई उत्साह रूपी अग्नि को ईन्धन मिल गया और सूर्य की किरणों की गर्मी से पूर्व विकसित पुष्प के समान देदीप्यमान वह सिंहासन से उठ खड़ा हुआ। अपनी भुजाओं को इस प्रकार ठोकता हुआ, मानों युद्ध में ही संलग्न हो, वह अपने प्रमुख योद्धाओं के साथ मंत्रशाला से बाहर निकला।

शरद् ऋतु आ पहुँची, पृथ्वी घनी फसलों से ढक गई, नदियों और तालाबों का जल निर्मल हो गया, बादलों से रहित आकाश स्वच्छ दिखाई पड़ने लगा, पूर्ण विकसित कमलों का रंग कवि को प्रिया के सुन्दर अधरों की याद दिलाने लगा। सोरठ के किनारे पिछड़ी वर्षा की बूँदें मोतियों के रूप में पड रही थीं। [१] जिन हंसों ने वर्षा ऋतु में हिमालय की झील (मानसरोवर) पर जाकर निवास किया था, वे अब फिर गंगा तथा अन्य नदियों पर लौटने लगे थे। पके हुए धान के खेतों की रखवाली करती हुई किसान स्त्रियों ने अपने गीतों से वन को मुखरित कर दिया था। इन्हीं दिनों, देव मन्दिरों में वेद-पाठ और चण्डी-पाठ करते हुये, कुम्भ स्थापित करके व्रत और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, ब्राह्मणों ने नवरात्र व्यतीत किये और दशहरे के दिन पारण करके मन्त्रित कुम्भ के जल से राजा के शिर पर अभिषेक किया। वैकुण्ठपति के उत्सव होने लगे और मन्दिरों पर ध्वजाये फहराने लगी। बलिराजा और वामन की कथा के स्मरण से भूतल पर आनन्द छा गया और महाविष्णु अपनी क्षीरसमुद्र की लम्बी समाधि से जाग उठे।

---

(१) कुछ लोगों का कहना है कि जब पिछली वर्षा बरसती है तब कालू मछलियाँ (Oystes) दौड कर किनारे पर आ जाती हैं और मुँह फाड देती हैं। जो बूँदे उनके मुँह में पड जाती हैं वे मोती बन जाती हैं।

मूलराज के द्वार पर नगारे बजने लगे और नौबतें गड़गड़ाने लगीं, शुभ शकुनों के सूचक शंखनाद होने लगे और विविध वाद्यों के घोर नाद ने स्वर्ग तक पहुँच कर सूचना दी कि वह राजा अपने योद्धाओं का अग्रेसर बनने को उद्यत है। सोरठ पर चढ़ाई करने के लिए आतुर, अणहिलवाड़ा के झंडे के नीचे चलने वाले राजा लोग अपनी अपनी सेनायें लेकर उमड़ पड़े। राजा सिंहासन पर विराजमान हुआ, गायक गान करने लगे और उसके दोनों ओर खड़े होकर सेवक पंखा झलने लगे—सामने ही विजय और आनन्द के चिन्ह स्वरूप मोतियों से स्वस्तिक [१] पुराये गये। जन्म से ही ज्योतिष का अभ्यास करने वाले ज्योतिषियों ने शुभ मुहूर्त निकाला। कुलगुरु ने हाथी और घोड़ों का

卐 (१) यह चिह्न हिन्दुओं में आनन्द का प्रतीक माना जाता है इसलिए "स्वस्तिक" (मंगलकारी) कहलाता है। स्त्रियों की "सही" का तो यह साधारण चिह्न है। जैनों के सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व का भी यही चिन्ह था। असल में यह हिन्दुस्तान और चीन के धार्मिक साधुओं का मुख्य चिह्न था। संभवतः वहीं से इसने छठी शताब्दी में यूरोप मे प्रवेश किया। देखो (Asiatic Research, Book IX p. p 306) चीन की पन्द्रहवीं शताब्दी की एक हस्त लिखित लिपि में इस चिन्ह का नाम फैलट (Fyloft) लिखा है, मिस्टर वैलर (Waller) ने लिखा है कि प्राचीन ईसाई पादरियों की कब्रों पर यह चिन्ह बनाया जाता था। १०७७ ई० में बनी हुई एक पादरी की कब्र पर ऐसा चिन्ह पाया भी गया है। रिचार्ड द्वितीय के गद्दी पर बैठने से पहले पीतल पर बनाये जाने वाले शृंगारिक काम में साधारणतया यह चिन्ह बनाया जाता था। देखें (Monumental Brasses and Slabs by Rev. Charles Boutell, M. A., Oxford Parker 1847, Foot Note to page 28)

पूजन करवाया और राजा ने उनको प्रणाम किया। अन्त मे, छड़ीधारी चोवदार आगे बढ़ा, अपने अपने शस्त्र लेकर सैनिक, द्वार के आगे कतारों में खड़े हो गये और फिर वाद्य बजने लगे। ज्यों ही राजा सिंहासन से उठा कुलगुरु ने आगे बढ़ कर 'जय जय' शब्द का उच्चारण करते हुये तिलक किया। प्रस्थान के समय मूलराज और उसके सुभटों ने ब्राह्मणों और यशोगान करने वाले भाटों को दान दिया। पर्वत के समान विशाल और उच्च काले हाथी पर सवार होते हुये राजा ने अपने कुलदेवता को नमस्कार किया। सिर पर मेघाडम्बर छाया हुआ था, प्रस्थान करते ही घोड़े हिनहिनाने लगे, सभी ओर से शुभ शकुन होने लगे, महलों से नगरद्वार तक का मार्ग केसर कुंकुम के जल से छिड़क दिया गया था। 'तुम्हारी जय हो! तुम्हारे शत्रु दक्षिण दिशा में यमलोक को जावे' इस प्रकार ज्योतिषियों ने आशीर्वाद दिया। ज्यों ज्यों सवारी आगे बढ़ने लगी त्यों त्यों नगर में भीड़ भी अधिकाधिक होने लगी। लाल (कसूमल) वस्त्र पहने हुये और आभूषणों से जगमगाती हुई स्त्रियाँ मार्ग में एकत्रित होने लगीं, भीड़ भाड़ में पुष्पों और मोतियों के कितने ही हार टूटने से सड़के पुष्पों और मोतियों से भर गई थीं। जब सवारी बाजार से निकली तो लोगों ने राजा के सामने फल फूल वितरित किये। नगर की स्त्रियाँ घर का काम काज व बच्चों को रोता छोड़ कर सवारी देखने दौड़ पड़ीं। मार्ग में बहुत दूर तक दूर दूर के ग्रामवासी अपने राजा को देखने के लिए इकट्ठे होते रहे क्योंकि मनुष्यों में मूलराज रूप, गुण और सत्ता मे देवराज इन्द्र के समान शोभायमान था।

अणहिलवाड़ा का राजा बड़ी भारी सेना लेकर आ पहुँचा है, [१] यह

---

(१) द्व्याश्रय में इसका वर्णन इस भांति लिखा है:—

ग्राहरिपु ने मूलराज के शिविर में द्रुमास नामक दूत को भेजा। उसने वहाँ

सुन कर ग्राहरिपु ने अपनी सेना इकट्ठी की। उसके पक्ष के राजा लोग,

---

पहुँच कर विवेकपूर्वक कहा :—

"शौर्य में अर्जुन के समान ! हे न्याय विरुद्ध आचरण करने वालों पर शासन करने वाले ! आपके यहाँ पधारने का कारण जानने की प्रबल इच्छा रखने वाले सूर्य समान ग्राहरिपु ने आपकी सेवा में मुझ द्रुपास को भेजा है।

"ऋगयन का पाठ करने वाले, दुष्ट नासिका वाले, अन्त (प्रान्त) के वनों में बसने वाले और हमारे आम्रवन तथा इक्षुवन को उखाडने वाले ब्राह्मणों ने झूंठी बातें बना कर क्या आपको चलित कर दिया है ?

"खदिरवन, आम्रवन, द्राक्षावन, शालवन, प्लक्षवन, शरवन और शिग्रुवन आदि इन सभी वनों में रहने वाले हमारे राजाओं ने क्या आपका कोई अपराध किया है ?

"हमारे शिग्रुवन में, अथवा बदरी आदि वनों में, जैसे बोरडी के होते हैं वैसे कण्टक तो आपके लगे नहीं हैं ? उड़द के वन को ढूँढता हुआ मनुष्य कदाचित् नीवार के वन में उड़द के वन को नहीं पाता है।

"नीवारवन, तथा पुष्पित विदारी वन, सुरदारुवन, इरिकावन आदि में मृगया के लिए अथवा गिरि नदी के वेग से (जम्बुमाली का) सुन्दर जल पीने के लिए आप पधारे हैं ?

"अथवा, जल के स्थान पर मधु पीने वाले, हाथ में मद्य के प्याले लिए हुए यदुओं ने आपको भर (बहका) दिया है ? परन्तु हाथ में मद्यपान के प्याले लिए रहने वाले दारूडिया (शराबी) सोरठियों का इसमें क्या दोष है ?

"अथवा, धनुर्धारियों के वाहन, उसके वीरों को ले जाने वाले वाहन आदि से अति प्रशस्त समुद्र जैसे, तथा हाथियों के वाहन वाले जलाधिप (कच्छभूपति) तो, जो हमारा आश्रित है, आपको शरद् ऋतु के अपरान्ह के समान पीड़ा नहीं देता है ?

"तीन तीन अथवा चार चार वर्षों से चले आ रहे शत्रु-विग्रह को शान्त करने के लिए आप पधारे हैं ? परन्तु चार व तीन वर्ष के जवान घोड़ों वाला यह (ग्राहरिपु) शत्रु से अपराजित है। क्या किसी अतिगर्विष्ठ समुद्रतटाधिपति को जीतने के लिए आप पधारे हैं ? रिपु के सघ को संहारता हुआ बाणों के समूह सहित पृथ्वीभार

जो उसके मित्र अथवा आधीन थे, वे सब उससे आ मिले। बहुत से

पर घूमता हुआ यह उसको कैसे नहीं जीत लेगा ?

"अथवा, समस्त पृथ्वी में भ्रमण करने वाले इस क्षत्रियकुमार से इस शरद ऋतु के दीर्घ दिवसों में (मिलने की) उत्कण्ठा लेकर आप पधारे हो ? (यदि ऐसा है तो) बहुत उत्तम है, आज हमारे पुण्य परिपक्व हुए और हमारे सभी शुभ कार्य सफल हुए।

"यदि वृषभवाहन (श्री सोमनाथ) के दर्शन करने हेतु अति उग्र इच्छा वाले समस्त नृपतियों सहित आप पधारे हो तो सुराष्ट्र के इन्द्र को किसी चतुर प्रधान द्वारा शुभ सूचना क्यों नहीं भिजवाई ?

"क्या आप शङ्खोद्धार से, परिपक्व शेलड़ी (मेव) के रस के समान मिष्ट, तीर्थजल ले जाने की इच्छा करते हैं ? यदि ऐसा है तो आपको नमस्कार करके मैं भी वहाँ लौट जाऊँ और जल भिजवा दूँ। आप वनों का नाश न करें।

"अन्याय से दूर रहने वाले आप, उत्तम घोड़ों और नायकों वाली सेना लेकर, व्यर्थ ही नहीं चले आए हैं। परन्तु, अन्तस्तल में रहने वाली मैत्री एक बार उत्पन्न हो जाने पर प्राण जाते भी मिटती नहीं है।

"यह (ग्राहरिपु) चारों दिशाओं में अपनी सेना को घुमाता है, जिसके पास से यह लेता है उसके पास इसके द्वारा लिए हुए से अधिक कुछ नहीं रहता है, भयभीतों का रक्षण करता है, शत्रुओं का नाश करता है—ऐसी दूत की वाणी सुन कर आप ईर्ष्या क्यों करते हैं ?

"शत्रु का संहार करते हुए (वह) उसके यशमात्र को पी जाता है और अपने सामने नमन करने वाले को लक्ष्मी प्रदान करता है, न्याय व्यवहार को पूर्ण रीति से समझता है। ऐसे, गरजते हुए हाथियों से युक्त सेना वाले ग्राहरिपु की मैत्री का आप नाश न करेंगे।

"जिसने अपने शत्रुओं को निरन्तर जागृत रहने वाले और शान्त कर दिया है ऐसे, ग्राहरिपु की धन धान्य से पूर्ण पृथ्वी चिरकाल से वृद्धि को प्राप्त हो रही है। मैत्री और विपुल रेणुसमूह को उडाते हुए आप अपने सैन्य को क्यों नुक्सान पहुँचाते हैं ?

जंगली भील भी उसके साथ थे। उसकी नीली तथा अन्य रानियों के

"अथवा जिसको स्पष्ट न कह सकते हों ऐसा आपके मन में कोई छल है तो मेरे कहने सुनने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपको उत्तर देने की भी कोई जरूरत नहीं है। अब तो केवल यमराज ही इसका बदला चुकाने के लिए आपका शत्रु बन गया है।

"हमारी कीर्ति को आच्छन्न करने की इच्छा करके हमारे कोप को उबाल (उद्दीप्त-कर) देने का कृत्य आपने किया है। इसीलिए आपको उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपकी हकीकत मैं अपने मन में अच्छी तरह जान गया हूँ, वही अपने स्वामी को कहने के लिए मैं यह चला।"

ऐसा कह कर दाहिनी ओर से मानों प्राण जा रहे हों इस तरह वह दूत बोलता हुआ अटक गया। मानों उसको जीवित रखता हुआ ही राजा मूलराज इस प्रकार बोलाः—

"इन सब जीवित मनुष्यों में जीवित ! इस प्रकार कहने वाले ! तू सब जीवितों में खरा जीवनधारी है।

"तूने अपने स्वामी का पक्ष सम्यक् रीति से प्रतिपादित किया है और ऐसा करके तूने अपना धर्म पूरी तरह निभाया है क्योंकि यदि पृथ्वी फट भी जाय तो भी ऐसा बोलने पर तुम्हारा वध नहीं किया जायगा यद्यपि वध हो जाने का भय मेरे हृदय में है।

"इसको तुरन्त ही मार डालूं, भीतर ही मार डालूं, भीतर ही मार डालना चाहिये, बहुत से मिल कर मार डालें, हम दो ही इसको मार डालें, इस प्रकार तुझे मार डालने की इच्छा रखने वाली नृपमण्डली के होते हुए भी तू इस सभा में इस तरह बोल सका है इसलिए निश्चय ही बड़ा वीर है।

"अपने स्वामी के कार्य का पक्षपातपूर्वक स्थापन करते हुए लेश मात्र भी भय न खाकर तेरे समान, मद्यपान के कारण अतिनिन्द्य (तुम्हारे) देशवासियों में से, अनिन्द्य और आगे की बात जो नहीं कही गई है उसे, कौन कह सकेगा ?

"तेरा स्वामी बुद्धिहीन होकर अपनी जाति को ही, हीन करने वाला है, हमने आक्रमण किया है इसमें वह अपनी जाति को चढाई करने योग्य क्यों नहीं समझता है ? अथवा हमारी चढाई के कारण उलटा उन्हीं को भय क्यों दिखाता है ?

पुत्र, जो सोरठ की प्रसिद्ध नदी "भादर" के किनारे बसते थे, कवच

"कुटिल धनुष वाले इस पापी ने तीर्थयात्रियों के गमन का रोध किया है इसलिए इसको शिक्षा देने के निमित्त इस पर आक्रमण करना योग्य है।

"पाप करने वाले दुराचारी को यदि अकोप रह कर मैं देखता रहूँ तो मेरे द्वारा अवश्य ही रक्षणीय इस पृथ्वी का रक्षण किस प्रकार हो सकता है ?

'ब्राह्मणों की हिंसा करने वाले इस राजा पर मुझे अवश्य ही शासन करना योग्य है क्योंकि इसके जैसे हिंसक राजा के आगे तो हिंसक पशु भी दूर भागते हैं (लज्जित होते हैं)।

"धर्म कर्म से परिवर्जित, अत्यन्त पीडा से थर थर कापते हुए अपने गोत्राभिधानादि को भी जो भूल गये हैं तथा निरतेज हो गये हैं ऐसे ब्राह्मणों के स्थानों को नष्ट करके इसने उनको क्या क्या पीडाए नहीं पहुँचाई हैं ?

"दुष्ट कर्म की इच्छा रखने वाले इस राजा के परदारगमनादि अपवित्र और जो कहीं भी प्रकाश न करने योग्य कुकर्म हैं वे अति प्रबल हो जाने से हमारे मन में अतिचिन्ता के कारण बन गये हैं। अत. यह हमारी मैत्री के लिए नितान्त अयोग्य है।

"परमपावन और लक्ष्म्यादि से सम्पन्न प्रभास तीर्थ को अनेक प्रकार से त्रास पहुँचाकर तथा वहा पर गये हुये लोगों को मार डालने की प्रणाली द्वारा अपनी दुष्टता के कारण इसने कीर्ति की इच्छा रखने वाले लोगों को नष्ट कर दिया है।

"इसने सुराष्ट्र के अन्तर्भाग में यात्रा का मार्ग बन्द कर दिया है इसलिए इस मार्ग को खोलने के निमित्त घी पी पीकर मस्त हुए इसको इसी देश में मार देने का दण्ड क्यो न दिया जाय ?

"यज्ञकर्ता ब्राह्मणों को उन्हीं के द्वारा इकट्ठे किए हुए सूखे छाणो (कण्डों) से मार मार कर हर्षित होकर यह नाचता है, ऐसे निर्भय होकर तलवार नचाने वाले राजा के किसी दूसरे दुष्कर्म को कैसे देखा जा सकता है ?

"गर्भ के भार से झुके हुए पेट के कारण भागने में अशक्त हरिणियों पर शस्त्र चला कर इसने प्रसिद्ध उज्जयन्त तीर्थ को उनके रुधिर से प्लावित और दुर्गन्धयुक्त

पट्टन कर आ पहुँचे। कच्छ का राजा जाम लाखा भी जो उसका मित्र था

कर दिया है। किसी म्लेच्छी के पेट से जन्म ग्रहण करने वाले जैसा, यह हमारा मित्र कैसे हो सकता है ?

"डर कर भागती हुई एक मछली को दूसरी मार डालती है और उसको तीसरी खा जाती है, यही मात्स्य न्याय चलता रहता है, इसलिए हमारी अर्गलातुल्य भुज के सुदृढ परिघ की और क्या कामना हो सकती है ?

"लूफिड ऋषि, जो सब योगविदों के गुरु थे, जो पृथ्वी मात्र को अपना पलंग बना कर रहते थे और जिनको अष्टांग योग सिद्ध थे उनको इसने पीडित किया है तथा उनके स्त्री पुत्रादि को भी पीड़ा पहुँचाई है, ऐसे, रात दिन क्रोध से जपापुष्प के समान लाल आंखे रखने वाले इस पाप के पलंग (आधार), को मैं कैसे सहन कर सकता हूँ ?

"यह, उछलती हुई, शत्रु के रुधिर रूपी जपापुष्प से पूजित, विजयवती और आठों दिशाओं में प्रकाश फैलाती हुई, यमराज की सगी बहिन, मेरी बलिष्ठ और पूर्ण रूपेण हनन करने वाली तलवार आज इसको खा जाने के लिए भूखी हो गई है।

"जिस प्रकार सूर्य को धारण करती हुई, रात्रि को पार करके पूर्व दिशा तमोरूप दुःख से पूर्णतः मुक्त हो जाती है उसी प्रकार इसके द्वारा अनेक रूपों में पीडित प्रजा आज मेरे दर्शन से सब प्रकार की पीड़ाओं से मुक्त हो !

"थोड़े ही समय में इस सुराष्ट्र भूमि का स्वामी बन्दी हो जाय अथवा मरण प्राप्त करे ! और इसमें द्विपदी तथा चतुष्पदी गाते हुए चारणों के समूह घड़े के समान गादी वाली गायों के समान सुख से विचरण करें।

"घड़ों के समान गादी (ओधस्) वाली सौ गायें देकर खरीदी हुई तीन तीन वर्ष की जो घोडियां हैं उन बच्चियों को तगड़ी करके रथों में जोतो तथा तीन वर्ष की पुरानी शराब को कोरी छोड़ कर, गले में माला बांधे हुए अश्वों को शीघ्र ही तैयार करो।

" जा, बड़े बड़े राजाओं सहित उन बहुसाम नाम की पुरी के अधीश्वर सहित, सौ राजाओं वाली अथवा हजार राजाओं वाली, सदा साम उपायों से विरहित ऐसी,

सहायता को आ गया। यद्यपि ज्योतिषियों ने लाखा के भविष्य के विषय में कह दिया था [१] कि उसकी मृत्यु युद्धस्थल में होगी, फिर भी वह

और सदा युद्ध के लिए तैयार अपनी सेना को सज्ज करके सीमा पर युद्ध के लिए आवे, ऐसा तेरे स्वामी से कह दे।

इस प्रकार आज्ञा प्राप्त करके दूत अपने स्वामी के पास चला गया और सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर उसने युद्ध की तैयारी कराई।

(प्रो० म० न० द्विवेदी कृत गुजराती भाषान्तर का हिन्दी रूपान्तर)

(१) द्व्याश्रय में जाम लाखाजी के आगमन का वर्णन इस प्रकार है :—

"दो पुरुषों (१) जितने ऊँचे भाले से प्रकाशमान, नीली घोड़ी पर आरूढ और नीलेवस्त्र धारण करने के कारण नीलाद्रिसदृश प्रतीत होता हुआ, रोहिणीपति (चन्द्रमा) के शत्रु (राहु) को दूर छोड़ता हुआ, लक्षराज रेवती (नक्षत्र) में आया।" (श्लोक० ४७ सर्ग ४)

इस पर टीकाकार ने लिखा है कि रेवती में अर्थात् चन्द्रमा जब इस नक्षत्र में था तब आया। लक्षराज की राशि मेष है क्योंकि उसका जन्म अश्विनी में हुआ था और रेवती में चन्द्रमा मीन राशि का होता है, इस कारण वह (रेवतीस्थ) लक्षराज को बारहवाँ (१२ वें स्थान पर) हुआ। इससे अशुभ काल में आने के कारण इसका मरण होगा, यह सूचन किया गया है।

फिर जाम लाखाजी युद्ध में जाने के लिए तैयार हुए, तब कहते हैं —

"अहो! आज का दिवस, चन्द्रयुक्त पुष्य नक्षत्रवाला न होने से ऐसा है, क्योंकि पौष और तैष सब मनुष्यों को सिद्धिदाता है, इस प्रकार गर्गाचार्य की इच्छा करते हुए यादवों के लिए, गर्ग की गरज पूरी करता हुआ लक्षराज तैयार हुआ।" (श्लोक ६० सर्ग ४।)

टीकाकार लिखता है कि "पौष तैष, इससे पुष्य (रेवती) और तिष्य में जन्मा हुआ। ऐसा सम्प्रदायमान्य कथन है कि बारहवाँ चन्द्रमा यदि (पुष्य) नक्षत्र में हो तो सर्वार्थ साधक है।"

---

(१) एक आदमी दोनों हाथ फैला कर पूरी लम्बाई नापे उसको एक पुरुष कहते हैं।

रण में मरण प्राप्त कर वैकुण्ठगमन की ही इच्छा करता था। लाखा कहता था "जिसके युवावस्था के पराक्रम को किसी ने नहीं देखा उसको धिक्कार है। मेरे जीवन का अन्त आ पहुँचा है, मुझे उसका मूल्य किस प्रकार मिल सकता है ?" समुद्रतट का अधिपति सिन्धुराज भी अपने दल बल सहित आया और दक्षिण के मोर्चे पर डट गया।

शीलप्रस्थ का राजा मूलराज की ओर से लड़ने आया। वह बड़ा चतुर धनुर्धारी था। मारवाड़ का राजा अपने लम्बी लम्बी दाढ़ी वाले सिपाहियों के साथ आया। काशी देश का राजा, श्रीमाल का [१] सर्वोत्तम राजा, आबू पर्वत और उत्तर का परमार राजा तथा अणहिलवाड़ा के राजा का भाई राजा गंगामह, ये सभी इस युद्ध मे सम्मिलित हुये परन्तु सोलंकी के पितृव्य [२] बीज और दण्डक ने युद्ध में भाग लेना अस्वीकार कर दिया।

इधर मूलराज की सेना तो चक्र और गरुड़ व्यूह की रचना कर रही थी उधर परम पराक्रमी आबू के योद्धा मुख्य सेना से अलग होकर जम्बु माली[३] नदी के किनारे 'क्ति बाँध कर युद्ध करने लगे और उनके राजा ने बहुत से विपक्षी योद्धाओं को मार कर, विजय के चिन्ह–स्वरूप उनके झण्डे छीन लिए' गुजरात के योद्धाओं ने बहुत साहस दिखलाया। शस्त्रविद्या

---

(१) श्रीमाल को भिन्नमाल भी कहते हैं। वहीं के राजा को अभयतिलक ने अर्बुदेश्वर कहा है, इसलिए श्रीमाल और आबू का राजा अलग अलग नहीं है।

(२) मूलराज का पिता, राज और बीज तथा दण्डक तीनों सगे भाई थे इसलिए बीज और दण्डक उसके सगे काका (चाचा) हुये।

(३) काठियावाड़ में आठकोठ के पास युद्ध हुआ, वहीं पर लाखा फूलाणी और उसके साथियों के पालिए (स्मारक) बने हुये हैं।

में उनकी कुशलता प्रशंसनीय थी। उनके शत्रु असुर, अपनी रक्षा के लिए कवच पहने हुए थे, बड़ी बड़ी ढाले उनके पास थीं[१] और मेघ के

---

(१) द्व्याश्रय में इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार हुआ है —

"मूलराज और ग्राहरिपु का युद्ध आरम्भ हुआ तब पहले मूलराज की सेना ने पराक्रम दिखाया। यह देख कर ग्राहरिपु ने अपनी सेना को उत्तेजित किया और वह क्रोध में भर कर लडने लगा। मूलराज ने अपनी हार होती देख कर शखनाद किया और ग्राहरिपु की तरह स्वय भी हाथी पर सवार हुआ।

"हाथी पर बैठे बैठे ही उस श्रेष्ठ राजा ने पहले क्लेश न पाई हुई शत्रु-सेना को अपने उत्तम अस्त्रों से क्लेशित तथा विह्वल कर दिया।

"इतने ही मे उत्कृष्ट अस्त्रों की वर्षा करता हुआ दैत्यराज (ग्राहरिपु) क्रोध करके उत्तम योद्धा राजकुवर (मूलराज) की ओर आगे बढा।

"हे नुद्रन्नृप ! अब हम में से कौन कठ और कौन उत्स है" इस प्रकार परस्पर आक्षेप करते हुए ये दोनों राजा युद्ध करने लगे। (कठ और उत्स ये शस्त्रभीरु ब्राह्मणों के नाम हैं।)

"जवान हथिनियों की तरह कितने ही घोडों और कितने ही हाथियों के भिडने पर ये दोनों राजा दूर खडे रहे।

"यदि युद्ध में न भिडे होते तो, एक बार व्याई हुई गाय, गृद्धवत्स से दुहानेवाली गाय, बछडों को खाने वाली गाय और वन्ध्या गाय की तरह, पृथ्वीरूपी धेनु का पालन करने वाले ये दोनों (आपस में) प्रहार न करते।

"श्रोत्रिय कठ, कालाप पाठक और कौत्सोपाध्याय, इनकी जिस प्रकार धूर्त कठ वंचना करता है उसी प्रकार सौराष्ट्र (ग्राहरिपु) चौलुक्य (मूलराज) के अस्त्रों के प्रहार से बच निकलता था।

"इस दैत्यश्रेष्ठ ने गूर्जरभूपति पर इस प्रकार गदा फेंकी जैसे गर्भिणी घोडी का गर्भ ही छूट पडा हो।

"युवा होते हुए भी मस्तिष्क को ठडा रखने वाले, बुद्धि में वृद्ध जैसे, पानी-

समान गर्जना करते हुये वे बाणों की वर्षा कर रहे थे, परन्तु अन्त में, जब उनके स्वामी को हाथी पर से मूलराज ने मार गिराया तो वे उसे वहीं छोड़ कर डर के मारे भाग गये।

दार (वली) राजपुत्र (मूलराज) ने हँस कर शक्ति से उस (गदा) को भंग कर दिया।

"तीखा भोजन करने से जिस प्रकार आंखों में पानी आ जाता है उसी प्रकार की अश्रुयुक्त आंखों वाला ग्राहरिपु क्रोध से कपाल पर चढी हुई सलवटों के कारण युवा होते हुए भी झुर्रियाँ पडे हुए मुख वाले वृद्ध जैसा दिखाई दिया।

"बराबर बराबर जुडे हुऐ दोनों हाथों से मानों खाने का अन्न हो ऐसी लीला मात्र से, उसने लोहे के सर्प जैसे दो शंकु पकड कर (मूलराज के ऊपर) फेंके।

"कुमारी परिव्राजिकाओं के शाप के समान दुःसह तथा कुमारी श्रमणाओं के शील के समान तीक्ष्ण तीर से उन शङ्कुओं को चौलुक्य ने तोड़ डाला।

"एक दूसरे को छेदने की बुद्धि से फेंके हुए तीरों से ये दोनों, पत्तियों सहित प्लक्ष और न्यग्रोध के वृक्षों जैसे शोभित होते हैं।

"उन स्निग्ध वाणी और अंगों वालों तथा पीठछत्रोपानहादि धारण करने वालों को, नारद मुनि ने धवखदिरपलाशादि में मे देखा।

"फिर, भौंहें तान कर, रोष से बाकी दाढी करके, भयानक और घायल गर्दन सहित, अति भयानक भुजाओं वाला वह दैत्य वानर की भांति कूद कर, कीर्ति और युद्ध की माता स्वरूप छडी और तलवार लेकर, जिस हाथी पर चौलुक्य बैठा था उस पर चढ गया।

"अति दर्प वाले ये दोनों ही, यमपुत्र के समान, हाथ में छड़ी और तलवार लेकर मानों पिग्राई (भाई भाई) हों इस प्रकार एक हीं हाथी पर लडने लगे।

"स्कन्द कुमार के माता पिता (गौरीशङ्कर) और प्रद्युम्न के माता पिता (लक्ष्मी-नारायण) आज तुझ पर कुपित हुए हैं, ऐसा कह कर चौलुक्य ने उस दैत्य (ग्राहरिपु) को भूमि पर पटक दिया।

उस समय कच्छ के राजा लाखा ने मूलराज को यह कहलाया कि यदि वह उसके मित्र को वापस दे दे तो वह उसका मूल्य चुका देगा

"शिव के सास ससुर के पुत्र (मैनाक) के समान दुर्धर्ष तथा जिसके सास ससुर रोते रह गए थे ऐसे उस दैत्य (ग्राहरिपु) को, कूद कर उसने हाथी के वरत (चमडे के रस्से)से बांध दिया।

"इन्द्र और इन्द्राणी के शत्रु बलि को बाँधने वाले विष्णु का जिस प्रकार इन्द्र और इन्द्राणी ने स्तवन किया उसी प्रकार इस (चौलुक्य) की गर्ग और वत्स कुटुम्ब वाले ब्राह्मण स्तुति करने लगे।

"ग्राहरिपु के पकडे जाने के पश्चात् 'ये गाए, ये बछडे, ये घोडे, ये रुरु (मृग) सब जल्दी से चले जाओ' इस प्रकार कहता हुआ क्रोध में भर कर लक्षराज (लाखा फूलाणी) दौडा।

"वस्त्र, अंगराग और माला आदि, इन सबको श्वेत करता हुआ वह बोला—

"हे मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाले (मूलराज!) आज मैं युद्ध पर चढा हूँ जब कि तेरा चन्द्रमा पुष्य और पुनर्वसु में है (अर्थात् आठवा चन्द्रमा है इसलिए तेरा मरण होगा), ऐसा समझ ले क्योंकि मुझ में और ग्राहरिपु मे, तिष्य और पुनर्वसु के समान, कोई अन्तर नहीं है।

"तू अपने लाभालाभ का विचार कर और अपने मान और कीर्ति के साथ इसको छोड दे, क्योंकि अपने लाभालाभ का विचार करके ही सुखकर अथवा दुःखकर वस्तुओं का ग्रहण किया जाता है।

"घोडे घोडी की तरह इसको बांध कर तू यदि घोडे घोडियों की इच्छा करता है तो तेरे पूर्वजों अथवा अनुवर्तियों ने कभी ऐसा किया हो तो बता, अस्तु यह मैं (अपने मित्र को छुडाने रूपी) कार्य के हेतु इस युद्ध के द्वारा ही बताऊंगा।

"तू ऊपर नीचे क्या देखता है, वहाँ तेरा कौन है? जिस प्रकार पाडा (जवान भैंसा) पाडे से भिड़ता है उसी प्रकार अब मुझसे युद्ध कर।

परन्तु अणहिलवाड़ा के राजा ने इसको स्वीकार नहीं किया। इस पर क्रोधित होकर लाखा मूलराज पर टूट पड़ा, परन्तु मूलराज में तो देव-

---

"फिर, चौलुक्य ने कोप मे भर कर परन्तु वाणी मे दधि और घृत बिखेरते हुए कहा कि जो दधि और घृत के स्थान पर गायों को ही खा जाता है ऐसे दुष्ट को किस प्रकार छोडा जा सकता है ?

"यह पापी कुशकाश के समान है और इसके सहायक राजा भी ऐसे ही हैं, इसको छुडाने की इच्छा रखने वाले एक तुम ही धवाश्वकर्ण (वृक्ष) के समान सारवान् दिखाई देते हो।

"यदि तुम युद्ध करोगे तो यह मेरा हाथ तुमको तिल और उर्द के छिलके की तरह पीस डालेगा, धवाश्वकर्ण (वृक्ष) का भजन करने वाला महावायु तिल और उर्द के कर्षण से कैसे पीछे हटेगा ?

"हरिण के जैसे घोडे सहित यदि हरिण की तरह भाग जाने की इच्छा हो तो अभी भाग जाओ (देर क्यों करते हो ?) यों तित्तिर और कपिञ्जल की तरह टक टक मत करो।

"ऐसा सुन कर-लक्षराज ने अश्वरथादि पर बैठे हुए शत्रुओं को भिक्षुकों अथवा तित्तिर कपिञ्जल से भी हीन समझते हुए अपने हाथ में धनुष लिया।

"बेर अथवा इमली की तरह, अथवा धानी या जलेबी की तरह शत्रु को खा जाने के लिए उसने तीर बरसाना शुरू किया। उस समय वहाँ के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी त्रास से भर गए।

"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रक्षक मूलराज ने भी धनुष को टंकारा और भेरी तथा शङ्ख बजाने वालों ने जयनाद करते हुए अपने अपने वाद्य फूंके।

"माथा और डोक (गर्दन) को बिना हिलाए इसके धनुष की प्रत्यञ्चा ऊँचे स्वर में मानों ऐसा कहने लगी कि अब कठ और कालाप (ब्राह्मण) प्रतिष्ठा एवं उन्नति को प्राप्त हो गए हैं।

"उन दोनों ने अपने वज्रसदृश बाणों से रण में ऐसे मण्डल बना डाले जैसे वाजपेय और अर्काश्वमेध यज्ञों में बनाए जाते हैं।

शक्ति प्रकट हो चुकी थी इसलिए लाखा इस विषम लडाई मे सोलकी के भाले से छिद कर मारा गया। जाड़ेचा राजा को पैरों से कुचलते

"पारस्परिक विरोध को लेकर सर्प और नेवले की तरह भिडते हुए, अनुक्रम से देवता और दैत्यों द्वारा संस्तूयमान वे दोनों युद्ध रूपी संहिता का विस्तार करने के लिए पदक्रम करने लगे।

(सहिता और पदक्रम ये दोनों शब्द द्वयर्थक हैं। सधिपूर्वक लिखे हुए वेदमंत्रों के समूह को सहिता कहते हैं, उनका विग्रह करके जो अंश बोले जाते हैं वे पद कहे जाते हैं तथा उनके बीच बीच में अमुक अमुक प्रकार से जो आवृत्ति होती है वह क्रम कहलाता है। इस प्रकार वेदपाठ के घन, जटा आदि कितने ही भेद हैं। जिस प्रकार वेद संहिता का पद और क्रम से विस्तार होता है उसी प्रकार युद्धकार्य का भी पदक्रम अर्थात् स्थानादि सम्बन्धित तत् तत् प्रक्रियाओं से विस्तार होता है।)

"गूर्जरधरा और कच्छ के स्वामी, इन दोनों ने द्वारकानाथ और कुण्डिनपुर के अधीश (रुक्मिया) के समान शर रूपी भोजों की परम्परा से मानो गगाशोण बहा दिया है।

"वाराणसी और कुरुक्षेत्र रूपी सग्राम भूमि प्राप्त होने पर जिस प्रकार शौर्यपुर और वैतवत के नाथ प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार ये दोनों प्रसन्नता प्राप्त करने लगे।

"दृढता मे गौरी (शङ्कर) और कैलास पर्वत क समान और अंगों में अक्षत ये दोनों सुथार और लुहार का अनुकरण करते हुए परस्पर शस्त्रों का भजन कर रहे थे।

"दही और दूध के समान उज्ज्वल कीर्ति की आकाक्षा करने वाले उन्होंने, बैलों, घोडों, ऊंटों और गधों आदि पर लाद कर बाण आदि ला ला कर सुभटों के पास पहुँचाए।

"जो दश के समीप हैं (अर्थात् नौ अथवा ग्यारह) इतनी सख्यावाले हाथियों जितने बलवान् तथा दधि और सर्पिष् (घी) जैसी आखों वाले लक्ष (लाखा फूलाणी) ने एक भाला उठाया जिसको छ बैल और पाडे लाद कर लाए थे।

"इस (लाखाजी) ने दस हाथी तथा घोडों को कुचलते हुए और दसेक रथों को

(रौंदते) हुये मूलराज ने उसके कण्ठ पर पैर रखा। लाखा की माता ने अपने पुत्र का शव देखा तो हवा में फहराती हुई उसकी मूछ देख कर मूलराज को शाप दिया "तूने मेरे पुत्र को मारा है, तेरे कुल का कोढ़ से नाश हो।" [१]

तोडते हुए अपने चमकते दातों से ओठ को काटते हुये भाले को ऊंचा करके फेंका।

"जिसके षडङ्ग उन्नत हैं (शिर, हृदय, कंधे और पैर, इनका उन्नत होना महापुरुष का शुभ लक्षण माना जाता है) ऐसे चालुक्यराज (मूलराज) ने चारों दिशाओं को कीर्ति से सुवासित और परिपूर्ण करते हुये सर्वसारमय लोहे के भाले से लक्षराज (लाखा फूलाणी) को मारा।

"उग्ररिपु के निग्रह से अपना प्रिय करने वाले इस (मूलराज) पर दो-दो तीन-तीन देवांगनाओं सहित देवताओं ने फूलों की वर्षा की।"

"बालकों को आगे करके ग्राहरिपु की परिणीता स्त्रियों ने पति को भिक्षा के रूप में मांगा था इसलिये मूलराज ने उसकी (ग्राहरिपु की) उंगलियाँ काट कर उसको छोड़ दिया"

"सौराष्ट्र के वृद्ध और बालक उसी समय मे धारण किये हुये स्त्रीवेश (ओढिया कांछडी और घघरा रूपी) के द्वारा राजपुत्र मूलराज के यश का प्रकाश करते हैं।

"इस भूपति मूलराज ने यतियों और ब्राह्मणों को यथार्थ व्यवस्था पूर्वक दुखहीन करके सुसम्पन्न कर दिया।"

"फिर, प्रजा को पुत्र का समान मानने वाला और तेजरूपी अग्नि से सब का हितकारी वह राजा पुत्रजन्म के समान सतोष का अनुभव करता हुआ प्रभास तीर्थ की यात्रा करने गया और फिर अणहिलपुर लौटा।"

(द्व्याश्रय, सर्ग ५ श्लोक ८६ से १२२ के गुजराती भाषान्तर का हिन्दी रूपान्तर)

(१) लूता अथवा कोढ नाम की बीमारी के विषय मे हिन्दुओं का विश्वास है कि जिस मनुष्य से सूर्य भगवान् का कोई अपराध बन जाता है उसके यह रोग हो जाता है। प्रबन्धचिन्तामणि मे लिखा है कि मालवा के राजा भोजराज के दरबार में माग

सोरठ के राजा से मित्रता होने के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसी बातें थीं कि जिनके कारण लाखा और मूलराज में शत्रुता हुई। कहते हैं कि रानी लीलादेवी की मृत्यु के बाद सोलकी राज द्वारका में विष्णु मन्दिर की यात्रा करने गया। [२] वहाँ से लौटते समय वे लाखाफूलाणी के दरबार में गये और वहाँ उसकी बहन रायाँजी के साथ विवाह किया जिसके पेट से उनके राखाइच (उपनाम गगामह) नामका पुत्र हुआ। इतिहासकारों ने जिस दुर्भाग्य की बात लिखी है वह इस दूसरे लग्न के बाद ही हुई। एक बार किसी अन्य वीर की बड़ाई करने के कारण 'राज सोलंकी' को उसके अन्य राजपूत साथियों सहित लाखा ने मार डाला और जाडेचा रानी रायाँजी उसके साथ सती हो गई। मूलराज के काका बीज सोलंकी ने इस झगड़े का बदला लेने के लिए अपने भतीजे को उकसाया। इधर लाखा ने मूलराज से सामना करने के लिए राज के छोटे लड़के राखाइच (गंगामह) को अपने दरबार में रख लिया था। इस

(मयूर) नामक कवि था, उसके यह रोग हो गया था, फिर सूर्य की प्रार्थना करने पर वह मिट गया। सोरठ में बहुत प्राचीन काल से इस देवता का पूजन होता था। हेरा डोटस (क्लिओ) ने पारसियों में भी एक ऐसी ही जाति का वर्णन किया है। "जिस किसी के कोढ अथवा कण्ठमाल रोग हो जाता हैं उसको न नगर में रहने देते हैं और न किसी ईरानी से बात करने देते हैं। वे समझते हैं कि सूर्य को अप्रसन्न करके इस मनुष्य ने यह रोग अपने ऊपर ले लिया है। ज्यू (यहूदी) लोग भी ऐसा ही विचार करते हैं कि अमुक पाप करने से कोढ हो जाता है।)

(२) जो लोग द्वारका की यात्रा को जाते हैं वे यदि आदि, धाम नारायण सरोवर पर न जावें तो उनकी यात्रा सफल नहीं समझी जाती इसलिए राज स्वयं शेरगढ (आधुनिक नारायण सरोवर) गया और वहा से लौटते समय कपिलकोट (केरा कोट) भी गया था।

प्रकार इन राजनैतिक कारणों ने भी मूलराज को लाखा के विरुद्ध खड़ा होने को उत्तेजित किया था।

मूलराज ने ही लाखा को द्वन्द्व युद्ध में मारा, [१] इस बात पर बहुत

(१) राठोडों के भाटों का कहना है कि कच्छ का लाखा फूलाणी सीहाजी राठोड के हाथ से मारा गया था। यह ठीक नहीं जंचता क्योंकि, कन्नौज के राठोड जयचन्द्र का राज्य शाहबुद्दीन गोरी ने ११९४ ई० में ले लिया था। उसने गंगा नदी में डूब कर प्राण दे दिए। उसका कुंवर शेख राठोड हुआ जिसके सीहाजी और साइतराम (श्योजी और सेतराम) नामक दोनों कुंवर बादशाह के सामने ही बाहरबाट निकल गये। परन्तु अन्त में थक कर सन् १२१२ में अपने दो सौ साथियों सहित आधुनिक बीकानेर से २० मील पश्चिम में वे कालूसद नामक स्थान पर आ गए। उस समय वहां पर सोलंकी वंश का राजपूत राज्य करता था जिसकी पुत्री से सीहाजी का विवाह हो गया। इसके बाद मोहेवा के डाभी शासक को किसी बहाने से लूणी नदी के किनारे बुलाकर उसका नाश किया और फिर साचोर के देवडा, जालोर के सोनिगरा, आहित के मोहिल, सिंघल के सांकला और पुराने खेरगढ के गोहिलों को नष्ट करके मारवाड का राज्य स्थापित किया। पालीवाल ब्राह्मणों की जागीर में पाली नामक ग्राम था। वहा पर मीणा व मेर जाति के लोग उपद्रव मचा कर उनको तग किया करते थे इसलिए ब्राह्मणों ने सीहाजी को अपने गाव में उपद्रवियों का नाश करने के लिए बसा लिया, परन्तु उसने ब्राह्मणों को ही नष्ट करके पाली में अपना राज्य जमा लिया और स्वय वहां का राव बन बैठा। सीहाजी के असोधाम (अश्वधाम) सोनिंग और अजमाल नामक तीन पुत्र थे। असोधाम सीहाजी के बाद पाली की गद्दी पर बैठा और सोनिंग ने ईडर का राज्य लिया। उसके वशज आजकल महीकांटा पोल में मौजूद हैं। अजमाल के वाघाजी और बादेर नामक दो कुंअर हुए जिनके नाम पर वाजी और वाढेर नाम की दो राजपूत शाखाएं स्थापित हुई। असोधाम के वंशज राव चांदाजी ने मण्डूर के पडिहार राजा को मार कर अपनी राजधानी पाली से उठा कर यहां पर कायम की। चांदाजी की मृत्यु सन् १४०२ ई० में हुई, उनके पुत्र रणमल जी हुए और रणमलजी के पुत्र जोधाजी ने १४५९ ई० (संवत् १५१६ जेठ सुदी ११) में जोधपुर बसा कर वहां अपनी राजधानी स्थापित की।

मतभेद है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार वेग के स्थान पर क्लारैन्स के ड्यूक को वेकन व उसके सामन्तों ने मिल कर मारा था

इस प्रकार 'सीहाजी' राठौड जोधपुर और ईडर के राजवंशियो का पूर्वज था, यह बात तो सच है, परन्तु वह मूलराज सोलकी के समय मे नहीं था। वह तो उससे २३३ वर्ष बाद में हुआ था। (देखे रासमाला का प्रकरण ४—राजावली की टिप्पणी) मूलराज सोलंकी की मृत्यु सन् ९९६, ई० में हुई और जयचन्द का राज्य शहाबुद्दीन ने ११९४ ई० में लिया यही अन्तर कम से कम १९८ वर्ष का पड़ता है।

मूलराज सोलकी था इसी आधार पर भाटों ने कालूमद के सोलकी की पुत्री के साथ सीहाजी के विवाह की घटना को यहाँ मिला दिया है। वास्तव में मूलराज सीहाजी से बहुत पहले हुआ था क्योंकि लाखा फलाणी का जन्म ८५५ ई० में हुआ था और वह १२५ वर्ष की अवस्था में ९७९ ई० में मूलराज के हाथ से मारा गया था।

लाखा के जन्म के विषय में एक प्राचीन दोहा इस प्रकार है —

शाके सात सतोतरे, (शुद) सातम श्रावण मास।
सोनल लाखो जन्मियो, सूरज जोत प्रकाश ॥

इससे विदित होता है कि वह शाके ७७७ में पैदा हुआ था और उसकी माता का नाम सोनल था। यह सोनल कुडधर रैबारी की पुत्री रूप में उत्पन्न हुई कोई अप्सरा थी।

(देखिये, मुंहता नैणसी की ख्यात, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, द्वितीय खण्ड पृ० २२९—२३३)

जैसलमेर में प्रचलित एक लोकगीत के अनुसार लाखा का जन्म शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को पूर्णिमा की घड़ियों में हुआ था।

"चादणी रे चवदसरीज रात, राय पूनम री रे घडियाँ रे लखपत जलमियों"
देखिये मरु भारती का वर्ष ३ का अङ्क १ पृ० ५८।

लाखा की मृत्यु के विषय में निम्नलिखित प्राचीन छप्पय प्रसिद्ध है:—

उसी प्रकार इस जाड़ेचा राजा (लाखा) को मारने में भी कितनों ही का हाथ था। मारवाड़ का राजा सीहाजी राठौड़ उस समय मूलराज की पुत्री

छप्पय:—शाके नव एक में, मास कार्तिक निरंतर।
पिता वेर छल ग्रहे, साहड़ दावे अतसधर॥
पड़े समा सो पनर (१५००) पडे सोलंकी सोखट (६००)
सो ओगणिस (१६००) चावडा, मूवाराज रढणवट
पातले गावबा मंगल लई, हाथमल सेल सिंहना आशरे,
आठमें पत्त शुक्र चाँदणे, मूलराज हाथ लाखो मरे॥

इससे विदित होता है कि लाखा सीहाजी के हाथ से नहीं मरा था वरन् मूलराज के हाथ से ही मरा था :—पढिये—

"अची फूलाणी फोरभो, रारो मँ दाणु, मूलराज सांग उखती लाखों मराणु, (लाखा) फूलाणी आकर फूला (पौरुष में आया) राड मंडी (युद्ध हुआ) मूलराज ने सांग (बरछी) मारी और लाखा मारा गया।"

प्रबन्धचिन्तामणि में मेरुतुंग ने लिखा है :—

अनुष्टप् :—स्वप्रतापानले येन लक्षहोमं वितन्वता।
सूत्रितस्तत्कलत्राणां बाष्पावग्रहनिग्रहः॥

आर्या :—कच्छपलक्षं हत्वा सहसाविकलम्बजालमायातम्।
संगरसागरमध्ये धीवरता दर्शिता येन॥

जिस प्रकार एक लाख होम (हवन) करके अनावृष्टि का निग्रह करते हैं उसी तरह अपनी प्रताप रूपी अग्नि में लक्ष (लाखाफूलाणी) का होम करने वाले (मूलराज ने) (लाखा की) स्त्रियों के आसुओं द्वारा अनावृष्टि का निग्रह किया (अतिवृष्टि की)।

जिस प्रकार मांझी समुद्र में जाल बिछाकर लक्ष कच्छप (कछुवे) आदि जलचरों को मारता है उसी प्रकार (मूलराज ने) कच्छपति लक्ष (लाखा) को अपने विस्तृत जाल में पकड़ कर संग्राम सागर में मार कर धीवरता प्रकट की।

से विवाह लग्न करने के लिये अणहिलवाड़ा आया हुआ था और युद्ध के समय वहीं उपस्थित था। राठौड़ वंश के भाटों का कथन है कि लाखा फूलाणी उसी के हाथ से मारा गया था। हेमाचार्य के मतानुसार सीहाजी राठौड़ जोधपुर और ईड़र के राजवंश का पूर्वज था।

कीर्तिकौमुदी के कर्ता सोमेश्वर ने लिखा है कि :—

सपत्नाकृतशत्रूणां संपराये स्वपत्रिणाम्।
महेच्छकच्छभूपाल लक्षं लक्षीचकार यः॥

मूलराज ने युद्ध मे महान् कच्छ के अधिपति लक्ष भूपाल (लाखाराज) को शत्रुओं के अंग मे ठेठ तक पार चले जाने वाले अपने बाणों का निशाना बनाया।

राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर जयपुर से प्रकाशित हो रही 'राठोड वंश री विगत' नामक पुस्तिका मे ऊपर उदधृत 'शाके नव एक··· ···मे' छप्पय इस रूप मे छपा है :—

तेरे मे एकम वरस, मास काती निरन्तर।
पिता बेर छल मंड, साम राखायच समहर॥
पडे सामां से पांच, कमध सोलकी सोखंत।
चावडां गुणतालीस, रहे [illegible] व ध रिणवट॥
पतरे धमल मंगल लहे. सेल सिंहा नामो सिरे।
भदरेसर चिड़ीपाट को, छपय चांदणे हाल राव लाखो भरे॥

इसमें लाखा की मृत्यु सीहा के हाथ होना लिखा है। सभव है यह मूल पद्य का रूपान्तर हो, जो बाद में राठौडों के किसी भाट ने कर दिया हो। लाखा की मृत्यु किसके हाथ से हुई, इस विषय में राजस्थान के सुप्रसिद्ध पुरातत्वविद् स्वर्गीय गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा ने अपने जोधपुर के इतिहास मे प्रमाण-सम्पुष्ट विवरण दिया है और यही सिद्ध किया है कि लाखाफूलाणी विक्रम संवत् १०३६ (६८० ई० सन्) के लगभग मूलराज सोलंकी के हाथ से ही मारा गया था।

"सेख (१) (सलखोजी राठौड़) के प्रतापवान् पुत्र (सीहाजी) ने सेना सहित यात्रा करने का नियम लिया। मूलराज ने उनके पास नारियल भेजा और कहलाया "हे कन्नौजपति! आज मेरी सहायता करो।" राठौड ने जवाब भेजा "इस समय तो मैं गोमती (द्वारका) की यात्रा करने जा रहा हूँ जब यात्रा के अनन्तर घर के लिये प्रस्थान करूँगा उसी समय आपका विवाहसम्बन्धी प्रस्ताव सुनूंगा।" वापस लौटते समय मूलराज के यहाँ मण्डप में सीहाजी राठौड़ का विवाह हुआ। जाड़ेचों का किला राठौड़ ने नष्ट कर दिया। वह शत्रु के हृदय में बाण के समान कसकने लगा। यह कोई कमधजों (राठौड़) और यादवों की लड़ाई नहीं थी। उसने (राठौड़ ने) तो सोलकी राज को आश्रय दिया था। युद्ध में सीहाजी ने लाखा को मार डाला। समय निकलता चला जायगा परन्तु यह बात ज्यों की त्यों बनी रहेगी।"

इसके पश्चात मूलराज ने अपने लश्कर सहित प्रभास तीर्थ की यात्रा की और सोमेश्वर महादेव का पूजन करके, शत्रु से लूटे हुये माल और हाथियों को लेकर घर लौटा।

लाखा सम्बन्धी और भी सूचना 'कच्छ कलाधर' नामक ग्रन्थ से प्राप्त होती है जो अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय है।

इसके सम्बन्ध में पिलानी से प्रकाशित होने वाली "मरु भारती" के वर्ष २ अंक १ एवं वर्ष ३ अङ्क १ में सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध, पुरासाहित्यविशेषज्ञ पं. झाबरमल्लजी शर्मा जसरापुर (खेतड़ी) निवासी का लेख, सुख्यात शोधविद्वान् श्री अगरचन्दजी नाहटा की टिप्पणियाँ और श्री दीनदयाल जी ओझा का लेख भी द्रष्टव्य हैं जिनमें लाखा के लोक गीतों का सविस्तार विवेचन हुआ है।

(१) जयचन्द का कुमार सेख (सखलोजी) राठौड़ सीहाजी का पिता।

अणहिलवाडा लौट आने के कुछ दिनों बाद ही मूलराज के चामुण्ड नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बाल्यकाल ही में इस राजकुमार की असाधारण प्रतिभा झलकने लगी। उसे रुद्रमाला (स्थान) जाने में बड़ा आनन्द आता था क्योंकि वहाँ ब्राह्मण लोग महाभारत का पाठ किया करते थे और राजकुमार का मन इसमें खूब लगता था।

एक दिन राजकुमार राजसभा में जाकर अपने पिता को नमस्कार करके बैठा। उसी समय दूर दूर के देशों से आये हुये राजदूत दरबार में आये। इन दूतों के साथ उनके राजाओं ने अणहिलवाडा के राजा की कृपा प्राप्त करने के लिये बहुत सी भेटे भेजी थीं। अङ्गराज की ओर से सुसज्जित रथ, सिन्धु राज की ओर से बहुमूल्य रत्न और वनवास के राजा की ओर से स्वर्ण भेट किया गया। देवगिरि के राजा ने (१) अपना

---

(१) महादेवजी के पुत्र स्वामिकार्तिक (स्कन्द) की गुफा देवगिरि पर है इसलिए यहा का राजा शरजाचल अथवा देवगिरि का राजा कहलाता है। उसको स्वामिकार्तिक की सेवा के फलस्वरूप एक कमल पुष्प की प्राप्ति हुई जो संध्या होने पर भी नहीं कुम्हलाता था। ऐसे प्रतापशाली राजा ने मूलराज को वार्षिक कर के रूप में वही कमल भेंट किया।

ऊपर जिन राजाओं का वर्णन किया है उनके अतिरिक्त विन्ध्य देश के राजा को भी, जो हाथियों को वश में करके बांधने वाला था और विन्ध्याचल मे रहता था, हाथी के समान वश में करके मूलराज ने बांध लिया था। उसने न मुर्झाने वाले कमल के सदृश ही सूंड के अग्रभाग वाला शकुनियाल हाथी भेट किया। मूलराज की पादुका का अर्चन करने वाले पाड्डदेश के अधिपति ने चांदनी की शोभा धारण करने वाला देदीप्यमान हार अर्पण किया।

तेज नाम के देश (शायद यह अरबिस्तान में था इसका दूसरा नाम ताज भी है) के राजा ने तेज घोडे भेट किए थे।

वार्षिक कर भेट किया और कोल्हापुर के अधिपति ने मूलराज की सेवा में पद्मराग मणि अर्पित की। काश्मीर के राजा ने रंग बिरंगे छत्र, तथा पाञ्चाल देश के अधिपति ने [१] गायें और दास दासियां भेजीं। सबसे अन्त में दक्षिण के लाट देश का प्रतिनिधि आया और उसने अपने स्वामी द्वारप की ओर से एक हाथी भेट किया। यह हाथी ऐसा अशुभ और अपशकुनों से भरा हुआ था कि ज्योतिषियों ने उसे कालरूप ही बता दिया। [२] इस भेट के अपशकुनों से सभी दरबारियों के हृदय में त्रास उत्पन्न हुआ और द्वारप द्वारा किये हुये अपने पिता के अपमान से युवराज चामुण्ड को तो इतना क्रोध आया कि वह उसी समय उस पर चढ़ाई करने को उद्यत हुआ। परन्तु बहुत कुछ कह सुनकर मूलराज ने उसे रोका। तुरन्त चढ़ाई करने के लिये कोई मुहूर्त अनुकूल नहीं पडता था इसलिये लाट के राजदूतों को उनकी भेट समेत लौटा देने की आज्ञा

---

(१) पाञ्चाल देश में काम्पिल्य नामक एक नगर था। वहां के सिद्ध और विख्यात राजा ने मूलराज की आज्ञा से दास्या:पुत्र खस (एक क्षत्रियजाति विशेष) को जो चोरों की टोली बना कर लूटने का काम करता था मार कर उसके गिरोह को समूल नष्ट कर दिया था और उसकी ऋद्धि (सम्पत्ति) लाकर मूलराज को भेट कर दी थी। खस का विशेषण "दास्या पुत्र" समझ में न आने के कारण दास (गुलाम) और गाए लाकर भेंट की ऐसा लिख दिया प्रतीत होता है। ऋद्धि से दास दासी ढोर इत्यादि समझ लिए गए हैं।

(२) मूलराज ने चामुण्ड की ओर देखकर हाथी के लक्षण जानने की इच्छा प्रगट की। उसने बृहस्पति [वाचस्पति] कृत "गज लक्षण" शास्त्र को देख कर कहा:—

"यह लम्बी सूँड वाला [दीर्घ हस्त] हाथी जिस घर में चला जाय वहां यदि इन्द्र का सा स्वर्गाधिपत्य हो तो वह भी नष्ट हो जावे। इस हाथी के जैसे शोभाहीन

देकर उस समय तो राजा शान्त हो गया; फिर शुभ मुहूर्त आते ही युवराज सहित मूलराज ने अपनी सेना लेकर द्वारप को उसके गर्व

दन्त शूल वाला हाथी जिसके घर में हो, उसके पिता, शिष्य, पुत्र, बहन, बहनोई तथा भाणजे आदि सबका उच्छेद हो। यह हाथी पिंगल नेत्र है, यह जिसके घर में रहे उसके माता पिता, बहन, भाणजे आदि को क्लेशकर है। ऐसे शुकपिच्छ पुच्छ हाथी को ब्राह्मण भी दक्षिणा में नहीं लेते फिर हम लोग किस प्रकार इसको ग्रहण करें? यह हाथी कृष्णनख (काले नाखूनों वाला) है, इसके स्वामी का ऐसा अनिष्ट हो कि यदि उसका निवारण करने के लिए अग्नि, सोम, वरुण जैसे देवता भी प्रयत्न करें तो वे भी समर्थ न हों। इस प्रकार यह छोटी पीठ वाला हाथी सब प्रकार निन्दनीय है।

इस हाथी के ओठों पर रेखा है, इस तरह का ओष्ठविलमान् हाथी महा दूषित गिना जाता है, और दूषित भी ऐसा कि सूर्य और चन्द्र आदि पूर्व से पश्चिम में उगें तब ही शुभ गिना जावे। यह मृग जाति के हाथियों में उत्पन्न हुआ है, इसके श्वास में दुर्गन्ध आती है. ऐसा हाथी रखने से दुख की प्राप्ति होती है। हमारा अमङ्गल करने के लिए ही द्वारप ने यह हाथी हमारे यहा भेजा है।"

इस प्रकार "द्व्याश्रय में लिखे अनुसार हाथी के अपशकुनों का वर्णन चामुण्ड ने किया था न कि ज्योतिषियों ने। राजकुमारों को राजनीति, अश्वविद्या, गज-विद्या आदि की शिक्षा दी जाती थी, इसी के अनुसार चामुंड भी इनमें निपुण था— यही ग्रन्थकर्ता का अभिप्राय है।

"द्व्याश्रय" के कर्ता ने द्वारप अथवा बारप को लाट देश का राजा लिखा है, "प्रबंध चिन्तामणि" में उसको तिलिंगाने का राजा तैलिप का सरदार लिखा है। "सुकृत संकीर्तन" में उसको कान्यकुब्ज के राजा का सरदार और कीर्तिकौमुदी के कर्ता ने उसे लाट राजा का सामन्त कहा है। हमारे विचार से 'प्रबन्ध चिन्तामणि' का मत अधिक मान्य है।

के लिए शिक्षा देने को चढ़ाई करदी। वे, राज्य की सीमा, नर्मदा (१) नदी के किनारे पर इतनी जल्दी जा पहुँचे कि वहां पर स्नान करने वाली स्त्रियों तक को योद्धा लोगों के ऊंचे किनारे से नदी में उतरने की कुछ भी खबर न हुई। सूर्यपुर (सूरत) और भृगुकच्छ (२) (भड़ौंच) के नगरों में होते हुए वे शीघ्र ही द्वारप के देश में जा पहुँचे। वह देश उस समय अशुभ और भद्दी स्त्रियों के लिए प्रसिद्ध था। उनकी बेडौल कमर और निरन्तर चूल्हे की धुआं के पास रहने से काले तवे के समान चेहरों को देख देख कर गुजरात के योद्धाओं को हँसी आती थी। पास के कुछ द्वीपों के राजाओं ने यद्यपि लाट के राजा की सहायता की परन्तु उसे जीत लेने में अधिक कठिनाई न पड़ी। मूलराज की अध्यक्षता में एक छोटी सी टुकड़ी की सहायता से ही गुजराती सेना को आगे करके राजकुमार चामुंड ने आक्रमण करके उसे मार डाला। (३) इस प्रकार चामुंड ने अपनी कुँवारी तलवार को रक्त पिलाया। इससे मूलराज बहुत प्रसन्न हुआ और सेना लेकर तुरन्त अणहिलवाड़ा लौट आया।

अब मूलराज अपने भाग्योदय की पराकाष्ठा को पहुंच चुका था।

---

(१) हेमाचार्य ने श्वभ्रमती को गुजरात राज्य की सीमा मानी है—यह साभ्रमती (साबरमती) का ही दूसरा नाम प्रतीत होता है। इसी स्थान पर सेनाओं का सामना हुआ था।

(२) ग्रीक लोग भृगु कच्छ को इसके हिन्दू नाम पर बर्गेगज कहते थे। इन दोनों नामों में बहुत समानता है।

(३) कीर्तिकौमुदी में लिखा है—(देखो सर्ग २ श्लोक ३ का भाषान्तर)

"सेनानीलाटेश्वरनों, असामान्य पराक्रमी।
ते बार्प ने हणी जेणे हाथी सेना मही दली।"

उसने अपने मातृपक्ष से प्राप्त किये हुए राज्य की सीमाको सभी दिशाओं में बढा लिया था। कच्छ को उसने जीत लिया था, सोरठ की पवित्र भूमि में उसकी दोहाई फिरती थी और दक्षिण के लोगों ने नर्मदा और सह्याद्रि पर्वत की घाटी के उस पार तक उसकी विजय पताका को फहराते देखी थी। आबू के पवित्र पर्वत पर दुर्जय अचलगढ़ के किले में राज्य करने वाले परमार राजा ने (१) उसकी अध्यक्षता स्वीकार की और मारवाड़ तथा उत्तरी हिन्दुस्तान के शूरवीर भी पहले पहल उसी की सरदारी में गुर्जर राष्ट्र के झंडे के नीचे चले आये थे। उसका घरेलू जीवन भी सुखमय था। हिन्दू लोग जिस को परम सुख मानते हैं और जो उसके बाद में होने वाले अणहिलपुर के राजाओं के भाग्य में नहीं बदा था, वह सुख भी उसे प्राप्त था क्योंकि उसके पश्चात् गद्दी का उत्तराधिकारी, उसका पुत्र भी परम सुयोग्य था।

मूलराज ने अपने मातृपक्ष के लोगों को मार डाला था, इसका उसने अपने राज्यकाल के अन्तिम दिनों में बहुत पश्चात्ताप किया और इसका प्रायश्चित्त करने के लिए कितने ही तीर्थस्थानों में घूमता फिरा। वह इस पाप का प्रायश्चित्त करके शांतिलाभ करने के लिये मनमाना धन खर्च करने को तैयार था। एक तीर्थस्थान से दूसरे तीर्थस्थान तक भटकने के कारण थका हुआ, पाप, दुख, वृद्धावस्था और अज्ञान का मारा हुआ, शान्ति प्राप्त करने के लिये अधीर, वह अन्त में सिद्धपुर जाकर रहा और वहां, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, महादेवजी की कृपा प्राप्त करने के लिये एक शिवालय का निर्माण कराने लगा।

(१) धार में सीयक द्वितीय [हर्ष] ने सन् ९४१ से ९७२ ई० तक और उसके बाद मुंजराज [वाक्पति द्वितीय] ने ९७२ से ९९७ ई० तक राज्य किया।

छोटी परन्तु स्वच्छ सरस्वती नदी, आरासुर की शुभ्र चोटी पर स्थित प्रसिद्ध कोटेश्वर महादेव के देवालय के आगे से निकल कर पश्चिम में कच्छ के रण की ओर बहती है। यों तो सरस्वती नदी सदा सर्वदा से पवित्र गिनी जाती है परन्तु जब वह सिद्धपुर के पास होकर बहती है तो इसका प्रवाह थोड़ी सी दूर के लिये उगते हुये सूर्य के सामने पूर्व दिशा की ओर मुड़ जाता है, इसलिये इस स्थान पर इस की महिमा अधिक मानी जाती है।

सरस्वती के उत्तरी ढालू किनारे पर रमणीय सिद्धपुर नगर बसा है, जहाँ आज नदी की ओर बोहरों (१) तथा अन्य धनवानों के घर बने हुये हैं। इन घरों की बनावट अर्ध-यूरोपीय है, और इनकी बरामदे-दार छतें और परदे लगी हुई खिड़कियां दूर ही से दिखाई देती हैं। बीच बीच मे इस पवित्र नगर के ऊचे ऊचे शिखरों वाले मन्दिर आ जाने से अपूर्व शोभा दिखाई पड़ती है। जगह जगह इधर उधर लगे हुए बगीचों में केले और अन्य फलों वाले वृक्ष लगे हुए है, साथ ही आमों की भी कोई कमी नहीं हैं। इन सब के अतिरिक्त पुरातन रुद्रमाला के विकराल एवं विशाल खंडहर आज तक खड़े हैं जिनकी पैड़ियां बड़ी दूर तक नदी के किनारे किनारे चली गई है। दक्षिणी समतल किनारे पर एक विशाल चौक है जिसमें शैवों के आश्रम बने हुये हैं।

---

(१) ये बोहरा लोग पहले औदीच्य ब्राह्मण थे। अलाउद्दीन ने इनका धर्म नष्ट कर दिया तब से ये लोग मुसलमान कहलाने लगे। उसी ने नागर ब्राह्मणों का भी धर्म बिगाड़ा था—वे भी बोहरा ही कहलाते हैं। ये लोग अब तक भी ब्राह्मणों में प्रचलित अवटकों से बोले जाते हैं। इन लोगों के एक मोहल्ले में, जिसमें केवल उन्हीं के घर हैं, एक हनुमानजी का मन्दिर भी बना हुआ है।

इनमें सबसे सुन्दर होल्कर राज की विधवा रानी अहल्याबाई का बनवाया हुआ आश्रम है। यहीं से आरम्भ होकर आरासुर और आबू की ओर फैली हुई पर्वतश्रेणी दृश्य की सुन्दरता में और भी अभिवृद्धि कर देती है। सिद्धपुर असाधारण पवित्रता का स्थान है—

"प्राचीन बड़े बड़े ऋषियों ने कहा है कि श्रीस्थल (सिद्धपुर) सब तीर्थस्थानों में बड़ा है। यह सब प्रकार की सम्पत्ति का देने वाला है और इसके दर्शन मात्र से मुक्ति प्राप्त होती है।"

फिर कहा है :—

"गयाया योजन स्वर्गः प्रयागाच्चार्द्ध योजनम्।
श्रीस्थलाद्धस्तमात्र स्याद्यत्र प्राची सरस्वती॥"

अर्थात् गयाजी से स्वर्ग एक योजन दूर है, प्रयाग से आधा योजन और श्रीस्थल से, जहाँ सरस्वती पूर्व दिशा में बहती है—केवल एक हाथ भर ही दूर रह जाता है।

मृत्युकाल को समीप जान कर राजा पवित्रता लाभ करने के विचार से इस पवित्र तीर्थस्थान में आ बसा और उसने मरणपर्यन्त वहीं रहने का विचार किया। परन्तु, जैसा कि उसने समझ रखा था—केवल दैहिक कष्ट भोगना ही उसके लिए पर्याप्त न था, क्योंकि "व्रत, नियम, स्नान, ध्यान, तीर्थयात्रा और तप इनका जब तक ब्राह्मण समर्थन न करे तब तक ये फलदायक नहीं होते। जो कुछ ब्राह्मण कहते हैं वह देवताओं को भी मान्य होता है। जिस प्रकार मलिन मनुष्य जल से स्वच्छ हो जाता है उसी प्रकार ब्राह्मणों के वचन से पापी मनुष्य पापमुक्त हो जाता है।" यह बात समझ में आते ही मूलराज तीर्थवासी ब्राह्मणों की आव

भगत का सामान करने लगा। वह इन ब्राह्मणों को बड़ा आग्रह करके उत्तरीय पर्वतों, अरण्यों तथा जलाशय के निकटवर्ती तीर्थस्थानों से लाया था। वेदों में पारंगत विवाहित, युवा और सेवायोग्य ऋषिपुत्र कुमारिका नदी के किनारे जाने को तैयार हो गये। एक सौ पाँच ब्राह्मण गंगा यमुना के संगम-स्थान से आये। सौ सामवेदपाठी च्यवनाश्रम से, दो सौ कान्यकुब्ज से, सूर्य के समान तेजस्वी एक सौ ब्राह्मण काशी से, दो सौ बहत्तर कुरुक्षेत्र से, एक सौ गङ्गाद्वार से और एक सौ नैमिषारण्य से आये। इनके अतिरिक्त राजा ने एक सौ बत्तीस ब्राह्मण कुरुक्षेत्र से और बुलवाये। इन सब ब्राह्मणों के अग्निहोत्र से निकले हुए शुभ धूम्र ने गगनमण्डल को आच्छादित कर दिया।

इनके आ पहुँचने का समाचार सुन कर राजा उनके सामने गया और साष्टाङ्ग प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके पश्चात वह हाथ जोड़ कर कहने लगा "आप लोगों की कृपा से मेरा जन्म सफल हो गया। अब मेरा मनोरथ पूर्ण हो जावेगा। हे ब्राह्मणगण! आप लोगों ने जो कृपा की है उसके बदले में आप राज्य, धन, हाथी, घोड़े, अथवा जो कुछ आपको अच्छा लगे वही ले लीजिये। मैं पश्चात्ताप से भरा हुआ आप लोगों का विनम्र दास हूँ।" ब्राह्मणों ने उत्तर दिया "हे महाराज! राज्य का कारबार चलाने की हममें शक्ति नहीं है, इसलिए इसका नाश करने के लिए हम इसे क्यों स्वीकार करें? जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने क्षत्रियों से छीन छीन कर इक्कीस बार पृथ्वी का राज्य हमको दिया था।" राजा ने कहा "हे महान् ब्रह्मदेवो! मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम निर्भय होकर अपना जप तप करो।" ब्राह्मणों ने फिर कहा "विद्वानों का मत है कि जो राजाओं के पास रहते हैं उन पर संकट पड़ते हैं। राजा लोग अभिमानी, धोखेबाज और स्वार्थी होते हैं,

फिर भी यदि तुम्हारी कुछ दान देने की इच्छा ही है तो हे राजाधिराज! यह हृदय को आनन्दित करने वाला विशाल श्रीस्थल हमको दीजिये, यहाँ हम आनन्द से रहेंगे। जो सोना, चांदी और जवाहरात आप ब्राह्मणों को देना चाहते हैं, वह नगर की शोभा वढाने के काम में लीजिये।"

मनोरथ पूर्ण हो जाने के कारण आनन्द से प्रफुल्लित होकर राजा ने ब्राह्मणों के चरण धोये और उनको कङ्कण तथा बालियाँ भेट कीं। उसने उनको श्रीस्थलपुर दे दिया और साथ में गाये, सोने और जवाहरात के हारों से सजे हुए रथ तथा अन्य वस्तुएं भी भेट की।

मूलराज ने, इसके अतिरिक्त, दश ब्राह्मणों को अन्यान्य भेटों सहित सुन्दर और धनधान्य से परिपूर्ण सिहपुर (सिहोर) नगर दिया। अन्य ब्राह्मणों को उसने सिद्धपुर और सिहोर के आसपास के कितने ही छोटे छोटे गाँव दिये। इस प्रकार सभी ब्राह्मणों ने यह तुष्टिदान स्वीकार किया, परन्तु छः ब्राह्मणों ने बहुत समय तक दान लेने में आना कानी की। अन्त में उन्हें राजा की प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी और उन्होंने खम्भात तथा उसके पास के बारह ग्राम ले लिये। "जिन्हें सोमवल्ली [१] पान करने में आनन्द आता था उन छः ब्राह्मणों ने स्तम्भतीर्थ अथवा जिसे लोग खम्भात कहते हैं, वह प्राप्त किया और साथ में साठ घोड़े भी प्राप्त किये।' [२]

---

(१) ब्राह्मणों मे यह बात प्रचलित थी कि हवन कराने वाला हवन कराते समय सोमपान किया करता था। इसका कारण यह था कि असली ब्राह्मण के सिवाय और कोई उसको पीकर पचा नहीं सकता था।

(२) मेरुतुंग ने मूलराज के विषय में इस प्रकार लिखा है —

इस प्रकार पुण्यदान करने के पश्चात् मूलराज ने अपने पुत्र पौत्रों को बुलाया और ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिए उन्हें आज्ञा दी। इसके

मेदिन्यां लब्धजन्मा जितबलिनि बलौ बद्धमूला दधीचौ
रामे रूढप्रवाला दिनकरतनये ज्ञानशाखोपशाखा।
किञ्चिन्नागार्जुनेन प्रकटितकलिका पुष्पिता साहसाङ्के
ऽऽमूलान्मूलराज त्वयि फलितवती त्यागिनि त्यागवल्ली॥

त्याग (दान) रूपी लता ने भूमि पर पहले पहल महाबलिष्ठ बलिराजा मे जन्म लिया, दधीचि ऋषि ने उसको बद्धमूल किया (जड जमाई) और परशुराम ने उसको कोंपलवाली बनाई। दिनकर (सूर्य) के पुत्र (कर्ण) के समय में उस लता के शाखायें व प्रशाखायें उत्पन्न हुईं, नागार्जुन ने उसे किसी अंश तक कलिका वाली किया (उसके समय में कलिया आ गई) और साहसाङ्क के समय में उसके फूल आ गए। हे दानेश्वर! मूलराज! आपने ऐसी त्यागवल्ली को जड से लेकर शिखर तक फलवती कर दिया।

स्नाताः प्रावृषि वारिवाहसलिलैः सरूढदूर्वाङ्कुर—
व्याजेनात्तकुशाः प्रणालसलिलैर्दत्वा निवापाञ्जलीन्।
प्रसादास्तव विद्विषां परिपतत्कुड्यस्थपिण्डच्छलात्
कुर्वन्ति प्रतिवासरं निजपतिप्रेताय पिण्डक्रियाम्॥

हे मूलराज! तुम्हारे शत्रुओं के उजडे हुए राजमहल, वर्षा ऋतु में मेघों के जल से स्नान करके अपने ऊपर उगी हुई दूब के मिष से कुश लेकर, पानी बहते हुए परनालों के जल से, (मानों) अपने स्वामियों को प्रेतान्जलि देते हैं और गिरती हुई भीतों के ढेलों द्वारा नित्य पिण्डदान करते हैं।

उपर्युक्त श्लोक में प्रासादों के प्रस्तुत वर्णन से मृत पुरुष को पिंडदान आदि क्रिया के अप्रस्तुत वर्णन का बोध होता है इसलिये समासोक्ति अलंकार है।

पश्चात् अपने पुत्र चामुण्ड को राज्य सौंप कर वह सिद्धपुर जाकर रहने लगा। उसने अपने जीवन के अवशिष्ट दिन वहीं अपने बनवाये हुए रम्याश्रम नामक महल में बिताये और अन्त मे लक्ष्मीपति (भगवान् नारायण) की सेवा में नारायणपुर को चला गया। [१]

"अग्निदेव ने अपने धुओं के समूह से उसका पूजन किया। पूजन ही से वह इतना महान् हो गया था कि दूसरे योद्धाओं का तो कहना ही क्या सूर्यमण्डल का भी उसने वेध कर दिया।" [२]

---

(१) अथ प्राचीं गत्वा द्रुहिणतनया श्रीस्थलपुरे
वपुः स्व हुत्वाग्नौ सुपिहितपिनद्धापरयशा ।
ययौ राज्ञः सूनुर्दिवमनपिनद्धापिहितधी.
ग्रहीतु स्वर्गादध्यवनविधिना वक्रयमिव ॥

अर्थात् :—समस्त-शत्रु-विजेता मूलराज ने मानों उनके यश को शृंखला मे बद्ध करके सिद्धपुर में पूर्ववाहिनी सरस्वती नदी के किनारे जाकर अपने शरीर को अग्नि में होम दिया और ज्ञान के कारण जिसकी बुद्धि मोहग्रस्त नहीं हुई थी ऐसा वह राजपुत्र नभ में सूर्य के समान देवताओं का रक्षण करके मानों अपना कर लेने के लिए अन्तरिक्ष में गया। जिस प्रकार संध्या समय सूर्य अपनी लाल किरणमाला रूपी अग्नि में प्रविष्ट होकर प्रातःकाल पूर्व दिशा में आकर अन्तरिक्ष में आरोहण करता है उसी प्रकार इस राजा ने भी सूर्यवंशी होने के कारण सूर्य के समान अन्तरिक्षारोहण का क्रम ग्रहण किया। (द्व्याश्रय—सर्ग६ श्लोक १०७)

अंग्रेजी मूल में यहाँ अर्थ का हेरफेर प्रतीत होता है। इस श्लोक में प्रस्तुत राजा के अन्तरिक्षारोहण का वर्णन करते हुए अप्रस्तुत सूर्य के अन्तरिक्षारोहण का अर्थ निकलता है अत एव समासोक्ति अलंकार है।

(२) गुजराती भाषान्तरकार की टिप्पणी

मूलराज के क्रमानुयायियों की टीप एक ताम्रपत्र पर प्राप्त हुई थी। यह लेख सम्वत् १२६६ (१२१० ई०) का है और कुछ ही वर्षों पूर्व अहमदाबाद के

मूलराज ने ६४२ ई० से ६६७ ई० तक पचपन वर्ष राज किया (१)

भंडार में जडा था, ग्रन्थकर्ता ने उसको रायल एशियाटिक सोसायटी, लंदन को भेंट कर दिया है। ताम्रपत्र पर लेख इस प्रकार है :—

समस्तराजावलीसमलंकृतमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकचौलुक्यकुलकमलविकासनैकमार्तण्डश्रीमूलराजदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीचामुण्डराजदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीवल्लभराजदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीदुर्लभराजदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीभीमराजदेव

पादानुध्यातपरमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजत्रिलोकीमल्लश्रीकर्णदेव

पादानुध्यातपरमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजअवन्तीनाथत्रिभुवनगंडबर्बरकजिष्णु सिद्धचक्रवर्तीश्रीजयसिंहदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकउमापतिवरलब्धप्रसादप्राप्तराज्यप्रौढप्रतापलक्ष्मीस्वयंवरस्वभुजविक्रमरणाङ्गणविनिर्जितशाकम्भरीभूपालश्रीकुमारपालदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकपरममाहेश्वरप्रबलबाहुदण्डदर्परूपकन्दर्पहेलाकरदीकृतसपादलक्ष्मापालश्रीअजयपालदेव

पादानुध्यातपरमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजम्लेच्छतमोनिचयछन्नमहीवलयप्रद्योतनबालार्कआहवपराभूतदुर्जयगर्ज्जनकाधिराजश्रीमूलराजदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकाभिनवसिद्धराजसप्तमचक्रवर्तीश्रीमद्भीमदेव इत्यादि

ऊपर के लेख के बाद अन्तिम राजा त्रिभुवनपाल के विषय में लिखा है :—

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकशौर्योदार्यगाम्भीर्यादिगुणालंकृतश्री त्रिभुवनपालदेव

(१) विचार श्रेणी नामक ग्रन्थ के अनुसार मूलराज ने संवत् १०१७ (६६१ ई०) से १०५२ (६६६ ई०) तक ३५ वर्ष राज्य किया, और "प्रबंधचिंतामणि" के अनुसार संवत् ६६८ (६४२ ई०) से १०५३ (६६७ ई०) तक पचपन वर्ष राज्य किया।

प्रकरण ५

चामुण्ड (१) वल्लभ–दुर्लभ–सोमनाथ का नाश।

हिन्दू इतिहासकार प्रायः उन विषयों का वर्णन करने में, चाहे वह जैन ग्रन्थों के आधार पर हो अथवा राजपूत वंश के कीर्तिरक्षक भाटों के कवित्त–कलाप पर आधारित, चुप्पी साध जाते हैं जिनसे उन्हें अपने चरित्रनायकों की कीर्ति पर कुछ धब्बा आता दिखाई पड़ता

---

(१) कीर्तिकौमुदी के दूसरे सर्ग के कुछ श्लोकों का आचार्य वल्लभ ने इस प्रकार भाषान्तर किया है।

तस्मिन्नथ कथाशेषे, निःशेषितनिजद्विषि।
राजा चामुण्डराजोऽभून्महीमण्डलमंडनः ॥ ६ ॥
थे गये ए कथा शेष, नि:शेष करी दुश्मन,
राजा चामुण्ड राजश्री, पछे गयो मही मण्डन ॥ ६ ॥
विरोधिवनिताचित्ततापाध्यापनपंडिताः।
यदीयाः कटकारम्भाः कृतजम्भारिभीतयः ॥ ७ ॥
शत्रु स्त्रियोनां चित्तोने, जेडो' यां ताप आपवे,
इन्द्र ने भय देनारा, जेना सेनाप्रभाग छे ॥ ७ ॥
पाणिपंकजवर्तिन्या, स्फुरत्कोशविलासया।
यस्यासिभ्रमरश्रेण्या, भिन्ना वंशाः क्षमाभृताम् ॥ ८ ॥
पाणी पद्मे रही जेना, शोभी आश्रयकोशने,
असिभ्रमरनी होय, भेद्या भूभृत वंश ने ॥ ८ ॥

साराश यह है कि समस्त शत्रुओं का नाश करके जब मूलराज मर गया तो पृथ्वी का भूषणरूप चामुंड राजा हुआ।

है। उन्हें इसका विचार नहीं होता कि वे बातें कितनी आवश्यक हैं और उनका वर्णन न करने का परिणाम लाभप्रद न होगा (किसी भी अपराधी, मूर्ख और अभागे राजा के चरित्र पर हिन्दू ग्रन्थकार विनीशियन लोगों का सा साहस करके केवल यही लिख कर काला पर्दा डाल देते हैं कि अमुक राजा अमुक समय में पैदा हुआ और अमुक समय में मर गया। इस विषय के जैसे उदाहरण प्रबन्धचिन्तामणि के कर्ता बढवाण के जैन साधु ने मूलराज के क्रमानुयायी चामुण्ड के राज्यकाल का वर्णन करने में प्रस्तुत किए हैं वैसे अन्यत्र बहुत कम मिलेंगे। इसी राजा के राज्यकाल में मुसलमानों के झंडे के आगे राजपूतों का सौभाग्य-सूर्य अस्त हुआ, इसी के समय में भारत के मैदानों पर उन्मत्त विदेशियों का वह प्रबल आक्रमण हुआ, जिससे प्राचीन राजवंशों की जडें हिल गई, और प्राचीन देवता, यहां तक कि स्वयं महाकालेश्वर भी, नष्ट होगये) फिर भी, ऐसे समय में अणहिलवाड़ा के इस सत्तावान् राजा के विषय में, जो इस दुखद दृश्य का प्रमुख अभिनेता था, ग्रन्थकार ने कुछ ऐसे अस्पष्ट शब्द लिख कर छुट्टी लेली है) जैसे कि पिछले दिनों में लंदन के वेस्टमिनिष्टर के शान्त मैदान में दफनाए गए साधुओं के स्मारकों पर लिखे जाते थे जो उन लोगों के विषय में कोई भी स्पष्ट सूचना देने में समर्थ नहीं होते।

"विक्रम संवतसर १०५३ (ई० सन् ९९७) से संवत् १०६६ (१०१० ई० तक) से तेरह वर्ष पर्यन्त चामुंड राज ने राज्य किया।" [१]

(१) मेरुतुंग ने प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि संवत् १०५३ में श्रावण सुदि ११, शुक्रवार पुष्य नक्षत्र के वृष लग्न में चामुंड गद्दी पर बैठा। उसने श्रीपत्तन में चन्द्रनाथ देव का तथा अपनी बहन के नाम पर चाचिणेश्वर देव का मन्दिर बनवाया।

रत्नमाला के एक खंड में चामुंडराज के व्यक्तिगत चरित्र का चित्रण किया गया है परन्तु उससे अन्य विषयों की बहुत ही थोड़ी सूचना मिलती है। फिर भी, एक कारण से इसका महत्व अवश्य है— वह यह कि एक हिन्दू लेखक के द्वारा इस बात का लिखित प्रमाण प्राप्त होता है कि चामुंड़ के राज्यकाल में मुसलमान लोग गुजरात में आ चुके थे। वह वृत्तान्त इस प्रकार है—

"मूलराज का पुत्र चामुंडराज था। वह दुबला पतला तथा पीले चेहरे वाला था। उसको खाने, पीने तथा सुन्दर पोशाक पहनने का बहुत शौक़ था। अपने बाग में उसने अच्छे अच्छे पेड़ लगवाये तथा कुवे और तालाब बनवाये। परन्तु बहुत,से कामों को अधूरा ही छोड़ कर वह यमपुरी को चला गया। वह अपने पिता से अच्छा था, यवनों के अतिरिक्त उसका कोई शत्रु न था। प्रजा में बहुत दिनों तक उसकी याद बनी रही।"

चामुंड के राज्यकालका जो कुछ थोड़ा सा वर्णन द्व्याश्रय मे मिलता है वह भी यद्यपि उपर्युक्त दोषों से भरा पडा है और कहीं कहीं तो इनमें सच्ची बातों को छुपाने के लिए ही ऐसे ऐसे वर्णन गढे गये हैं कि जिनसे लेखक और पाठक दोनों का ही मनस्तोष हो जाय, परन्तु फिर भी यह वर्णन इसलिये महत्वपूर्ण है कि इससे भारतवर्ष पर होने वाले पहले मुसलमानी हमले के इतिहास के विषय में कितनी ही उलझनें दूर हो जाती हैं।

कहते हैं कि पिता की मृत्यु के बाद चामुंड ने अणहिलवाड़ा का राज्यकार्य बहुत अच्छी तरह चलाया। उसने धन, कोष, सेना और यश की वृद्धि की। वह सब प्रकार निर्दोष था और उसने मूलराज से

प्राप्त की हुई पृथ्वी का अच्छा संरक्षण किया। चामुंड के वल्लभराज [१] नामक एक पुत्र हुआ और वह भी राजनीति में कुशल और सिंहासन के लिये सर्वथा योग्य सिद्ध हुआ। वह विनम्र और वीर था इसलिये राजा अपने मन में बहुत सुखी हुआ और राज्य के शत्रुओं ने, जो चामुंड की मृत्यु के बाद सुख से रहने की बाट देख रहे थे, अपनी आशा छोड़ दी।

कृष्णाजी ब्राह्मण ने लिखा है "वल्लभराज कद का ठिंगना था परन्तु उसकी बुद्धि बड़ी प्रबल थी। वह अवगुणों से दूर रहता था। उसका चेहरा लाल रंग का था और शरीर पर तिल व लशुन के चिन्ह बहुत थे। राज्य का उसे बहुत लोभ था परन्तु वह अपना वचन भंग नहीं करता था। अपने सारे मनसूबों को अधूरा छोड कर ही वह चल बसा।"

हेमाचार्य ने वर्णन किया है कि चामुंड के एक और पुत्र था जिसका नाम दुर्लभराज था। यह भी परम पराक्रमी हुआ और उसके डर से कोई भी असुर सिर न उठा सका। जब ज्योतिषियों ने उसकी जन्मपत्री देखी तो विश्वस्त होकर कहा कि वह बड़ा पराक्रमी होगा, अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेगा, बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों को इससे

(१) मेरुतुंग कहता है कि इसने मालवा पर चढाई करके धारा नगरी के कोट को घेर लिया था, परन्तु शीतला के रोग से बीच में ही इसकी मृत्यु हो गई। 'राज मदनशंकर' तथा 'जग जपण' ये इसके विरुद थे। इसके बाद इसका भाई दुर्लभराज गद्दी पर बैठा। इसने अपने भाई की याद में मदनशंकर नामक प्रासाद तथा श्रीपत्तन में सप्तभूमि धवलगृह बनवाया जिसमें व्ययकरण (दानशाला) हस्तिशाला और घटिकागृह आदि भी निर्मित थे। अपने नाम पर दुर्लभ सरोवर नामक एक तालाब भी बंधवाया।

उत्तेजना मिलेगी और वह राजाधिराज पद को प्राप्त करेगा।

दुर्लभ और उसके बड़े भाई वल्लभराज ने साथ साथ विद्याध्ययन आरम्भ किया और वे अपने पिता का आदर्श सामने रखते हुए आपस में बड़े प्रेम से रहते थे। इसके पश्चात् चामुंडराज के तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम नागराज था।

एक बार काम के वश होकर चामुंडराज ने अपनी बहन चाचिणी देवी के साथ सभोग किया [१]। इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये वल्लभराज को सिंहासन पर बैठा कर वह काशीयात्रा के लिये चला गया। मार्ग में मालवा के राजा ने उसके छत्र, चंवर और अन्य राजचिन्हों को छीन लिया। यात्रा करके जब चामुंड अणहिलवाड़ा लौटा तो उसने वल्लभराज की पितृभक्ति को जागृत करके अपना अपमान करने वाले मालवराज को शिक्षा देने के लिए उत्साहित किया। इस पर वल्लभ राज ने सेना इकट्ठी करके मालवा [२] पर चढ़ाई की परन्तु दैवयोग से वह मार्ग में ही शीतला (माता) से पीड़ित हुआ और इसका उपचार करने में कोई भी वैद्य सफल न हुआ। अब, वल्लभराज ने युद्ध की आशा छोड़ दी और परमेश्वर का भजन करते हुए दान पुन्य करने लगा। वहीं उसकी मृत्यु हो गई और रोती विलपती सेना

---

(१) श्रीयुत फार्बस साहब ने इस बात का समर्थन नहीं किया है।

(२) धारा नगरी में मुन्ज के भाई सिन्धुराज (सिन्धुल) ने सन् ९९७ से १०१० ई० तक राज्य किया इसके पीछे भोजदेव प्रथम ने १०१० से १०५५ ई० तक राज्य किया।

अणहिलवाड़ा लौट आई (१)। अपने ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु से चामुंड का हृदय भग्न हो गया और दूसरे कुंवर दुर्लभराज को गद्दी देकर वह अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिये नर्मदा नदी के किनारे भड़ौच के पास शुक्ल तीर्थ में रहने लगा। इसी तीर्थ पर प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त और उसका मन्त्री चाणक्य (२) भी अपने पाप निवारणार्थ आकर रहे थे। इसीलिए यह स्थान इतना प्रसिद्ध है। यहीं चामुंड की मृत्यु हुई। (१०१० ई०)

---

(१) जैसलमेर के इतिहास में लिखा है कि जब महमूद गजनवी ने भारत पर चढाई की तो सामना करने वालों में रावल बेचर (Rawal Bachera) भी था। इस रावल का विवाह १०१० ई० में पट्टण के सोलंकी राजा वल्लभ की लड़की के साथ हुआ था। (टॉडकृत राजस्थान भाग २ पृ० २४० और पादटिप्पणी)

(२) कहते हैं कि चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के आठ राजवंशी भाइयों को मरवा डाला था। फिर लिखा है कि जब चाणक्य का बदले की भावना से उत्पन्न हुआ क्रोध शान्त हुआ तो उसके मन में बहुत अशान्ति हुई। वह अपने पापकृत्य के पश्चात्ताप से इतना दुखी हुआ कि मानों कोई विषैला जानवर काटता हो और उसके शरीर का लहू जलने लगा हो। अतएव वह समुद्र के पास नर्मदा नदी के किनारे भड़ौच से पश्चिम दिशा में सात कोस की दूरी पर प्रसिद्ध शुक्लतीर्थ नामक स्थान पर पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए चला गया। कठिन तपस्या और बहुत सी पाप शुद्धि की क्रियाओं के उपरान्त उसे आज्ञा मिली कि वह सफेद बादबानों वाली नाव में बैठ कर नदी में तैरे। फिर यदि वे सफेद बादबान काले हो जांय, तो उसे यह निश्चय समझना चाहिए कि वह पापों से मुक्त हो गया और उसके पापों की कालिमा बादबानों में चली गई। उसने ऐसा ही किया और ऐसा ही हुआ भी, फिर उसने आनन्द से अपने पापों सहित उस नाव को नदी में छोड़ दिया।"

"यही प्रथा इससे मिलती जुलती क्रिया (क्योंकि नाव छोड़ने में बहुत खर्चा पड़ता है) आज तक शुक्लतीर्थ में होती है, परन्तु अब नाव के स्थान पर साधारण मिट्टी

इस घटना के पश्चात्, वीरता से असुरों का नाश करते हुए, मन्दिरों का निर्माण कराते हुए व बहुत से धर्मकार्यों को सपन्न करते हुए दुर्लभराज ने बड़ी योग्यता से राज्यकार्य चलाया और अणहिलवाड़ा में दुर्लभसरोवर नामक एक तालाब भी बँधवाया। उसने श्रीजिनेश्वर सूरि से शिक्षा ग्रहण की थी इसलिए जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञाता होने के कारण वह प्राणी मात्र पर दया करने के मार्ग पर अग्रसर हुआ। उसने अपनी बहन का विवाह करने के लिए स्वयंवर मण्डप रचा जिसमें मारवाड़ के राजा महेन्द्र को उसने अपना पति वरण किया। [१] महेन्द्र-

---

के घड़े काम में लिए जाते हैं। इन घड़ों पर दीपक रख कर लोग अपने संचित पापों के साथ उन्हें नदी में छोड़ देते हैं।" (इस प्रकार नदी में दीपक छोड़ने का जो कारण ऊपर लिखा गया है वह सही नहीं है वरन् यह है कि जब कुटुम्ब का कोई मनुष्य मर कर अवगति प्राप्त करके भूत पिशाच हो जाता है तो वह अपनी दुर्दशा का हाल घर के जीवित लोगों से आकर कहता है। तब वे लोग उसे कहते हैं "रेवाजी में चल कर तेरा उद्धार करेंगे।" फिर रेवा नदी पर जाकर जिस मनुष्य में भूत आता हो उसके माथे पर मिट्टी का टीका लगा कर बिठा देते हैं और भूत की जिस मिठाई में रुचि होती है वह घड़े में रख कर नदी में छोड़ देते हैं। वही घड़ा थोड़ी दूर बह कर डूब जाता है, तब कहते हैं कि रेवा माताजी ने मृतक की गति करदी। हांडी के बजाय जब छोटी दियालियों में दीवा छोड़ते हैं, तब वह दीपक पाप मेटने के लिए छोड़ा हुआ समझा जाता है। हजारों लोग इस प्रकार दीवे छोड़ते हैं परन्तु इसका कारण नहीं जानते। वे तो केवल इतना ही समझते हैं कि जिस प्रकार मन्दिर में दीपक जलाने से पुण्य होता है उसी प्रकार रेवा माताजी में दीवा छोड़ने से भी पुण्य होता है।)

"ऐसा प्रतीत होता है कि राजगद्दी पर पापपूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद चन्द्रगुप्त भी चाणक्य के साथ आत्मशुद्धि के लिए शुक्लतीर्थ में गया था।"

(विलफोर्ड द्वारा मगध के राजाओं के विषय में लिखे हुए निबंध के आधार पर, एशियाटिक रिसर्चेज भाग ९ पृ० ९९।)

(१) द्व्याश्रय में लिखा है कि मारवाड के राजा महेन्द्र ने अपनी बहन दुर्लभदेवी

राज की छोटी बहन दुर्लभदेवी ने राजा दुर्लभराज को अपना पति चुना और उसी के साथ उसका विवाह हो गया। इस विवाह के कारण दुर्लभदेवी से विवाह करने की इच्छा रखने वाले कितने ही दूसरे राजाओं के साथ दुर्लभराज की शत्रुता हो गई। उसी अवसर पर दुर्लभदेवी की छोटी बहन लक्ष्मी ने चामुण्ड के (सब से छोटे) पुत्र नागराज का पतिरूप में वरण किया।

इसके बाद दुर्लभराज के छोटे भाई नागराज के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम भीम पड़ा। मनुष्य मात्र पर तीन प्रकार के ऋण रहते हैं जो आचरण की पवित्रता से, बुद्धि का सम्पादन करने से, यज्ञयागादिक करने से तथा पुत्र उत्पन्न करने से चुकाये जा सकते हैं। इसलिए जब

के स्वयंवर में दुर्लभराज को निमन्त्रित किया था। वह अपने भाई नागराज और सेना सहित वहाँ गया। स्वयंवर में अंगराज, काशीराज, अवंतीश, चेदिराज, कुरुराज, हूणाधिप, मथुरेश, विन्ध्यदेशाधिप और आंध्रराज आदि सभी राजा आये थे। इनमें से दुर्लभराज को ही राजकुमारी ने वरण किया। महेन्द्र ने अपनी दूसरी बहन का विवाह दुर्लभराज के छोटे भाई नागराज के साथ कर दिया। इसके पश्चात् लौटते समय उपर्युक्त राजाओं के साथ युद्ध करके उनको हरा कर और विजयी होकर दुर्लभसेन अपने देश लौटा।

हेमाचार्य ने स्पष्टतः यह नहीं लिखा है कि महेन्द्र कहाँ का राजा था परन्तु टीकाकार अभयतिलक ने ही उसे मारवाड़ का राजा बताया है। वह सम्भवतः नाडोल के लक्ष्मणसिंह का पौत्र और विग्रहपाल का पुत्र था। दुर्लभ की बहन के साथ उसका विवाह होना संदेहास्पद ही है।

जबलपुर के पास त्रिपुरी (तेवर) में चेदियों का राज्य था। इसकी स्थापना कोकल्ल प्रथम ने नवम शताब्दी में की थी। मुंज ने इस वंश के दसवें राजा को युवराज बनाया था।

भीम का जन्म हुआ तो अपने को पितृऋण से मुक्त हुए जानकर दुर्लभ और नागराज बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने दरबार में महोत्सव मनाया। राजकुमार के जन्मते समय यह आकाशवाणी हुई कि यह महा पराक्रमी होगा।

जब भीम बड़ा हुआ तो दुर्लभ[१] ने उससे इस प्रकार इच्छा प्रकट की "मैं अपना आत्म कल्याण करने के लिए किसी तीर्थस्थान में जा बसूं और वहाँ तपस्या करूँ। तुम मुझे इस राज्यभार से मुक्त करो।" पहले तो भीम ने इनकार कर दिया परन्तु जब दुर्लभ और नागराज ने बहुत आग्रह किया तो उसने अपना राज्याभिषेक करा लिया। उस समय आकाश से पुष्पवर्षा हुई। तत्पश्चात् दुर्लभ और नागराज दोनों स्वर्ग-लोक को गये।

रत्नमाला में दिया हुआ दुर्लभराज का निम्नलिखित वृत्तान्त हमारे अनुसन्धान के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। 'दुर्लभ का कद ऊँचा और रंग गोरा था। वैराग्य की ओर उसका झुकाव अधिक था और वह पार्वती के पति शिवजी का अनन्य भक्त था। ज्ञानी होने के कारण उसे एकाएक क्रोध नहीं आता था। सत्संग, स्नान ध्यान, पुण्यदान और गगा नदी का तट उसे बहुत प्रिय थे। युद्ध की ओर तो जन्म से ही उसकी प्रवृत्ति नहीं थी।"

---

(१) जब दुर्लभसेन गद्दी पर बैठा तो उन्हीं दिनों उसके कुटुम्ब की रानिया और कु वरियां सोमनाथ की यात्रा करने गईं। उस समय जूनागढ के राव दयास उपनाम महीपाल प्रथम (ई० १००३ से १०१० तक) ने उनका अपमान किया। इस पर दुर्लभसेन ने अपनी सेना लेकर सोरठ पर चढाई की और राजधानी वामनस्थली (वंथली) को जीत लिया। राव जूनागढ दुर्ग के ऊपर के कोट में जा छुपा था उसको घेरा डाल कर परास्त किया।

हेमाचार्य ने चामुण्डराज के विषय में जो वात लिखी है वही वात प्रबन्धचिन्तामणि के कर्ता ने दुर्लभराज के विषय में दोहराई है। वह कहता है कि भीमदेव को राज्य सौंप कर वह काशीयात्रा को गया। मार्ग में मालवा के तत्कालीन राजा मुञ्जराज ने उसको रोका और उसके राजचिन्हों को छीन लिया। आगे लिखा है कि दुर्लभराज ने वैरागियों का सा वेश धारण करके अपनी यात्रा पूरी की और बनारस जाकर मर गया। उसने किसी प्रकार मालवा के राजा द्वारा किये हुए अपमान की वात भीमदेव तक पहुँचा दी थी। कहते हैं कि उसी समय से गुजरात और मालवा के वीच वैरभाव का बीजारोपण हुआ था।

भोजचरित में लिखा है कि दुर्लभराज मुञ्ज से मिला और उसने उसको राज्य वापस लेने की सलाह दी थी। यह सलाह भीमदेव को वहुत बुरी लगी। [१] प्राचीन काल में इस प्रकार राज्य छोडने की रीति राजपूतों में साधारणतया प्रचलित थी, क्योंकि उनका यह विश्वास था कि गया की पुण्य भूमि में मृत्यु होने से मोक्ष का मार्ग सरलता से प्राप्त होजाता है। परन्तु आगे चल कर उन्होंने इस प्रथा को अपने धर्म के शत्रुओं, इसलाम पंथियों पर चढ़ाई करने के रूप में वदल लिया था। यह वात सहज ही समझ में नहीं आती कि दुर्लभ को पुनः गद्दी पर बैठने योग्य क्यों कर समझा गया? राजपूतों के नियमानुसार कोई भी राजा एक वार राज्य छोड़ देने के पश्चात राजधानी में प्रवेश नहीं कर सकता। वह तो मृत के समान हो जाता है। प्रजा वन कर वह रह नहीं सकता और राजा अव रहा ही नहीं। अपने पहले वाले नाम को छोड़ कर वह साधारण त्यागियों जैसा कोई और ही नाम ग्रहण कर लेता है इस कार्य को और भी निश्चयात्मक

(१) देखिये टॉडकृत वेस्टर्न इण्डिया पृ० ७०—१०१

करने के लिए उसका पुत्तलविधान भी किया जाता है। राज्य-त्याग के बारहवें दिन उसके लिए पूर्ण शोक मनाया जाता है और उसके पुतले को चिता में रख दिया जाता है। उसका उत्तराधिकारी दाढ़ी मूँछ मुँड-वाता है और स्त्रियों के रोने पीटने से अन्तःपुर गूंज उठता है। [१]

कृष्णाजी कवि ने जो भीमराज का वर्णन किया है वह स्पष्टतया प्रीतिभाव से लिखा हुआ प्रतीत होता है। अभी, मुसलमान इतिहास लेखकों द्वारा बार बार कही हुई सोमनाथ की कथा को छोड कर हिन्दू-ग्रन्थकारों द्वारा लिखे हुए भीमदेव के राज्यकाल का वर्णन यहाँ लिखना चाहते हैं, परन्तु इससे पहले कृष्णाजी लिखित थोडे से भाग को उद्धृत करना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इससे उसके चरित्रनायक(भीमराज) ने जो पराक्रम गजनी के क्रूर, देवमूर्तिभञ्जक महमूद से टक्कर लेने में दिखाया था उसका पता चल जाता है।

"दुर्लभ के बाद भीमदेव (प्रथम) राजा हुआ। वह देवाधिदेव इन्द्र के समान प्रतापी, युद्ध कला में निपुण और धनुर्विद्या मे कुशल था। उसका शरीर पुष्ट और कद ऊंचा था, सारा शरीर बालों से भरा हुआ, चेहरा कुछ श्याम परन्तु देखने में सुन्दर था। वह बड़ा स्वाभिमानी और युद्धप्रेमी था। म्लेच्छों का सामना करने से वह डरता न था।"

---

(१) देखिये टॉड राजस्थान प्रथम भाग पृ० ७७। द्वितीय भाग पृ० ४५०, ४६६।

(ज त्यागी होकर चला गया हो उसकी बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करनी चाहिए, ऐसा धर्मशास्त्र में लिखा है। इसके बाद यदि उसका पता न चले तो उसका पुत्तल-विधान करना चाहिए। जिस दिन अग्निसंस्कार किया जावे, उसी दिन से सूतक माना जाता है और चौथे दिन उत्तर क्रिया की जाती है

जिस समय इंगलैण्ड मे कैन्यूट दी ग्रेट सॅक्सन (डेन) लोगों को हरा कर विन्चैस्टर के जीर्ण देवालय की ऐसी तड़क भड़क के साथ सजावट करने में व्यस्त था कि सोने चांदी और जवाहरात की जगमगाहट से दर्शक एकदम चकित हो जावें, उन्हीं दिनों में इधर सुदूर पूर्व मे एक दूसरा बादशाह, जो उतना ही वीर, योद्धा, साहसी और इमारतों का प्रेमी था, अपनी बहादुरी एक मूर्तियुक्त सुन्दर मन्दिर को नष्ट करके अपना नाम अमर करने में खर्च कर रहा था। जिस क्रिश्चियन देवालय की स्थापना मे नीति-कुशल पश्चिमीय बादशाह कैन्यूट लगा हुआ था, उससे यह देवालय शोभा में कहीं बढ़ चढ़ कर था। इसलाम के शत्रु हिन्दुओं पर, गजनी के सुल्तान ने ग्यारह बार चढ़ाई की और प्रत्येक बार उसके लोभ और लालसा की पूर्ति हुई—परन्तु, इधर मूर्तिपूजकों का अपने धर्म में अटल विश्वास बढ़ता रहा और महाकालेश्वर की इस मूल आज्ञानुसार यह भावना और भी दृढ़ता पकड़ती गई कि बहुत से लोग सच्चे भाव से सोमेश्वर की पूजा नहीं करते, उन्हीं को शिक्षा देने के लिए बार बार मुसलमानों के हमले होते हैं और उनकी विजय होती है। इसीलिए अब की बार धर्म के दीवाने महमूद गजनवी ने एक बार फिर अपनी सारी शक्ति संचित करके ऐसा अन्तिम प्रयत्न करने की ठानी कि जिससे उसका नाम उसके बाद में यदि बडे से बड़े इसलाम धर्म के प्रवर्तकों में नहीं तो मूर्तिभञ्जकों में अवश्य गिना जाय।

सोमनाथ पर चढ़ाई करने के लिए सन् १०२४ ई० के सितम्बर मास में महमूद गजनी से रवाना हुआ। तुर्किस्तान में से चुने हुए श्रेष्ठ और स्वेच्छा से आए हुए युवकों के झुण्ड के झुण्ड उसकी असंख्य सेना के साथ थे। एक महीने में वे लोग मुलतान पहुँचे। उनके

और हिन्दुस्तान के मैदानों के बीच में जो विशाल जंगल पड़ता था उसे पार करने के कठिन कार्य के लिए वे सन्नद्ध हुए। इस जगल को पार करने मे उन्हे सफलता मिली और शीघ्र ही अजमेर नगर [१] उनके हाथ में आ गया। पास ही की पहाडी पर बने हुये किले की ओर बिना ध्यान दिये वे आगे बढे। अरावली की तलहटी को पार करने के बाद अद्भुत आबू पहाड़ को डोलायमान अवस्था में पीछे छोड़ कर वे गुजरात के मैदानों मे जा पहुँचे और उनको सामने ही अणहिलवाड़ा का विस्तृत नगर दिखाई पड़ा। इस आकस्मिक हमले के लिए चामुण्डराज [२] तैयार न था। इस समय उसके सामन्त तितर बितर हो चुके थे। उसका ध्यान लड़ाई के लिए तैयार रहने की अपेक्षा बाग के पेड़ों तथा अपने बधाये हुये जलाशय की ओर अधिक लगा हुआ था। इस महान् आक्रमण से राजधानी को बचाने के लिए इस समय उसके पास कोई साधन भी न था। वह घबरा कर भाग गया और मुसलमानों की सेना वे रोक टोक नगर मे घुस गई।

---

(१) राजपूत इतिहास मे लिखा है कि चौहान राजा वीर बीलनदेव अथवा धर्मगजदेव जो लडाई में मारा गया था, उसने महमूद को अजमेरसे पीछे हटा दिया था (टॉड राजस्थान भाग २ पृ० ४४७, ४५१)

परन्तु बाद मे महमूद ने अजमेर पर हमला किया, लोग शहर छोड कर गये और आसपास का देश लूट व नाश के लिए खुला छोड गये। फिर, गढ बीतली (अजमेर का तारागढ) सामने आया और यहा महमूद हारा और घायल हुआ और उसे नादोल होकर लौटना पडा। नांदोल एक दूसरा चौहानों का स्थान था जिसको उसने लूटा और फिर नेहलवाड की ओर आगे बढा।'' वही पुस्तक पृष्ठ ४४८।

(२) चामुंडराज इस चढाई से चौदहवर्ष पहले सन् १०१० ई० में ही मर चुका था इस समय अणहिलवाड़ा की गद्दी पर भीमदेव राज्य करता था जो १०२२ ई० में गद्दी पर बैठा था।

इस बार महमूद की लड़ाई हिन्दू राजाओं से न होकर हिन्दू देवताओं से थी, इसलिए वनराज के नगर (अणहिलवाड़ा) को पीछे छोड़ कर उसकी सेना सोमनाथ की ओर जल्दी से आगे बढ़ी।

सौराष्ट्र के दक्षिण पश्चिमी किनारे पर वेरावल का छोटा सा बन्दर और अखात है। यह भूभाग अत्यन्त धनी, उपजाऊ और घने जंगलों से ढका हुआ है। यह छोटा सा अखात अपनी गम्भीर और रमणीय वक्रता को लिये हुए स्थित है और इसके किनारे की सुनहरी बालू समुद्र की लहरों से निरन्तर उलट पुलट होती रहती है। इसीलिए यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तान में इसकी बराबरी का दूसरा कोई स्थान नहीं है। इसी अखात की दक्षिणी सीमा बनाता हुआ एक छोटा सा भूभाग आगे निकला हुआ है जिस पर देवपट्टण अथवा प्रभास नगरी स्थित है। यहां केवल पत्थरों का बना हुआ एक किला है जिसमें चूने का प्रयोग नहीं हुआ है। इसके दोहरा दरवाजे हैं और वह कितनी ही समकोण बुर्जों द्वारा रक्षित है। किले के घेरे में लगभग दो मील जमीन आगई है। इसके चारों ओर पच्चीस फीट चौड़ी और लगभग इतनी ही गहरी खाई है जो ऐसी कारीगरी से बनाई गई है कि इच्छानुसार पानी से भरी जा सकती है। इस नगर की निर्माण-योजना, इधर उधर बिखरी पड़ी टूटी फूटी मूर्तियां, कितनी ही मस्जिदों और घरों पर अब तक विद्यमान इमारती सजावट आदि, विजेताओं द्वारा कितने ही परिवर्तन कर देने पर भी इस सोमनाथ के नगर के मौलिक हिन्दुत्व की सूचना पुकार पुकार कर उस भाषा में दे रहे हैं जिसमें कभी भूल नहीं हो सकती। नगर के नैर्ऋत्य कोण में किले की दीवार के पास ही एक चट्टान पर प्रसिद्ध महाकालेश्वर का मन्दिर है। जिसकी जड़ समुद्र के जल से धुलती रहती है, यद्यपि यह अब नष्ट

प्राय हो चुका है परन्तु इसके खण्डहरों से इसकी बनावट आदि की योजना और भवन निर्माण की सुन्दरता का अनुमान लगाया जा सकता है। मन्दिर के चारों ओर दूर दूर तक पड़े हुए खम्भों के टुकडों, कुराई का काम हुये पत्थरों और इस इमारत के कितने ही टूटे फूटे भागों से बहुत सी जमीन भरी पड़ी है। इसकी आश्चर्यजनक मजबूती की परीक्षा, इन्हीं कुछ वर्षों में, पास ही के वेरावल बन्दर की समुद्री डाकुओं से रक्षा करने के लिए, इसकी छतों पर चढ़ा कर चलाई गई भारी तोपों के द्वारा हो चुकी है।

यह तो अत्यन्त प्रसिद्ध और कीर्तिमान सोमेश्वर महादेव के मन्दिर की वर्त्तमान स्थिति का वर्णन हुआ। अब, मुसलमानो फौज के सामने जो दृश्य आया होगा उसके लिए तो एक दूसरी ही कल्पना करनी होगी। इसका गगनचुम्बी शिखर इसके पिछवाड़े के समुद्र के आसमानी क्षितिज से भी दूर निकला हुआ दिखाई पड़ता होगा। उस पर शिवजी का भगवॉ ध्वज फहरा रहा होगा। इसका द्वारमण्डप, रंग मण्डप, शकु के आकार का गुम्बज, विस्तृत चौक और खम्भोंवाले सभामंडप तथा प्रधानगृह के चारों ओर बने हुए अगणित छोटे छोटे मन्दिर, ये सब भगवान् सोमनाथ के मनोहर मन्दिर की अति रमणीय शोभा को बढ़ा रहे होंगे। जो मन्दिर आज पृथ्वी पर समतल होकर पड़ा है उसकी दीवारों से मसजिद की दीवारें बना ली गई हैं, अथवा अपने आप धीरे धीरे नष्ट हो गई हैं, अथवा कहीं कहीं उनमें गरीब मर्त्यों के निवासस्थान बन गये हैं। [१]

---

(१) सोमनाथ का यह वर्णन टॉड कृत वेस्टर्न इन्डिया तथा किटो के नोटिस् आन ए जरनीट्ट गिरनार से लिया गया है। (Journal of the Bengal Branch of the Asiatic Society Vol. vii p. 865

यद्यपि महमूद बहुत जल्दी ही बे रोक टोक यहां पहुँच गया था और जिस देश में होकर वह आया वहाँ भी विशेष अड़चन न थी परन्तु फिर भी सोमनाथ की रक्षा के लिए तथा आक्रमणकारियों को दण्ड देने के लिए तैयार सशस्त्र और अपनी जान पर खेलने वाले बहुत से धर्म प्रेमियों का समुदाय उसके सामने आया। राजपूतों ने एक दूत को भेजकर युद्ध की सूचना दी और अभिमान सहित यह भी बताया कि हिन्दुस्तान के देवताओं के अपमान का बदला लेने के लिए और उनको एक ही क्षण में नष्ट कर देने के लिए ही मुसलमानों को सर्वशक्तिमान् सोमेश्वर भगवान् ने पास खींच लिया है। दूसरे दिन प्रातःकाल पैगम्बर का हरा झण्डा फहराते हुए मुसलमानों ने किले की दीवार के पास आकर हमला बोल दिया। तीरन्दाजों ने थोड़ी ही देर में मोरचा तोड़ दिया और हमले की असाधारण प्रगति से आश्चर्य में भर कर हिन्दू लोग घबरा गये। किले की दीवारों को छोड़ कर वे पवित्र मन्दिर की चार-दीवारी में इकट्ठे हो गये और हताश से होकर आंखों में आंसू भर देव-मूर्ति के सामने दण्डवत् करते हुए सहायता की प्रार्थना करने लगे। आक्रमणकारियों ने इस अवसर को हाथ से न जाने दिया और "अल्ला हो अकबर" के नारे लगाते हुए सीढ़ियां लगा कर दीवार पर चढ़ गये। परन्तु, राजपूत लोग जिस प्रकार यकायक घबरा कर अव्यवस्थित हो गये थे उसी प्रकार उनको जोश भी आया और वे तुरन्त ही व्यवस्थित हो होकर सामना करने लगे। सूर्यास्त होते होते तो महमूद के सिपाहियों के पैर उखड़ गये गये और वे थकान व भूख से व्याकुल होकर भाग खड़े हुए।

दूसरे दिन, सुबह फिर लड़ाई हुई। ज्योंही मुसलमान दीवार पर चढ़ने लगे कि हिन्दुओं ने उन्हें उलटा धकेल दिया और उनकी मेहनत

पहले दिन की अपेक्षा अधिक असफल हुई।

तीसरे दिन, वे राजा लोग, जो देवालय की रक्षा हेतु इकट्ठे हुये थे, लड़ाई के लिए तैयार होकर, हारबंध बांध कर इस तरह खड़े हुए कि महमूद की छावनी से साफ दिखाई पड़ें। सुलतान ने उनके इस प्रयत्न को रोकने का निश्चय किया और सामान की रक्षा के लिए एक टुकड़ी फौज छोड़ कर वह स्वयं शत्रु से मोर्चा लेने को आगे बढ़ा। घमासान लड़ाई शुरू हुई और किस पक्ष की जीत होगी यह कहना कठिन हो गया। इतने ही में युवराज वल्लभसेन और उसका शूरवीर भतीजा युवक भीमदेव बहादुरों की एक नई सेना लेकर आ पहुँचे जिससे हिन्दुओं का साहस द्विगुणित हो गया। जब, महमूद ने अपनी सेना को ढिलमिल होते देखा तो वह घोड़े पर से कूद पडा और जमीन पर लेट कर अल्लाह से मदद मांगने लगा। फिर, वापस अपने घोड़े पर सवार होकर मदद के लिए एक सिरकाशियन सरदार का हाथ पकड़े हुये वह राजपूतों की ओर आगे बढ़ा और अपनी सेना का उत्साह बढ़ाने लगा। जिस बादशाह के साथ वे लोग कितनी ही बार युद्धस्थल में लड चुके थे, और घायल हो चुके थे उसको इस समय छोड़ते हुए उन्हें शर्म मालूम हुई और इसलिए वे एक ही सांस में हिन्दुओं पर टूट पड़े। इस जोर-दार हमले को हिन्दू लोग सहन कर न सके —मुसलमानों के टूट पडते ही पांच हजार हिन्दू मारे गये। अब, चारों ओर भगदड़ मच गई। सोमनाथ के रक्षकों ने जब अणहिलवाड़ा के राजध्वज को गिरते हुये देखा तो वे अपना स्थान छोड़कर समुद्र की ओर के दरवाजे से निकल कर भाग गए। लगभग चार हजार सिपाही बच निकले परन्तु इससे उनका बहुत सा नुकसान भी हुये बिना न रहा।

अब, किले की दीवारों और दरवाजों पर रक्षकों को रख कर गजनी का

विजयी सुलतान अपने पुत्रों और कुछ चुने हुए सरदारों के साथ सोमेश्वर के मन्दिर में घुसा। उसने चिकने पत्थर की भव्य इमारत देखी। इसका ऊंचा मण्डप कुराई का काम हुये रत्नों से जड़े हुये खम्भों के आधार पर स्थित था। अन्दर के निज-मण्डप में बाहर से प्रकाश नहीं आ सकता था। छत के बीच से लटकती हुई सोने की सांकल पर एक दीपक लटक रहा था और उसी के प्रकाश में सोमेश्वर का लिंग दिखाई पड़ रहा था। यह शिवलिंग नौ फीट ऊपर और छः फीट जमीन के अन्दर था। बादशाह की आज्ञा से इस मूर्ति के दो टुकड़े कर दिये गये, जिनमें से एक तो हिन्दुस्तान की सार्वजनिक मसजिद की सीढ़ियों में जड़ने के लिये दे दिया गया और दूसरा गजनी में महल के दीवानखाने के दरवाजे पर लगाने के लिये रखा गया। अन्य टुकड़े मक्का और मदीना जैसे धार्मिक नगरों की शोभा बढ़ाने के लिये रख लिये गये। जब महमूद इस प्रकार टुकड़े करने में व्यस्त था उसी समय एक ब्राह्मण-मण्डली ने आकर इस प्रकार प्रार्थना की "मूर्ति का कुछ भाग बचा है उसको यदि आप न तोड़ें तो हम एक बहुत बड़ी धनराशि आपकी भेंट करेंगे।" महमूद का मन डगमगाया और उसके उमराव उसको उचित सलाह देने लगे परन्तु थोड़ा सा विचार करने के बाद सुलतान बोला "मैं यह चाहता हूँ कि मेरे बाद, लोग मुझे मूर्तिभञ्जक कह कर याद करें न कि मूर्ति बेचने वाला।" ऐसा कह कर उसने लूट का काम जारी रखा और मूर्ति के नीचे भी उसको बहुत सा धन मिला।

मुसलमान इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि यद्यपि भीमदेव घेरा डालने में असफल हुआ परन्तु उसने तीन हजार मुसलमानों को नष्ट कर दिया था और देवपट्टण ले लेने के बाद वह सोमेश्वर के नष्ट

हुये मन्दिर से १२० मील की दूरी पर गणदाबा [१] के किले मे चला गया था। इधर सोमनाथ के धन को प्राप्त करके महमूद ने उसका

---

(१) अंग्रेजी मूल में इस किले का नाम गणादाबा (Gundaba) दिया है और गुजराती अनुवाद मे कंडहत (कच्छ का कंथकोट) लिखा है तथा नीचे लिखी टिप्पणी भी दी हैं :—

अंग्रेजी मूल मे "गणदाबा" लिखा है यह भूल है। उन्होंने शायद फरिश्ता के आधार पर ऐमा लिख दिया है। ब्रिग ने गणदेवी लिखा है—यह भी कल्पनामात्र हैं। फरिश्ता की कितनी ही प्रतियों में खडाब या खडब भी देखने में आता है। आसपास के वृत्तान्तो से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह लेख कच्छान्तर्गत कन्थकोट पर लागू होता है। यह किला एक ऊँची पहाडी पर तीन मील के घेरे में मजबूत बँधा हुआ है अत. भीम को यह उपयुक्त मालूम हुआ क्योंकि जब बारप ने आक्रमण किया तब मूलराज भी वही पर गया था।

कच्छ उस समय भीम के अधिकार में था, यह बात उसके एक ताम्रपट्ट से सिद्ध होती है। यह लेख इन्डियन एन्टीक्वैरी भाग ६, पृ० १९६ तथा उसी में बर्जस् द्वारा अणहिलवाडा के चालुक्यों के विषय में लिखे हुए लेख की छोटी सी पुस्तक के पृ० ४८–५१ में है। यह लेख कार्तिक शुदि १५ स० १०८६ का है—इससे कच्छ मंडल का मसूर ग्राम भट्टारक अजयपाल को दिया हुआ मालूम होता है।

इस स्थान को कंथकोट ठहराने में यहां की स्थिति देख कर कितने ही लोगों को सन्देह होता है। कच्छ द्वीप कहलाता है, इसके आसपास पानी रहता अवश्य था परन्तु वह उत्तर और पूर्व की ओर धीरे धीरे कम होता गया है। अब फिर कच्छ के पूर्वीय भाग में रण का पानी विस्तार प्राप्त कर रहा है। शिकारपुर के आगे कुछ समय से मछुए फिरने लगे हैं और सभवतः कुछ समय बाद यह फिर बन्दरगाह बन जायगा। कर्नल वाटसन का विचार है कि यह स्थान काठियावाड के किनारे मियाणी पर से ईशान कोण में कुछ मील पर स्थित गॉधवी नामक स्थान हो सकता है (काठियावाड गजट पृ० ८०) इसी प्रकार दूसरे विद्वानों के भी भिन्न भिन्न मत है परन्तु सभी बातों को लक्ष्य में रखते हुए यह स्थान कथकोट ही हो सकता है, यही हमारा अभिप्राय है। हमने इस स्थान का अच्छी तरह निरीक्षण भी किया है।

पीछा करने की तैयारी की। वह उधर चला तो गया परन्तु उसे किले के पास पहुँचना अशक्य दिखाई पड़ा क्योंकि इसके चारों ओर पानी भरा हुआ था, केवल एक ही जगह ऐसी थी जिधर से उतरा जा सकता था। महमूद ने अपने लश्कर समेत नमाज पढ़ी और अपने भाग्य को कुरान पर छोड़ कर सेना सहित जिधर से पानी का उतार था उधर से उतर पड़ा। सकुशल दूसरी पार पहुँच कर उसने तावड़तोड़ हमला कर दिया। मुसलमानों के पहुँचते ही भीमदेव भाग गया और आक्रमण-कारियों ने सहज ही में किले पर अधिकार करके रक्षकों की भीषण मार काट शुरू कर दी। स्त्रियां और बच्चे कैद कर लिये गये और गुणदावा के किले को लूटने से महमूद के खजाने की और भी वृद्धि हो गई।

इस प्रकार विजयी होकर महमूद अणहिलवाड़ा लौटा, और ऐसा प्रतीत होता है कि उसने वर्षा ऋतु वहीं व्यतीत की। कहते हैं कि उसको वहां की जमीन इतनी उपजाऊ, वहां की हवा इतनी स्वच्छ और नीरोग तथा वह देश इतना रम्य और हरा भरा प्रतीत हुआ कि उसने अपना गजनी का राज्य शाहजादा मसूद को सौंप कर वहीं अपनी राजधानी बना कर कुछ वर्षों रहने का विचार किया। जवाहरात इकट्ठे करने का महमूद को बच्चों का सा शौक था। लका के जवाहरात और पेगू की खानों के किस्से सुन सुन कर उसकी कल्पना के पंख लग गए थे और उसने इन देशों को जीतने के लिए समुद्री फौज तैयार करने का विचार किया था। परन्तु, जब उसने अपने मंत्रियों की गम्भीर सलाह पर विचार किया, तो उसने लौट जाना ही उचित समझा।

विलासी चामुण्डराज को शायद उसके देश की इस दुर्दशा के कारण

---

(१) बहुत से लोग यह मानते हैं कि महमूद की चढ़ाई के समय चामुण्ड

ही अपना राज्य छोड़ना पड़ा था[१] न कि उसके विषय में कही हुई बहन के साथ गोत्रगामी सम्बन्ध होने की बातों के कारण। कुछ भी हुआ हो, परन्तु इस घटना के बाद में उसका कही भी कोई विवरण नही मिलता। जब महमूद और उसके कार्यकर्ताओं ने गुजरात मे किसी हकदार और योग्य करद राजा को स्थापित करने लिये तलाश की तो उनका ध्यान वल्लभ और दुर्लभसेन, इन दोनों भाइयों की ओर गया प्रतीत होता है। युवराज वल्लभसेन बहुत बुद्धिमान् और विद्वान् था। सभी ब्राह्मणों को उसकी बुद्धिमत्ता में विश्वास था। उसके विषय में यह बात भी आग्रहपूर्वक कही गई कि एक परगना पहले ही से उसके अधिकार मे था और उसका व्यवहार इतना न्यायपूर्ण और विश्वस्त था कि यदि वह एक बार कर देना स्वीकार कर लेगा तो फिर कर की रकम प्रतिवर्ष गजनी भेजने मे भूल न होगी। उधर दुर्लभसेन के पक्ष वालों ने कहा कि वह दर्शनशास्त्र के अध्ययन और योगाभ्यास में लगा हुआ था, इसलिये राज्य उसी को मिलना चाहिए। परन्तु उसके विपक्षियों ने इसका विरोध किया और कहा "वह दुष्ट स्वभाव का पुरुष है, ईश्वर की उस पर अकृपा है, और जो वह संसार से विरक्त सा रहता है सो अपने मन से नहीं वरन् उसने कितनी ही वार गद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न किया था और उसके भाइयों ने उसे कैद कर लिया था इसलिए अब अपने बचाव के लिए उसने यह ढोंग रच रखा है। इस विवाद का उत्तर देते हुए सुल्तान ने कहा कि यदि युवराज वहाँ उपस्थित होकर राज्य के लिए प्रार्थना करता तो वह उसे स्वीकार कर सकता था परन्तु

अथवा जामुण्ड अणहिलवाड़ा का राजा था और अपने देश की दुर्दशा देखकर विरागी हो गया था, परन्तु ऐसी बात नहीं थी। इब्न असीर सबसे पुराना लेखक है, उसने स्पष्ट लिखा है कि उस समय भीमदेव प्रथम अणहिलवाड़ा का राजा था।

जिसने न कोई सेवा ही की और न सलाम बजाने ही आया उसको इतना बड़ा राज्य किस तरह दिया जाय ? इस प्रकार उसने वनवासी दुर्लभसेन को अधिक पसन्द किया, जिसने गुजरात का राज्य प्राप्त करके काबुल और खुरासान (कंधार) कर भेजना स्वीकार कर लिया। इसके बाद उसने सुल्तान से प्रार्थना की "मेरा पूरा अधिकार जमने के पहले ही वल्लभसेन अवश्य ही मुझ पर आक्रमण करेगा इसलिये थोडी सी सेना मेरी रक्षा के लिये यहां छोड़ दी जावे।" दुर्लभसेन की इस प्रार्थना पर महमूद के मन में यह बात आई कि देश को छोड़ने के पहले वल्लभसेन को नष्ट करने का उपाय किया जावे और थोड़े ही समय बाद वल्लभसेन उसके सामने कैद करके लाया गया। (१)

(२) इस प्रकार एक वर्ष से भी अधिक समय गुजरात में बिता कर महमूद ने घर की ओर प्रस्थान करने का विचार किया और दुर्लभसेन को

---

(१) द्व्याश्रय के गुजराती अनुवाद पृ० १०२ में इस प्रकार टिप्पणी दी है—

"चामुण्डराज बहुत कामी था, इसलिये उसकी बहन चाचिणी देवी ने उसको पदच्युत किया। वह अपने पुत्र वल्लभराज को गद्दी सौंपकर स्वयं त्यागी बन कर काशी की ओर चल दिया। मार्ग में मालवा के लोगों ने उसे लूट लिया इसलिये वापिस लौट कर उसने वल्लभराज को आज्ञा दी कि मालवा के राजा को दण्ड दे।"

इसके अनुसार वल्लभ ने मालवा पर चढाई की परन्तु बीच ही में उसके शीतला निकली और वह मर गया (१०१० ई०)। इससे स्पष्ट है कि वल्लभराज ने तो अधिक दिन राज्य ही नहीं किया। इसके पश्चात् चामुंड ने अपने दूसरे पुत्र दुर्लभराज को राजा बनाया जिसने १०१० से १०२२ ई० तक राज्य किया और इसके बाद वह अपने भाई नागराज के पुत्र भीमदेव को राज्य सौंप कर तीर्थवास करने चला गया; अतः महमूद की चढाई के समय भीमदेव ही राजा था। यह संभव है कि अपने धर्माभिमान से प्रेरित होकर दुर्लभराज ने त्यागी होते हुए भी महमूद के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया हो।

की प्रार्थना के अनुसार युवराज वल्लभसेन को भी अपने साथ गजनी ले जाने का निश्चय किया। वह जिस मार्ग से आगे बढ़ा उसको अपराजित भीमदेव ने और उसके मित्र अजमेर के राजा बीसलदेव ने रोक लिया था। लडाई और जलवायु की प्रतिकूलता के कारण मुसलमानी फौज बहुत थोड़ी रह गई थी इसलिए अब और लड़ाई की जोखिम न उठा कर महमूद ने सिन्ध के पूर्व में होकर नये रेतीले मार्ग से जाने का निश्चय किया। इस रास्ते में भी उसको बड़े बड़े उजाड़ मैदान पार करने पड़े

---

(२) सोमनाथ पर महमूद की चढाई का यह वृत्तान्त ब्रिग कृत फरिश्ता, आईन–ए–अकबरी, बर्ड कृत मिरात–ए–एहमदी, और एलफिन्स्टन कृत हिन्दुस्तान के इतिहास में से लिया गया है—

जब महमूद गजनवी ने अणहिलवाडा पर कब्जा किया उस समय के राजा का नाम आईन–ए–अकबरी व मिरात–ए–अहमदी के कर्ताओं ने स्पष्टतया चामुंड [अथवा जामुंड जैसा कि वहा लिखा है] लिखा है। हम देख चुके हैं कि हिन्दू ग्रन्थों में महमूद के हमले का कोई वृत्तान्त नहीं मिलता है। हाॅ, उनसे केवल इतनी सी बात मालूम होती है कि चामुंड अपने पुत्र वल्लभसेन की मृत्यु के बाद भी जीवित रहा था। मुसलमान इतिहासकारों ने जो वृत्तान्त दो दाबिशलीम के बारे में लिखा है उन्हें वल्लभसेन और दुर्लभसेन मान लेने में कोई आपत्ति न होगी और जो "ब्रह्मदेव" के विषय में लिखा है वह भीमदेव के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। वल्लभ और दुर्लभ के विषय में जो बातें लिखी हैं उनमें से कौनसी बात दोनों भाइयों में से किसके साथ लागू होती है इसका निर्णय करना कठिन है। चामुंडराज के बाद में थोडे से दिन वल्लभसेन ने राज्य किया, यह बात सभी वर्णनों में मिलती है। चौथे प्रकरण के अन्त में ताम्रपट्ट के आधार पर दी हुई मूलराज प्रथम से लेकर भीमदेव द्वितीय तक के राजाओं की नामावली से भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि वल्लभसेन ने राज्य नहीं किया परन्तु दुर्लभसेन गद्दी पर अवश्य बैठा था। यदि हम यह मानलें कि चामुंड ने युवराज वल्लभदेव के लिए राज्य

जहां पानी के बिना उसकी बहुत सी फौज नष्ट हो गई और बहुत से घुड़सवारों को दानापानी बिलकुल न मिल सका। तीन दिन और तीन रात एक हिन्दू पथ-प्रदर्शक उनको रेतीले उजाड़ में आडे रास्ते ले गया। बहुत से सिपाही असह्य धूप और प्यास के मारे व्याकुल होकर मर गये। जब उस पथप्रदर्शक को बहुत दुख दिया गया तो उसने यह स्वीकार किया कि सोमनाथ का पुजारी था और उस देवालय का नाश करने वालों से बदला लेने के लिये तथा मुसलमानी सेना को नष्ट

छोड़ दिया था और वल्लभसेन भीमदेव के साथ महमूद का सामना करने के लिये आया था तो वृत्तान्त की सगति बैठ जाती है और जो कुछ थोडा बहुत वृत्तान्त हिन्दू ग्रन्थों में मिला है तथा जो कुछ मुसलमानी वृतान्तों मे लिखा है उसके साथ भी सामंजस्य हो जाता है। ऐसी दशा में स्वाभाविकतया महमूद ने दुर्लभसेन को ही अपना करद राजा बनाने के लिए चुना होगा। यह सभव है कि दुर्लभ ने अपने भाई के विपक्ष में अपने ही देश के मनुष्यों का एक दल बना रखा होगा, परन्तु यह मानने में कि युवराज को ही महमूद ने पसन्द किया होगा—एक अड़चन पड़ती है। वह यह कि उस राज्य पर उसका तो पूरा हक था ही, इसको कोई इन्कार भी नहीं कर सकता था, फिर उसको हटा कर उसके भाई को लोग राजा बना देंगे, इस बात का डर उसको क्योंकर हुआ? फिर मुसलमान इतिहासकारों के लेखों मे ऐसा ही प्रतीत होता है कि जैसे वनवासी "दबीशलीम" के चुनाव के कारण गद्दी पर बैठने वालों का अनुक्रम ही टूटता था। ऐसी दशा में उस कथा को तो छोड़ ही देना पड़ेगा जिसके अनुसार दोनों दलों का भाग्य उलट गया और वनवासी दुर्लभसेन को उसी तैहखाने में पड़ना पड़ा जो उसने युवराज के लिए तैयार कराया था। यद्यपि इस विषय में मिस्टर एल्फिन्स्टन ने लिखा है कि यह कोई असम्भव बात नहीं है और यह किसी शक्तिशाली हिन्दू आचार्य की चालों का सच्चा चित्र हो सकता है जो कि किसी मुसलमान लेखक ने कल्पना करके लिख दिया होगा।

करने के लिये उसने यह प्रयत्न किया था। इस पर बादशाह ने उसको मृत्यु दण्ड दिया। उस समय सांझ हो चुकी थी इसलिये बादशाह ने नमाज पढ़ी और सब के उद्धार के लिये खुदा से प्रार्थना की। मुसलमान इतिहासकार का कहना है कि उसी समय उत्तर दिशा में एक तारा दिखाई दिया और उसी तरफ लश्कर आगे बढ़ा। प्रातःकाल होते होते वे लोग एक सरोवर के किनारे जा पहुँचे।

हुये उसे राज्य देने पर जोर दिया था परन्तु उसने इसको स्वीकार ही नहीं किया।

तारीखों के विषय में एक और बडी अड़चन पडती है उसका यहा पर वर्णन अवश्य कर देते हैं परन्तु उसको हल करना बडा कठिन है। मुसलमानी इतिहास के प्रमाण से तो महमूद ने १०२४–५ ई० में गुजरात पर विजय पाई परन्तु हिंदू ग्रन्थकार लिखते हैं कि वल्लभसेन [जिसने ६ महीने ही राज्य किया] और दुर्लभसेन १010 ई० में गद्दी पर बैठे और भीमसेन १०२२ में गद्दी पर बैठा।

[फरिश्ता के आधार पर यह बात मान कर कि महमूद गजनवी के हमले के समय चामुण्ड ही राज्य करता था, मिस्टर फार्बस एक अजीब गडबड में पड़ गये हैं। इब्न असीर (११६० ई०) का सबसे पुराना प्रमाण है। उसने लिखा है कि उस समय भीमदेव प्रथम राज्य करता था। द्व्याश्रय के आधार पर भी यही स्पष्ट हो जाता है। उसमें लिखा है कि चामुण्ड युवराज वल्लभसेन को राज्य देने के लिए बहुत उत्सुक था, परन्तु वह (युवराज) अच्छी तरह राज्य की बागडोर सम्हालने भी नहीं पाया था कि मालवा पर चढाई करते हुए १०१० ई० में शीतला के रोग से उसकी मृत्यु हो गई। इसलिये यह स्पष्ट है कि उसने कोई राज्य ही नहीं किया। इसके पश्चात् चामुण्ड ने दुर्लभराज को राज्य सौंप दिया और उसने १०१० से १०२२ ई० तक राज्य किया और फिर १०२२ ई० में अपने भतीजे भीमदेव को राज्य सौंप कर वन में चला गया [अथवा उसको चला जाना पडा] इसलिये हमले के समय भीमदेव ही राजा था और वह पहले तो मुसलमानी सेना से हार कर भाग गया था परन्तु बाद में जब वे (मुसलमान) लौटने लगे तो उन पर उसने हमला किया। दुर्लभ को महमूद ने अपना प्रतिनिधि बना कर राज्य दे दिया

अन्त में सोमनाथ के विजेता सुलतान पहुँचे और वहां से गजनी लौट गये।

होगा, यह असम्भव नहीं है, परन्तु वनवासी दाबीशलीम और ब्राह्मण द्वारा महमूद को जंगल में भटकाये जाने की बात किम्वदन्ती मात्र मान कर अविश्वसनीय है]

यहां दाबिशलीम शब्द से दुर्लभसेन का तात्पर्य लिया है परन्तु यह फारसी शब्द है और अन्य फारसी भाषा के ग्रन्थों में इसका प्रयोग हिन्दुस्तान के सभी राजाओं के लिए किया गया है। इसलिए यह दुर्लभसेन के लिए ही लिखा गया है, यह विश्वस्त रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी रोजतुल सफा के कर्ता ने दाबिशलीम का उल्लेख करके गड़बड़ी खड़ी कर दी है। इस ग्रन्थ के पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों ने तो भीमदेव प्रथम का ही उल्लेख किया है। इस ग्रन्थकार ने ऐसा क्यों लिखा है इसका कोई आधार ज्ञात नहीं होता है। इण्डियन एण्टीक्वेरी के भाग ८ पृ० १५३ में स्वर्गीय वॉटसन ने एक मुसलमानी तवारीख का भावार्थ छपवाया था उसमें भी पाटण के सोमनाथ के विषय में ऐसी ही अप्रामाणिक बातें लिखी हैं।



प्रकरण ६

भीमदेव (प्रथम) १०२२ ई० से १०७२ ई० तक। ५० वर्ष

भीमदेव प्रथम ने सन् १०२२ ई० से १०७२ ई० तक राज्य किया। उसके कार्यकलाप का सारांश द्व्याश्रय के लेखक ने लिखा है। यद्यपि अपने पक्ष के लिए जरा सी भी विरुद्ध पड़ती हुई बात को दबा देने का दोष, अन्य हिन्दू लेखकों के समान, इस लेखक में भी आगया है, परन्तु जिस समय का वर्णन उसने लिखा है, उसके निकटतम समय में वह वर्तमान था और उसके लेखों द्वारा दूसरे स्रोतों से भी सामग्री एकत्रित करने में सहायता मिलती है इसीलिए हमने इसे ग्रहण किया है। हेमाचार्य ने लिखा है—

"भीमदेव ने बहुत अच्छी तरह राज्य किया। वह व्यभिचारियों को कभी क्षमा नहीं करता था, चोरों को युक्ति से पकड़ कर शिक्षा देता था इसलिए उसके राज्य में चोरी कम होती थी। वह जीवरक्षा बहुत करता था। और तो क्या, उसके समय में बाघ भी जङ्गल में किसी को नहीं मार सकता था। कितने ही राजाओं ने शत्रु के भय से भाग कर भीमदेव की शरण ली थी और कितनों ही ने आकर उसके राज्य में नौकरी करली थी इसलिये वह 'राजाधिराज' कहलाया। पुण्ड्र और आन्ध्र के राजा उसके पास नजरें भेजते थे, मगध में भी उसकी कीर्ति फैल चुकी थी। कवियों ने मागधी और अन्य भाषाओं में कविता करके उसके पराक्रम का बखान किया, इसलिये उसकी कीर्ति इतनी फैल

गई थी कि दूर-दूर के लोग भी उससे इस प्रकार परिचित हो गये थे मानों उन्होंने उसे आंखों ही देखा हो।"

एक बार भीमदेव के गुप्तचरों ने आकर कहा "इस पृथ्वी पर सिंधुराज (१) और चेदि (२) का राजा आपकी कीर्ति से घृणा करते हैं और आपके अपयश का बखान करने वाली पुस्तकें लिखवाते हैं। सिन्धुराज तो यहां तक धमकी देता है कि 'मैं एक बार भीम की खबर लूंगा। यह राजा जैसी हिम्मत करता है वैसा ही उसमें बल भी है। उसने बल से छोटे छोटे द्वीपों के राजों और गढ़पतियों के साथ शिवसाण के राजा को भी जीत लिया है।"

जब भीम ने ये बातें सुनीं तो उसने अपने मन्त्रियों को बुलाया और उनसे इस विषय में बातचीत करने लगा। इसके बाद शीघ्र ही उसने सेना इकट्ठी करके प्रस्थान किया। सिंध से मिला हुआ ही पंजाब देश है जिसमें पांच नदियाँ बहती हैं। इन पांचों का पानी इकट्ठा होकर यह समुद्र के समान बना रहता है। मजबूत किले के समान इस पानी के प्रवाह के बल पर ही सिन्धुराज अपने शत्रुओं को जीत कर सुख की नींद सोता था। पहाड़ियों को तोड़ तोड़ कर

बड़े बड़े पत्थरों से भीम की सेना ने पुल बनाना आरम्भ किया और जब यह पूरा होने को आया तो जिस प्रकार अग्नि पर रखे हुये दूध में उफान आता है उसी प्रकार इस प्रवाह का पानी उमड़ कर कई भागों में बट गया और दूसरे मार्ग से बहने लगा। सूखे और हरे पेड़ तथा मिट्टी और पत्थर भी पुल बनाने के काम में लिये गये थे। जब काम पूरा हो गया और भीम ने उसका निरीक्षण किया तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और सब लोगों को प्रसन्न करने के लिए उसने शक्कर और दूसरी मिठाइयां बांटी। इसके बाद पुल को पार करके वह सेना सहित सिन्ध में घुस गया। वहां का हम्मुक (१) नाम का राजा उसका सामना करने आया। घमासान लड़ाई शुरू हुई। चन्द्रवंशी भीम बड़े शौर्य के साथ लड़ा और बहुत से अन्य योद्धाओं के साथ सिंध के राजा को अपने वश मे कर लिया।

इसके बाद भीमदेव ने चेदि पर चढ़ाई की और रास्ते में जो राजा आये उनको आधीन करता गया। चेदि के राजा कर्ण ने (२) जब यह सुना कि भीम आ पहुँचा है तो उसने पहाड़ी और जगली लोगों की एक सेना इकट्ठी की। परन्तु उसने भीम की कीर्ति अच्छी तरह सुन रखी थी इसलिये सोचा कि वह उसको न जीत सकेगा। अत उसने लड़ाई का विचार छोड़ कर सन्धि की प्रार्थना की। इतने ही में उसकी पैदल

(१) हम्मुक यह सिन्ध का हम्मीर सुमरा (द्वितीय) होगा क्योंकि उसका समय भी यही था। हम्मीर सुमरा ने कच्छान्तर्गत कीर्तिगढ के केशर मकवाणे को मारा था और उसका पुत्र हरपाल मकवाणा वहा से भाग कर अणहिलवाड़ा में राजा कर्ण सोलकी की शरण में चला गया जहा पर उसको झालावाड़ प्रान्त इनाम में मिला था।

(२) कर्ण के पिता का नाम गागेयदेव और उसके पुत्र का नाम यशकर्ण था। दाहल चेदि देश कहलाता था।

गई थी कि दूर-दूर के लोग भी उससे इस प्रकार परिचित हो गये थे मानों उन्होंने उसे आंखों ही देखा हो।"

एक बार भीमदेव के गुप्तचरों ने आकर कहा "इस पृथ्वी पर सिधुराज (१) और चेदि (२) का राजा आपकी कीर्ति से घृणा करते हैं और आपके अपयश का बखान करने वाली पुस्तकें लिखवाते हैं। सिन्धुराज तो यहां तक धमकी देता है कि 'मैं एक बार भीम की खबर लूंगा। यह राजा जैसी हिम्मत करता है वैसा ही इसमें बल भी है। इसने बहुत से छोटे-छोटे द्वीपों के राजों और गढ़पतियों के साथ शिवसाण के राजा को भी जीत लिया है।"

जब भीम ने ये बातें सुनीं तो उसने अपने मन्त्रियों को बुलाया और उनसे इस विषय में बातचीत करने लगा। इसके बाद शीघ्र ही उसने सेना इकट्ठी करके प्रस्थान किया। सिंध से मिला हुआ ही पंजाब देश है जिसमें पांच नदियाँ बहती हैं। इन पांचों का पानी इकट्ठा होकर एक समुद्र के समान बना रहता है। मजबूत किले के समान इस पानी के प्रवाह के बल पर ही सिन्धुराज अपने शत्रुओं को जीत कर सुख की नींद सोता था। पहाड़ियों को तोड़ तोड़ कर

---

(१) धारा नगरी के सिन्धुराज (सिन्धुल) का समय ९९७ से १०१० तक है। इसके बाद भोजदेव राजा हुआ (१०१०–१०५५) इसलिए उस समय इसका होना ही अधिक संगत प्रतीत होता है। यह शब्द 'सिन्धुराज' सिन्धु देश के राजा के विषय में भी लागू होता है।

(२) चेदि से आजकल के चन्देल से तात्पर्य है जो गोंडवाना में है। यह श्रीकृष्ण के शत्रु शिशुपाल का देश था। (चन्देल, यह आजकल बुन्देलखण्ड है) तत्कालीन राजा कर्णदेव कलचुरी (१०४०–७० ई०) ने बाद में मालवा की लड़ाई में भीम का साथ दिया था और उसके पुराने शत्रु कीर्तिवर्मा चन्देला से था।

बड़े बड़े पत्थरों से भीम की सेना ने पुल बनाना आरम्भ किया और जब यह पूरा होने को आया तो जिस प्रकार अग्नि पर रखे हुये दूध में उफान आता है उसी प्रकार इस प्रवाह का पानी उमड़ कर कई भागों में बट गया और दूसरे मार्ग से बहने लगा। सूखे और हरे पेड़ तथा मिट्टी और पत्थर भी पुल बनाने के काम में लिये गये थे। जब काम पूरा हो गया और भीम ने उसका निरीक्षण किया तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और सब लोगों को प्रसन्न करने के लिए उसने शक्कर और दूसरी मिठाइयां बांटी। इसके बाद पुल को पार करके वह सेना सहित सिन्ध में घुस गया। वहां का हम्मुक (१) नाम का राजा उसका सामना करने आया। घमासान लड़ाई शुरू हुई। चन्द्रवंशी भीम बडे शौर्य के साथ लड़ा और बहुत से अन्य योद्धाओं के साथ सिंध के राजा को अपने वश मे कर लिया।

इसके बाद भीमदेव ने चेदि पर चढ़ाई की और रास्ते मे जो राजा आये उनको आधीन करता गया। चेदि के राजा कर्ण ने (२) जब यह सुना कि भीम आ पहुँचा है तो उसने पहाड़ी और जगली लोगों की एक सेना इकट्ठी की। परन्तु उसने भीम की कीर्ति अच्छी तरह सुन रखी थी इसलिये सोचा कि वह उसको न जीत सकेगा। अत: उसने लड़ाई का विचार छोड़ कर सन्धि की प्रार्थना की। इतने ही में उसकी पैदल

(१) हम्मुक यह सिन्ध का हम्मीर सुमरा (द्वितीय) होगा क्योंकि उसका समय भी यही था। हम्मीर सुमरा ने कच्छान्तर्गत कीर्तिगढ के केशर मकवाणे को मारा था और उसका पुत्र हरपाल मकवाणा वहां से भाग कर अणहिलवाडा में राजा कर्ण सोलङ्की की शरण में चला गया जहां पर उसको झालावाड़ प्रान्त इनाम में मिला था।

(२) कर्ण के पिता का नाम गागेयदेव और उसके पुत्र का नाम यशकर्ण था। दाहल चेदि देश कहलाता था।

और घुड़सवार सेना लड़ाई के लिए तैयार होकर आगे आई, और राजा की नौबत तथा अन्य बाजे बजने लगे । उस समय भीमदेव ने अपने दामोदर नामक (१) सान्धिविग्रहिक द्वारा कहलाया कि यदि (चेदि-राज) कर देना स्वीकार करे तो उसकी सन्धि प्रार्थना स्वीकृत हो सकती है। दामोदर ने कहा "हमारे राजा ने दशार्णव, काशी, तथा अन्यान्य देशों के राजों को अपने आधीन कर लिया है । गजगंध के भद्रभट्ट नामक राजा ने दूर देश से आकर शरण ली है। तैलंग देश के तंतीक राजा ने अपने शस्त्रास्त्र फेंक कर आधीनता स्वीकार करली है। अयोध्या के राजा ने पहले कभी किसी को कर नहीं दिया था परन्तु उसने भी भीम को अपना वह खजाना अर्पित कर दिया है, जो उसने गार्द के राजा से प्राप्त किया था।" थोड़ी सी हिचकिचाहट के बाद कर्ण ने भी इन बड़े बड़े राजाओं के विषय में सुन कर उनका अनुकरण करना स्वीकार किया तथा दामोदर के साथ सोना, हाथी पवन सदृश वेगवान् एक घोड़ा, तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं और इनके साथ ही वह सुनहरी पालकी [२] भी जो उसने मालवा के राजा भोज से प्राप्त की थी अणहिल-वाड़ा के राजा की सेना में उपहारस्वरूप भेज दीं। इस भेट को लेकर सफलकाम प्रतिनिधि दामोदर भीमदेव के पास लौटा। भीमदेव ने प्रस्तावित शर्तों को स्वीकार करके मन्त्रियों से सलाह कर उनकी पुष्टि

---

(१) मेरुतु ग ने डामर नाम लिखा है।

(२) भोज ने कर्ण को सोने की पालकी भेट में दी थी परन्तु जब भीम ने राज्य छीन लेने का प्रपंच रचा तब वह भीम से मिल गया और उसको कितनी ही वस्तुएं भेट कीं जिनके साथ ही उसकी यह पालकी भी उसको अर्पण की थी।

(धार राज्य का इतिहास पृ० ६४)

की। इसके बाद वह जयोत्सव मनाता हुआ अणहिलवाड़ा लौटा। वहां के लोगों ने नगर को इस प्रकार सजाया मानों कोई उत्सव ही हो, और अच्छी-अच्छी पोशाके पहन कर उसकी अगवानी की। उसके समय में प्रजा पर कोई आपत्ति नहीं आई इसीलिये वह अपने प्रजाजनों को परम प्रिय लगता था। उसके समय मे देश में छोटी मोटी चोरीचकोरी भी न हो पाती थी। केवल यही नहीं, बाहरी डाकों व हमलों से भी देश के लोग सुरक्षित थे और शहरों व गावों में लूट तथा आग का भय बिलकुल नहीं था।

इस प्रकार हेमाचार्य ने यह वृत्तान्त लिखा है। इसमें भीमदेव, मालवा के प्रसिद्ध राजा भोज एव एक और सुदूर पूर्वीय राजा कर्ण के राज्य के विषय में जो कुछ उसने लिखा है वह अन्य लेखकों के मत से भी मिलता है। उसने पजाब और सिन्ध की लड़ाइयों के विषय मे लिखा है, इससे शायद उस लड़ाई से तात्पर्य है जो भीमदेव के समय में गजनी के सुलतान मोदूद के सैनिकों और हिन्दुओं के बीच इस "धर्मक्षेत्र" से मुसलमानों को निकाल देने के लिए हुई थी। इस लड़ाई में भीम ने कोई भाग नहीं लिया, ऐसा अन्यत्र लिखा हुआ है। इस अवसर पर युद्ध में भाग लेना अस्वीकार करके उसने अन्य राजाओं को अपने विरुद्ध शस्त्र उठाने का कारण उत्पन्न कर दिया था। इन वृत्तान्तों के सम्बन्ध में जो दूसरे प्रमाण मिलते हैं अब हम उन्हीं का वर्णन करते हैं।

उस समय मालवा के परमार राजा सिंहभट्ट (१) के कोई पुत्र नहीं था। उसको मूंज नामक घास की झाड़ी में एक बच्चा मिला इसलिए

(१) सिंहभट्ट, सिंहदन्त, श्रीहर्ष, ऐसा भी पाठान्तर है।

उसने उसका नाम मुंज रखा और अपना पुत्र बना लिया। इसके पश्चात् सिंहभट्ट के सिंधुल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। मरते समय राजा सिंहभट्ट ने मुंज को पास बुलाकर अपने बाद वही (मुंज) गद्दी पर बैठे, यह इच्छा प्रकट की और उसे उसके जन्मसम्बन्धी एवं जिस प्रकार वह उसका पुत्र हुआ, यह सब कथा भी कह सुनाई, साथ ही छोटे भाई सींधुल पर प्रीति भाव बनाये रखने की भी अभ्यर्थना की।

गद्दी पर बैठने के बाद मुञ्ज ने अपने योग्य मंत्री रुद्रादित्य की सहायता से राज्य को खूब बढ़ाया, परन्तु सिंहभट्ट की अन्तिम शिक्षा और अपने जन्म के रहस्य को जानने वाली अपनी स्त्री को मरवा कर तथा गद्दी के मूल अधिकारी सिंधुल को मालवा से बाहर निकाल कर उसने अपनी क्रूरता का भी परिचय दिया। ऐसा मालूम होता है कि सिंधुल उन्मत्त स्वभाव का राजकुमार था और उसने मुंज की आज्ञा का उल्लङ्घन करके उसे रुष्ट कर दिया होगा। कुछ समय तक वह गुजरात में कासद (अहमदाबाद से चौदह मील की दूरी पर काशिन्द्रा पालड़ी) नामक गांव में रहा और वहां एक गांव भी बसाया। अन्त में सिंधुल फिर मालवा लौटा और मुंज ने उसका बहुत आदर सत्कार किया तथा राज्य का कुछ भाग भी उसके आधीन कर दिया। परन्तु, यह मेल अधिक समय तक न चल सका और अन्त में मुंज ने उसको कैद करके उसकी आखें निकलवालीं।

प्रसिद्ध भोजराज सिंधुल का पुत्र था। वह बाल्यावस्था में ही युद्ध-कला एव शास्त्रों में प्रवीण हो गया था परन्तु ज्यौतिषियों ने निम्नलिखित बलिष्ठ जन्माक्षरों की घोषणा करके मुंजराज को उस पर कुपित कर दिया :—

"पंचाशत् पचवर्षाणि सप्तमासं दिनत्रयम्।
भोजराजेन भोक्तव्यः सगौडो दक्षिणापथः॥"

अर्थात्, भोजराज पचपन वर्ष सात (१) महीने और तीन दिन तक दक्षिणापथ और गौड़ देश का राज्य भोगेंगे।

राजा मुंज ने सोचा कि यदि भोज गद्दी पर बैठेगा तो उसके पुत्र को राज्य न मिल सकेगा, इसलिए उसने उसको मरवा देने का निश्चय किया। परन्तु, जिन लोगों (२) को इस काम के लिये नियुक्त किया गया था वे भोज की सुन्दरता और सद्गुणों को देख कर उसे मार न सके और अपने कार्य में असफल हुये। जब राजा ने उनको सौंपे हुये काम के विषय में पूछा तो उन्होंने कहा "हमारा काम पूरा हो गया है।" ऐसा कह कर उन्होंने भोज का दिया हुआ एक कागज (३) राजा के सामने रख दिया। उसमें लिखा था :—

---

(१) मूल अंग्रेजी में (Six months) छः मास लिखा है—यह भूल मालूम होती है।

(२) इस विषय में ऐसी कथा है कि वंगाल (वंगदेश) के भूपाल का वत्सराज नामक एक योद्धा था, उसको एक गांव देने का लालच देकर मुंज ने भोज को मार डालने का काम सौंपा था। वत्सराज को यह बात अयोग्य मालूम हुई, परन्तु राजा को प्रसन्न रखने के लिए उसने नाममात्र को यह कार्य अपने ऊपर ले लिया। वह भोज को वन में ले गया, परन्तु मारे बिना ही वापिस लाकर बहरे (तहखाने) में छुपा कर सुरक्षित रखा और राजा को विश्वास दिलाने के लिए एक कृत्रिम मस्तक लाकर दिखा दिया।

(३) ऐसी किंवदन्ती है कि भोज ने वड के पत्ते पर खून से लिख कर यह पद्य दिया था—कागज पर नहीं।

मान्धाता स महीपतिः कृतयुगालङ्कारभूतो गतः ।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः ॥
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते !
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति ॥

अर्थात्, सत्ययुग का अलङ्कारभूत राजा मान्धाता भी चला गया, जिसने समुद्र पर सेतु-बन्धन किया और जिसने दश मस्तक वाले रावण को मारा वह राम कहां गया ? इनके अतिरिक्त युधिष्ठिर आदि अन्य बड़े बड़े राजा भी चले गये, परन्तु इनमें से किसी के साथ भी यह पृथ्वी नहीं गई। अब, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हे मुंजराज ! सम्भव है यह आपके साथ ही जायेगी।

यह श्लोक पढ़ने पर मुंज के हृदय में बड़ा खेद हुआ और वह ऐसे प्रतिभाशाली कुमार को मरवा डालने का पश्चात्ताप करके रोने लगा। जब उसको विदित हुआ कि भोज के प्राण नहीं लिए गए हैं तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसको अपने पास बुला कर उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते हुये युवराज नियत किया। ऐसी दंतकथा प्रचलित है कि कच्छ के छोटे रण के पूर्व में एक प्रदेश है जिसको ब्राह्मण लोग धर्मारण्य (१) कहते हैं—वहां की यात्रा करके मुंज ने अपने पाप-निवारण की बात प्रसिद्ध की और वहां एक नगर बसाया जो आज तक मुंजपुर के नाम से प्रसिद्ध है।

तदनन्तर मुंजराज ने तिलंगाना के राजा तैलिपदेव पर चढ़ाई करने की तैयारियां कीं। उस समय प्रधान अमात्य रुद्रादित्य ने उसको बहुत समझाया, पहले की लड़ाइयों में जो नाश हो चुका था उसके विषय

(१) पाटण के पास मोढेरा और उसके आसपास की भूमि को धर्मारण्य कहते हैं।

में भी कहा तथा एक भविष्यवाणी की ओर भी ध्यान दिलाया कि जिस दिन मालवा का राजा गोदावरी नदी के पार चला जायगा उसी दिन उसका नाश हो जायगा, परन्तु मुंज ने एक भी न सुनी। भावी दुष्परिणाम की असह्य वेदना से दुखी होकर रुद्रादित्य ने अपना पद छोड़ दिया और शीघ्र ही चिता में जल कर मर गया। हठ पर आकर राजा भाग्य पर खेल गया और तैलिपदेव की सेना पर टूट पडा। इस लड़ाई में उसकी हार हुई और वह कैद कर लिया गया। अब भी उसके मंत्रियों की युक्ति [१] से बच कर वह निकल सकता था। परन्तु तैलिपदेव की बहिन मृणालवती से वह कैद में ही प्रेम करने लगा था उसको उसने सब रहस्य बता दिया। मृणालवती ने उसको धोखा दिया और उसके साथ बुरे से बुरा व्यवहार किया गया। अन्त में, जहां नीच से नीच अपराधी को फांसी दी जाती है वहां ले जाकर उसका शिर काट लिया गया और राजा तैलिप के महल के पास एक लकड़ी में लटका दिया गया जिसे मृतमांस खाने वाले जानवरों ने नोंच खाया।

---

(१) मुंज को काठ के पिंजडे में बंद किया गया था—उसी के नीचे से जमीन में सुरंग खोदकर मालवा जाने का रास्ता बना दिया गया था। परन्तु, मुंज ने यह भेद मृणालवती से कह दिया। मृणालवती आयु में मुंज से बडी थी, इसलिए उसने सोचा कि मालवा जाकर वह जवान रानियों से प्रेम करेगा और मुझे भुला देगा। यह सोच कर उसने उसके भागने का भेद अपने भाई से कह दिया जिससे मुंज की यह दुर्दशा हुई। उसने कहा :—

जा मति पच्छइ सम्पजई, सा मति पहिलीं होइ।
मुंज भणइ मुणालवइ, विघन न वेठइ कोइ॥

मुंज कहता है कि जो मति पीछे उत्पन्न हुई वह पहले उत्पन्न होजाती तो हे मृणालवती कोई विघ्न न हो पाता।

[मुनि शुभशील सूरिकृत भोज-प्रबन्ध में लिखा है कि मृणालवती का जन्म

कहते हैं कि मुंजराज ने पृथ्वी का भूगोल-शास्त्रीय वर्णन लिखा था, जिसका बाद में भोजराज ने संशोधन किया। [१] वह बड़ा भारी विद्याप्रेमी और विद्वानों का आश्रयदाता रहा होगा जैसा कि उसके मरण के समय कहे गये निम्नांकित श्लोक से ज्ञात होता है :

"लक्ष्मीर्यास्यति गोविन्दे वीरश्रीर्वीरवेश्मनि।
गते मुंजे यशःपुञ्जे निरालम्बा सरस्वती॥

अर्थात्, यश के पुंज राजा मुंज की मृत्यु हो जाने पर लक्ष्मी तो श्रीकृष्ण के पास चली जायगी, वीरश्री (शौर्य) वीर के घर पहुँचेगी, परन्तु सरस्वती को कोई आश्रय देने वाला नहीं रहा-वह आश्रय हीन हो गई।

मुंज के पश्चात् श्रीभोजराज गद्दी पर बैठा जो अणहिलवाड़ा के सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम के समय में हुआ। ग्रन्थकारों ने भोजराज में सभी प्रकार के राजोचित गुणों का समावेश पाया। उसके विषय में लिखा है कि वह नित्यप्रति यह विचार करता था [२] कि किसी का भाग्य

तैलिप के पिता देवलदेव से सुन्दरी नाम की दासी के गर्भ से हुआ था। वह श्रीपुर के राजा चन्द्र को व्याही थी। मुञ्ज के बन्दी होने के समय वह विधवा हो चुकी थी। बाद की शोध से तैलिप के पिता का नाम विक्रमादित्य होना पाया जाता है।]

(१) Asiatic Research Society Vol. IX pp. 176.

(२) श्रियश्च चलतां निजं चेतसि चिन्तयन् कल्लोललोलं निजं जीवितं च।

इसकी एक घटना इस प्रकार है :—

राजा भोज नियमानुसार नित्यकर्म से छुट्टी पाकर प्रातःकाल सभामण्डप में आ जाता था और वहां पर आये हुए याचकों को इच्छित दान देकर सन्तुष्ट करता था। उसके इस ढंग को देख कर रोहक नामक मन्त्री ने सोचा कि यों तो राज्य का

सदैव समान नहीं बना रहता और यह जीवन जल की तरंगों के समान चञ्चल है इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर वह जो कोई भी उसके पास आता उसको मनमानी वस्तु दे देता था। खिलाड़ियों, मांगने-

---

खजाना ही खाली हो जायगा। इसलिए जहां तक हो सके इसे रोकना चाहिए। परन्तु प्रत्यक्षरूप से समझाने में राजा के रुष्ट होने का डर था अतः उसने सभामण्डप की दीवार पर यह वाक्य लिखा :—

"आपदर्थे धनं रक्षेत्"

अर्थात् :—आपत्तिकाल हेतु धन की रक्षा करनी चाहिए दूसरे दिन राजा ने इस श्लोक को देख कर आगे यह अंश जोड़ दिया :—

"भाग्यभाजः क्व चापदः"

अर्थात् :—भाग्यशाली पुरुष को आपत्ति कहा ?

यह देख प्रधान ने फिर लिखा :—

"दैवं हि कुप्यते क्वापि"

अर्थात् :—कदाचित दैव ही रुष्ट हो जाय ?

तब राजा ने इसके आगे लिखा:—

"सञ्चितोपि विनश्यति"

अर्थात् :—तो सञ्चय किया भी नष्ट हो जायगा।

तब रोहक ने राजा से इस बात की क्षमा मांगी।

प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि राजा भोज के कङ्कणों में ये ४ श्लोक अंकित थे :—

इदमन्तरमुपकृतये प्रकृतिचला यावदस्ति संपदियम्।
विपदि नियतोदितायां पुनरुपकर्तुं कुतोवसरः ॥१॥

अर्थात्:—चंचल स्वभाव वाली इस सम्पत्ति के रहते ही उपकार करने का समय है। विपत्ति के आ जाने पर उपकार करने का अवसर कहाँ ?

वालों, ब्राह्मणों, और चोरों को भी जो उसके महल में चोरी करने

निजकरनिकरसमृद्ध्या धवलय भुवनानि पार्वणशशाङ्क !
सुचिर इन्त न सहते हतविधिरिह सुस्थितं किमपि ॥२॥

अर्थात् :—हे पूर्णमासी के चन्द्रमा ! तू अपनी किरणों की उज्ज्वलता से पृथ्वी मंडल को धवलित करले, क्योंकि यह दुष्ट भाग्य, संसार में, किसी की भी उत्तम अवस्था को अधिक समय तक नहीं सह सकता। (तात्पर्य यह है कि सुसमय रहते भलाई करना आवश्यक है एक सा समय सदा नहीं रहता)

अयमवसर· सरस्ते सलिलैरुपकर्तुमर्थिनामनिशम् ।
इदमपि सुलभमम्भो भवति पुरा जलधराभ्युदये ॥३॥

अर्थात् :—हे सरोवर ! प्यासों की भलाई करने का तेरे लिए यही अवसर है। वर्षा ऋतु में, यही जल, सुविधा से प्राप्त होने लग जायगा। (तात्पर्य यह है कि उपकारका अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहिए)

कतिपयदिवसस्थायी पूरो दूरोन्नतोपि चण्डरयः ।
तटिनि ! तटद्रुमपातिनि ! पातकमेकं चिरस्थायि ॥४॥

अर्थात् :—हे प्रचण्ड वेग वाली नदी ! तुझ में ज्वार तो कुछ दिनों ही आता है परन्तु किनारे के वृक्षों को गिराने की निन्दा हमेशा के लिए रह जाती है। (तात्पर्य यह है कि प्रभुता तो सदा नही रहती। परन्तु उस समय की हुई बुराई सदा की निन्दा का कारण बन जाती है)। इसी प्रकार उसके पहनने के कंठे में (अथवा कुण्डलों पर) लिखा था :—

यदि नास्तमिते सूर्ये न दत्तं धनमर्थिनाम्
तद्धनं नैव जानामि प्रातः कस्य भविष्यति ॥१॥

अर्थात् :—यदि सूर्य अस्त होने से पूर्व जरूरत वालों को धन नहीं दिया गया तो, नहीं कहा जा सकता कि प्रातःकाल वह धन किसका हो जायगा।

ग्रासादर्द्धमपिग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥२॥

जाते थे, श्रीभोज की उदारता का समान रूप से प्रसाद प्राप्त होता था। (१)

अर्थात् :—यदि एक ग्रास भी प्राप्त हो तो उसमें से आधा ग्रास आवश्यकता वाले व्यक्ति को क्यों न दिया जाय ? इच्छा के अनुसार धन तो कब किसके पास आता है ? (इसका कुछ पता नहीं।)

(१) इन प्रसगों की कुछ रोचक कथाए इस प्रकार हैं—

एक बार एक गरीब ब्राह्मण नदी पार कर नगर की तरफ आ रहा था। इतने ही में राज भोज भी उधर से आ निकला और ब्राह्मण को नदी पार से आया जानकर पूछने लगा :—

"कियन्मात्रं जलं विप्र !" अर्थात् :—हे ब्राह्मण कितना जल है ?

इस पर ब्राह्मण ने उत्तर दिया :—

जानुदघ्नं नराधिप ! अर्थात् :—हे नृप घुटने तक।

इस उत्तर के "जानुदघ्नं" शब्द में "दघ्नच्" प्रत्यय के प्रयोग को, जो ऊँचाई बताने के लिए ही प्रयुक्त होता है, सुन कर राजा समझ गया कि यह कोई विद्वान है। तब फिर पूछा :—

"कथं सेयमवस्था ते ? अर्थात् तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों ?

पण्डित भी समझ गया कि राजा ने मेरी विद्वत्ता जान ली है अत. उत्तर दिया :—

न सर्वत्र भवादृशाः ॥" अर्थात् :—सर्वत्र आपके समान नहीं है।

इस उत्तर से प्रसन्न होकर राजा ने उसे ३ लाख रुपये और १० हाथी पुरस्कार में दिये।

एक दिन राजा भोज हाथी पर बैठ कर नगर में जा रहा था उस समय उसकी दृष्टि पृथ्वी पर से अन्न एकत्रित करते एक मनुष्य पर पड़ी। तब राजा ने कहा :—

नियउयर पूरणम्मि य असमत्था किंपि तेहीं जाएहिं।

अर्थात् :—जो मनुष्य अपना पेट नहीं पाल सकते उनके पृथ्वी पर जन्म लेने से क्या लाभ है ?

जिन मंत्रियों ने उसको इस तरह खुले हाथों धन न लुटाने के लिये प्रार्थना की उनको उसने अलग कर दिया। उसको इस विचार में बड़ा

यह सुन कर उस पुरुष ने उत्तर दिया :—

सुसमत्था विहु न परोवयारिणो तेहि वि नहि किंपि।

अर्थात् :—जो समर्थ होकर भी परोपकार न कर सकें उनके पृथ्वी पर जन्म लेने से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ?

इस पर राजा ने फिर कहा :—

परपत्थणापवत्तं मा जणणि जणेसु एरिसं पुत्तं।

अर्थात् :—हे माता ! पराए लोगों से भिक्षा मांग कर पेट पालने वाले पुरुष को जन्म मत दे।

यह सुन कर पुरुष बोला :—

मा पुहवि माधरि उज्जसु पत्थणा भङ्गो कओ जेहिं।

अर्थात् :—हे पृथ्वी ! तू याचकों की प्रार्थना पर ध्यान न देने वाले पुरुष को अपने ऊपर धारण न कर।

उसकी इन उक्तियों पर राजा ने उसका परिचय पूछा तो उसने बताया "मैं शेखर नाम का कवि हूँ। परन्तु आपकी सभा विद्वानों से भरी है। अत. आपके दर्शनार्थ यह युक्ति अपनायी है। इस पर राजा ने प्रसन्नता प्रकट की और बहुत सा धन दिया।

एक बार चाँदनी रात में राजा की आंखें चन्द्रमा पर अटक गई और उसने यह श्लोक पढा :—

यदेतच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां प्रकुरुते
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति यथा।

अर्थात् :—चांद के भीतर जो यह बादल का टुकड़ा दिखाई देता है लोग उसे खरगोश कहते हैं। परन्तु मैं ऐसा नहीं समझता।

संयोगसे इसके पहले ही एक विद्वान् चोर वहां छिपा बैठा था। जब राजा ने दो तीन बार इसी श्लोकार्द्ध को पढ़ाऔर श्लोक का उत्तरार्द्ध उसके मुंह से न निकला तब

आनन्द आता था कि वह वलि राजा, कर्ण तथा विक्रमादित्य से भी वढ़ गया था और उसके समान पहले किसी ने दान नहीं दिया। इस प्रकार धन लुटाने के रोग का उपाय उसको इसी में मिल गया। कहते हैं कि [१] एक वार एक कवि आया और उसने राजा की प्रशंसा में बहुत

उसने (चोर ने) उसकी पूर्ति इस प्रकार कर दी :—

अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्ततरुणी-
कटाक्षोल्कापातव्रणशतकलङ्काङ्किततनुम् ॥

अर्थात् :—मेरे विचार से तुम्हारे शत्रुओं की विरहिणी स्त्रियों के कटाक्ष रूपी उल्काओं के पड़ने से चन्द्रमा के शरीर में सैकड़ों घाव हो गये हैं और ये उसी के दाग हैं !

राजा इससे प्रसन्न हुआ और सवेरे ही राजसभा में उसे पुरस्कृत किया।

(१) मेरुतुङ्ग के अनुसार असली बात यों है कि नई कविता करके लाने वाले को भोज एक लाख रुपया देता था। इसके लिए मतिसागर प्रधान ने चार ऐसे पण्डित रख दिये थे कि जब कोई पण्डित नई कविता बना कर लाता तो पहला कवि उसको एक वार सुन कर याद कर लेता और वह उसको उसी समय ज्यों का त्यों दोहरा देता था। दूसरे कवि को दो वार सुनने से याद हो जाती तथा तीसरे को तीन वार तथा चौथे को चार बार सुन कर वह कविता याद होजाती थी और वे इसको दोहरा देते। इस प्रकार आने वाले कवि की कविता नई न समझी जाती और उसको पुरस्कार प्राप्त न होता। किसी कवि ने इस युक्ति को भांप लिया और वह निम्नलिखित नई कविता बना कर लाया—

देव त्वं भोजराज त्रिभुवनविजयी धार्मिकः सत्यवादी
पित्रा ते मे गृहीता नवनवतियुता रत्नकोटयो मदीयाः।
तांस्त्वं मे देहि राजन् सकलबुधजनैर्ज्ञायते वृत्तमेतत्
त्वं वा जानासि नो वा नवकृतिरथचेल्लक्षमेकं ददस्व ॥

अर्थात्—हे देव भोजराज ! तुम तीनों भुवनों के विजेता, धार्मिक और सत्यवादी हो। तुम्हारे पिता ने मुझ से ९९ अयुत रत्न उधारे लिये थे। हे राजन् ! वह मुझे

सुन्दर पद्य सुनाया। इस पहले पद्य का पुरस्कार ले भी न चुका था कि दूसरा पद्य उससे भी बढ़ कर सरस और सुन्दर कह सुनाया। इस प्रकार एक के बाद दूसरा एक से एक बढ़ कर पद्य वह सुनाता चला गया और अन्त में राजा को हार मान कर अपनी पैठ रखने के लिये उसे मौन होने को कहना पड़ा।

जान पड़ता है कि भीमदेव ने भोज के पास अपने सांधिविग्रहिक प्रतिनिधियों को भेजा होगा परन्तु, दोनों प्रतिपक्षी राजाओं के इस संपर्क का परिणाम आपस में एक दूसरे के पास कविताऐं (वे भी व्यावहारिक नहीं, साहित्यिक) भेजने के अतिरिक्त कुछ न निकला होगा। [१] संभव

वापस दे दीजिये। इस वृत्तान्त को तुम्हारी सभा के सभी विद्वान् कवि जानते हैं और तुम भी जानते होगे, यदि नहीं, तो इस श्लोक को नई रचना समझ कर एक लाख तो दे दीजिये।

(२) एक दिन राजा भोज अपनी सभा में पण्डितों की प्रशंसा कर रहा था। उसी समय गुजरात के पण्डितों का भी प्रसंग आ गया। इस पर भोज ने कहा कि हमारे यहां के से पंडित वहां नहीं हो सकते। यह सुन कर एक गुजराती बोल उठा कि औरों का तो कहना ही क्या, हमारे देश के तो चरवाहे तक विद्वान् होते हैं। इसके पश्चात् वह गुजराती अपने घर लौटा और उसने भीम को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब भीम ने एक चतुर वेश्या तथा एक विद्वान् को चरवाहे के रूप में भेजा। चरवाहे के रूपधारी विद्वान् ने कहा :—

भोयएहु गलि कण्ठुलउ भण केहउ पडिहाइ।
ऊर लच्छिहि मुह सरसति सीम निबद्धिकाई॥

अर्थात्—हे राजा भोज ! आपका यह कण्ठा कैसा मालूम होता है ? क्या अपने हृदय में रहने वाली लक्ष्मी और मुख में रहने वाली सरस्वती की सीमाएं निर्धारित करदी हैं ?

है अणहिलवाड़ा के कार्यक्षम चंचल योद्धाओं की अपेक्षा इस कविता की लड़ाई में भोजराज बढ कर रहा हो परन्तु, फिर भी भीमदेव को सर्वतोभावेन वढ़ कर मानना ही पड़ेगा।

एक बार मालवा में भीषण अकाल पड़ा। इसलिए भोजराज ने गुजरात पर चढ़ाई करने का विचार किया, परन्तु भीम के प्रतिनिधि डामर [१] (हेमाचार्य के अनुसार 'दामोदर') ने इसको पूरा नहीं पडने दिया

इतने में वह वेश्या भी साज शृङ्गार कर सभा में आ पहुँची। उसे देख कर राजा ने पूछा:— इहकिम् ? अर्थात्—यहा क्यों ?

यह सुन कर वैश्या बोली :—पृच्छन्ति ? अर्थात्—पूछते हैं !

यह सुन कर राजा प्रसन्न हुआ और तीन लाख मोहरें पुरस्कार में दीं। सभा में बैठे अन्य लोग इस वार्तालाप का अर्थ कुछ भी न समझ सके। अन्त में आग्रह करने पर राजा ने बताया कि तिरछी चितवन से देखते समय इस वेश्या की दृष्टि (अथवा आखें) कान तक पहुँचती हैं। यह देख कर हमने इससे पूछा था कि तेरी दृष्टि (अथवा आंखें) यहां तक क्यों जाती हैं ? इस पर इसने कहा कि वे कानों से पूछती हैं कि तुमने जिस राजा भोज की प्रशंसा सुनी है क्या यह वही है ?

(१) यह बढा ही कुरूप था, इसी से जब वह भोज के पास पहुँचा तो उसे देख कर राजा ने हँसी में पूछा—

यौष्माकाधिपसन्धिविग्रहपदे दूताः कियन्तो वद ।

अर्थात्—तुम्हारे राजा के यहां सन्धि-विग्रह के काम को करने वाले (तुम्हारे जैसे) कितने दूत हैं ?

डामर ने राजा का अभिप्राय जान कर उत्तर दिया—

मादृशा बहवोपि मालवपते ! ते सन्ति तत्र त्रिधा ।
प्रेष्यन्तेऽधममध्यमोत्तमगुणप्रेक्षानुरूप क्रमात् ॥

अर्थात्—हे मालव नरेश ! वहां मेरे जैसे दूत तो बहुत हैं। परन्तु उनकी तीन श्रेणियां हैं, और उत्तम मध्यम और अधम के हिसाब से जैसा अगला पुरुष होता है

क्योंकि उसने [१] तिलंगाने के राजा तैलिप वाले पुराने झगड़े को नया

वैसा ही दूत उसके पास भेजा जाता है।

फिर राजा भोज ने पूछा—"कहो भीमडिया नाई क्या करता है ?"

इस पर डामर ने उत्तर दिया—उसने औरों के सिर तो मूंड डाले हैं, सिर्फ एक का सिर भिगो कर रक्खा हुआ है, सो उसे भी अब मूंडने वाला है।'

तब भोजने डामर को एक चित्रपट दिखाया। जिसमें भीम को कर्नाट नरेश की खुशामद करते दिखाया था। इसे देख कर डामर ने कहा—

भोजराज ! मम स्वामी यदि कर्णाटभूपतेः
कराकृष्टो, न पश्यामि कथं मुञ्जशिरःकरे ॥

अर्थात—हे राजा भोज ! यदि वास्तव में ही इस चित्रपट में मेरा स्वामी (भीम) कर्णाट राजा (तैलप) द्वारा खींचा जा रहा हैं, तो तैलिप के हाथ में राजा मुंज का मस्तक क्यों नहीं दिखाई देता ?

यह सुन कर भोज को पुराना वैर याद आगया और उसने गुजरात पर चढाई करने का विचार छोड़कर कर्णाट पर चढाई करने का विचार कर लिया।

(१) मुंज के समयमें कल्याण का सोलकी राजा तैलिप था जिसने ९७३ से ९९७ ई० तक राज्य किया अतः वह राजा भोज के समय में नहीं हो सकता। तैलप के बाद ही सत्याश्रय राजा हुआ जिसने १००९ ई० तक राज्य किया। भोजराज का समय १०१० से १०५५ ई० तक का है। अतः न तैलप हो सकता है, न सत्याश्रय, न तीसरा विक्रमादित्य ही। इसके बाद तैलप के पौत्र जयसिंह अथवा जगदेकमल्ल ने १०१९ से १०४३ तक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र सोमेश्वर १०४३ से १०६८ ई० तक रहा। इसलिए भोज के सयय में इन पिछले दो राजाओं में से ही कोई हो सकता है। भोज-चरित्र में लिखा है कि भोजराज की सभा में एक नाटक दिखाया गया जिसमें तैलप को मुंज का सिर काटते हुए बताया गया। यह देख कर भोज को बडा क्रोध आया और उसने तैलप को युद्ध में हरा कर उसका शिरश्छेद किया। यहां पर तैलिप से जयसिंह ही को समझना चाहिये। जयसिंह के कुंअर सोमेश्वर ने जो मालवे पर आक्रमण किया था वह भी इसी वैरभाव को लेकर किया था।

करने की युक्ति की और जब तैलिप ने मालवा पर चढ़ाई की तो भोजराज भीमदेव से उसकी मनमानी शर्तों पर सन्धि करने को राजी हो गया। इन चिन्ताओं से निवृत्त होकर भोजराज धारा नगरी [१] अथवा धार (जैसा कि साधारणतया बोला जाता है) के निर्माण एवं पुन-निर्माण में व्यस्त हो गया।

बाद में जब भीमदेव सिन्ध के आक्रमण में व्यस्त था तब भोजराज गुजरात पर आक्रमण करने का अवसर न चूका। कुलचन्द नामक एक साहसिक योद्धा [२] उसकी सेना लेकर रवाना हुआ और उसने राजा के जन्मपत्र में लिखी हुई इस बात को पूरा करने का प्रण किया कि भोजराज दक्षिण और गौड़ देश का स्वामी होगा। भीमदेव की अनुपस्थिति में कुलचन्द अणहिलपुर में घुस गया और नगर में लूट पाट

(१) धारा नाम की वेश्या अपने पति अग्निवेताल के साथ जाकर लङ्कापुरी का नकशा ले आई थी। उसी नकशे के अनुसार इस नगरी की स्थापना की गई और उसी वैश्या की इच्छानुसार इसका नाम धारा रखा गया था। (प्रबन्धचिंतामणि)

(२) एक दिन राजा भोज सन्ध्या के समय नगर में भ्रमण कर रहा था। इतने में उसकी दृष्टि कुलचन्द्र नामक एक दिगम्बर साधु पर पड़ी, जो कह रहा था—

"मेरा जन्म व्यर्थ ही गया, क्योंकि न तो मैंने युद्ध में वीरता ही दिखलाई न गार्हस्थ्य सुख ही भोगा।"

यह सुन कर दूसरे दिन प्रातः काल राजा ने उसे सभा में बुला कर पूछा "कहो तुममें कितनी शक्ति है ?" इस पर वह बोला—

देव ! दीपोत्सवे जाते प्रवृत्ते दन्तिनां मदे।
एकछत्र करोम्येव सगौड दक्षिणापथम् ॥

अर्थात्—हे राजा ! दीपोत्सव हो जाने और हाथियों के मद का बहना प्रारम्भ होने पर गौड देश से दक्षिणा पथ तक एकछत्र राज्य बना सकता हूँ।

उसके इस कथन को सुन राजाने उसे अपना सेनापति बना लिया।

करके महल के आगे, जहां घंटा बजता था, कौड़ियां गड़वा दीं और एक जय-पत्र लिखवा कर वापस मालवे लौट आया। भोज ने उसका बहुत आदर सत्कार किया परन्तु उस नष्ट हुए स्थान पर नमक गड़वाने की जगह कौड़ियां गड़वाने के लिये उसको बहुत कुछ भला बुरा भी कहा। "तुमने एक अपशकुन कर दिया जिसका अर्थ यह निकलता है कि भविष्य में मालवा का कोप गुजरात में चला जायगा।" यह भविष्यवाणी, भोज के वंशज यशोवर्म्मा के समय में पूरी हुई।

कहते हैं कि, एक बार भीमदेव राजदूत डामर के नौकर का वेष बना कर चुपचाप राजा भोज की राजसभा में भी गया था। परन्तु इसका कोई स्पष्ट परिणाम निकलना ज्ञात नहीं होता। फिर, एक बार ऐसी घटना हुई कि हिम्मत करके गुजरात के कुछ घुड़सवार भोज की सीमा में चले आये और एक दिन जब भोज धार के नगर-द्वार पर अपनी कुलदेवी का पूजन कर रहा था तो उन्होंने उसे पकड़ कर लगभग कैद ही कर लिया। इन बातों से स्पष्ट जान पड़ता है कि ये दोनों ही राजा अपने राज्यकाल में निरन्तर एक दूसरे से वैरभाव रखते रहे।

देलवाड़ा अथवा आबू पर्वत की सपाट भूमि पर, जो देवालयों का प्रदेश कहलाता है, बहुत से संगमर्मर के बने हुये जैन मन्दिर हैं। इनमें से एक मन्दिर बहुत भव्य और दर्शनीय है। इस पर लगे हुये एक लेख से ज्ञात होता है कि इसको सन् १०३२ (संवत् १०८८) में विमल शाह ने बनवाया था। [१] आख्यायिका में लिखा है कि, पहले इस

(१) इसको विमलवसहि, विमल शाह का देवरा, अथवा देलवाड़ा का देवरा कहते हैं।

स्थान पर शिव और विष्णु के मन्दिर थे परन्तु विमलशाह ने आबू पर और कोई स्थान पसन्द न करके इसी को पसन्द किया और अपने धर्म को विजयी करने के लिए लक्ष्मी का आश्रय लेते हुए, उसने जितनी जगह पर देवालय बनवाने का विचार था उतनी जगह का मूल्य उस जमीन को चांदी के सिक्कों से पाट कर देने को कहा। उसकी बात मान ली गई और यही सब से पहला अवसर था कि शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठित देवताओं के पवित्र स्थान पर आदिनाथ की स्थापना हुई। उस समय अचलेश्वर का दुर्ग जिस राजा के अधिकार में था उसका नाम धधुराज [१] परमार था। इसने अग्निकुण्ड में उत्पन्न हुए क्षत्रियों के वंशज कान्हडदेव के कुल में जन्म लिया था। धधुराज की राजधानी चन्द्रावती पुरी थी जिसके खण्डहर अब तक विद्यमान हैं। उसके पूर्वजों ने अणहिल-वाडा के राजाओं की आधीनता स्वीकार कर ली थी, परन्तु लेखों से ज्ञात होता है कि धंधुराज ने भीमदेव की नौकरी छोड़ कर भोज से मित्रता करली। इस पर गुजरात के राजा भीमदेव ने विमलशाह को दण्डपति का अधिकार देकर आबू भेजा और जब वह इस पद का उपभोग कर रहा था तभी माता अम्बा भवानी ने उसको स्वप्न में दर्शन देकर युगादिनाथ का मन्दिर बनवाने की आज्ञा दी।

यह वही विमलशाह था जिसने आरासुर पर्वत पर कुम्भारिया में अम्बाभवानी के प्रसिद्ध मन्दिर के पास मन्दिर बनवाये थे। इनकी बना-वट देलवाड़ा के मन्दिर की बनावट के समान है, और कहते हैं कि

---

(१) आबू पर धन्धुक राजा राज्य करता था। इसने भीमदेव का आधिपत्य स्वीकार किया था और वह अपने को उसका उमराव मानता था। इससे आबू के परमारों की प्रतिष्ठा कम हो गई थी। (धार राज्य का इतिहास पृ० ३७)

ये सब गुप्त मार्ग द्वारा मिले हुए हैं। इनके विषय में जो बातें चली आती हैं उनका वर्णन आगे करेंगे।

उन्हीं दिनों, डाहल नामक देश पर कर्ण नाम का राजा राज्य करता था। यह डाहल आजकल तिपेरा के नाम से प्रसिद्ध है और पवित्र काशी नगर (अथवा वाराणसी) में है। कर्ण देवतृदेवी का पुत्र था जो अपनी दृढ धर्मनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध थी। कर्ण को जन्म देते समय ही इस रानी की मृत्यु हो गई थी। शुभ लग्न में जन्म लेने के कारण इस राजा का राज्य चारों दिशाओं में फैल गया और एक सौ छत्तीस राजा उसके चरणकमलों की पूजा करने लगे।

उज्जयिनी के राजा भोज की कीर्ति से डाह करके कर्ण ने उस पर चढ़ाई करने की तैयारी की, और इसी प्रसंग में सरहद के गाँव में भीमदेव से मिलने का प्रबन्ध किया। भीमदेव ने उससे प्रतिज्ञा की कि वह पश्चिम की ओर से हमला करके भोज का ध्यान उसकी ओर से हटा लेगा और उसने ऐसा ही किया भी। इस प्रकार जब दोनों राजाओं ने भोजराज पर आक्रमण किया तो उसने उनका सामना करना अपनी परिस्थिति के अनुकूल न समझा और अपने नगर में घुसने के रास्ते को घुड़सवारों से रोक कर बैठ रहा। उसी समय भीमदेव ने डामर को अपना प्रतिनिधि बना कर राजा कर्ण की छावनी में भेजा। जब समाचार लाने को दूत भेजा गया तो डामर ने उसको यह गीति याद करादी और उसने लौट कर गुजरात के राजा के सामने उसे दोहरा दी[१]:—

---

(१) पानीपत की लड़ाई के समय का भाउ का नोट देखिये—एशियाटिक रिसर्चेज़ भाग ३ पृष्ठ १५५—"प्याला लबालब भर गया है, अब इसमें एक बूंद भी अधिक नहीं समा सकती।"

गाथा.—अम्बय फल सुपक्कं विएटं सिढिल समुब्भडो पवणो
साहा मिल्हणसीला, न याणिमो कज्ज परिणामो ॥

अर्थात् :—आम के पेड़ का फल पक गया, डॉड शिथिल हो गये हैं जोर के पवन से टहनियाँ हिल (काँप) रही हैं—आगे नहीं जानता क्या परिणाम होगा।"

इस गीति को सुनकर भीमदेव ने शान्त रहने का निश्चय किया।

अब, भोजराज को मालूम हो गया कि उसे परलोक यात्रा की तैयारी करनी चाहिए। अतः उसने समयोचित रीति से पुण्यदान किया और राज्य का कार्य भार अपने सुभटों को सौंप कर आज्ञा दी "जब मुझे अर्थी में रख कर श्मशान में ले जावो तो मेरे हाथ बाहर निकले हुये रखना जिससे सब को मालूम हो जायगा कि मैं अपने साथ कुछ नहीं ले जा रहा हूँ।[१]

भोजराज का समाचार सुन कर राजा कर्ण ने धार पर चढाई कर दी और नगर को नष्ट करके राजकोष अपने कब्जे में कर लिया। जब भीमदेव की ओर से डामर ने लूट का भाग मांगा तो यह तय हुआ कि मालवा के देवालयों की आय गुजरात के राजा की होगी।

महमूद की मृत्यु के बाद उसके वशज अपने ही देश में आपसी झगडों में लगे रहे इसलिये कितने ही वर्षों तक वे हिन्दुस्तान की ओर ध्यान न दे सके। सुल्तान की मृत्यु के तेरह वर्ष बाद जब उसका पौत्र सुल्तान मोदूद गद्दी पर था तब हिन्दुओं ने अपने पर अत्याचार

(१) 'कसुकरुरे पुत्रकलत्रथी कमुकसरे करसण वाड़ी।
एकला आइवो एकला जाइवो हाथ पग वे झाड़ी॥

"पुत्र कलत्रादि एवं खेती वाडी से क्या होगा? अकेला आया है और दोनों हाथ पैर झाड कर अकेला जाना है।

करने वाले इस पर-राज्य के बोझ को दूर करने का अवसर देख कर महा प्रयत्न किया। फरिश्ता के लेखानुसार सन् १०४३ में, दिल्ली के राजा ने अन्य हिन्दू राजाओं की सहायता से हाँसी, थानेश्वर तथा इनके नीचे के अन्य छोटे छोटे राज्यों को मोदूद के सरदारों से वापस ले लिया। इसके बाद, राजपूत नगरकोट के किले की ओर बढ़े और चार महीने तक घेरा डाल कर पड़े रहे। अन्त में, खाने पीने का सामान बीत जाने के कारण भूख प्यास से तंग आकर तथा सहायता के लिये निराश होकर मुसलमानों को आत्मसमर्पण करना पड़ा। किले के वापस हाथ आ जाने पर देवालय में फिर महादेव की स्थापना हुई और इस धार्मिक विजय से लोगों का उत्साह इतना बढ़ा कि हिन्दुस्तान के सभी भागों से हजारों यात्री सोना, चांदी और जवाहरात की भेंटे ले कर भीम के किले के देवालय की धार्मिक-महिमा को फिर से बढ़ाने के लिये आ पहुँचे।

इस विजय से राजपूतों का आत्मविश्वास बहुत बढ गया था। मुसलमान इतिहासकारों का कहना है कि, जो लोग पहले मुसलमानों के हथियारों के डर से लोमड़ियों की भाँति छुपे रहते थे और सिर भी ऊँचा न कर सकते थे वही राजपूत अब सिंहरूप धारण करके खुल्लम खुल्ला अपने अधिपतियों (मुसलमानों) का सामना करते थे। तीन राजाओं ने दस हजार घुड़सवार और अगणित पैदल साथ में लेकर लाहोर पर चढ़ाई की। सात महीनों तक मुसलमान, बड़ी कठिनता से एक एक गली और एक एक खंडहर की रक्षा करते रहे। अन्त में जब अपने को पराजय के किनारे ही पाया तो उन्होंने विजय अथवा मृत्यु दोनों में से एक प्राप्त करने की सौगन्ध खाई और ऐसा व्यूह बनाया कि शत्रुओं को पीछे हटना पड़ा।

हिन्दू ग्रन्थकारों ने लिखा है कि इस अभिसन्धि का नेता अजमेर का चौहान राजा वीसलदेव था। कहते हैं कि हिन्दुओं के धर्म और स्वतत्रता के रक्षण के लिये किये गये इस अन्तिम, महान् और संगठित प्रयत्न में भाग लेने के लिये अन्य राजाओं के समान अणहिलवाड़ा के राजा को भी निमन्त्रण दिया गया था। यद्यपि जब सोमनाथ का नाश करने वाला महमूद सिर पर चढ़ आया था तब उस समान-शत्रु से लडाई करने में भीम सांभर के राजा से मिल गया था, परन्तु इस समय दोनों वंशों में चले आये पुराने मनसुटाव के कारण वह इस कार्य मे भाग लेने से रुक गया, क्योंकि इस में चौहान राजा का नेतृत्व था। अस्तु, गुजरात की सेना तटस्थ रही, और वीसलदेव अपने घुडसवारों सहित विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ता गया। उसने म्लेच्छों का नाश करके भारत–भूमि को एक बार फिर से "धर्मक्षेत्र" कहलाने योग्य बना दिया और इस भव्य यश को अपने कीर्तिस्तम्भ पर साभिमान खुदवाने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। [१]

चन्द बरदाई कृत पृथ्वीराजरासो के ६६ अध्याय हैं। उनमें से एक में अजमेर के राजा की कथा के साथ साथ कवि ने उस लडाई का भी वर्णन किया है जो भीमदेव के इस उदासीन व्यवहार के कारण उसमें और विजयी राजाओं में हुई थी। अब हम पाठकों के सामने उसी का उल्लेख करते हैं।

बारहट चद कहता है "ऋषियों ने आबू पर्वत पर यज्ञ कुण्ड में से एक पुरुष उत्पन्न किया और उसको राजपद दिया। उसी के वंश में परम

---

(१) देखो एशियाटिक रिसर्चेज पुस्तक ७ पृष्ठ १८०।

धार्मिक वालण [१] राजा उत्पन्न हुआ। वालण का पुत्र वीसलदेव हुआ, जो वैशाख शुक्ल प्रतिपदा, शुक्रवार को गद्दी पर बैठा। उस समय छत्तीस [२] शाखाओं के राजपूत और भाट लोग इकट्ठे हुए थे। वीसल

---

(१) यह वही वालण है जिसको कर्नल टॉड ने वीर बीलनदेव लिखा है और जिसने महमूद गजनवी के मुकाबले में बीटली के गढ अथवा अजमेर की पहाडी पर स्थित गढ (तारागढ) की रक्षा की थी। फीरोजशाह के स्तम्भ पर इसका नाम वेल्लादेव अथवा वेलदेव लिखा है। व और ब का अभेद है, अतः वीसलदेव को प्रायः बीसलदेव भी कहते हैं।

[२] छप्पय—रवि, शशि, जादव वंश, कोकस्थ, परिमार, सदावर,
चहुआण, चालुक्य, चद सेलार, अभीयर,
दोयमत, मकवाण, गरुअगोह, गोहेलपत,
छापोकट, परिहार, रावराठोड, सरोषजुत.
देवडा, टांक, सिन्धव, अनंग, पोतक पडिहार, दधिभट,
कारटपाल, कट्टपाल, हून, हरितक, गोर, कमाख, भट,
ध्यानपालक, निकुम्भवर, राजपाल कवनीश,
कालच्छर को आदि दै, वरणे वंस छतीस॥

अर्थात्—(१) सूर्यवंशी, (२) चद्रवंशी, (३) यादव, (४) ककुत्स्थ, [कछवाहा] (५) परमार, (६) सदावर [तवर], (७) चहुआण, (८) चालुक्य [सोलकी], (९) छंद [रादेल], (१०) शिलार, (११) आभियर, (१२) दोयमत [दाहिमा], (१३) मकवाणा [झाला], (१४) गोहिल, (१५) गहिलोत [शिशोदिया], (१६) चापोत्कट [चावडा], (१७) परिहार, (१८) राठौड, (१९) देवड़ा (२०) टॉक, (२१) सिंधव, (२२) अनिध [अगन], (२३) पोतिक, (२४) प्रतिहार, (२५) दधिमट, (२६) कार्टपाल [कारट], (२७) कोटपाल, (२८) हुन [हुण] (२९) हरितक [हाडा], (३०) गौर [गौड], (३१) कमाड [जेठवा]

को राजछत्र अर्पित किया गया, उसके ललाट पर राजतिलक किया गया, और ब्राह्मणों ने वेदघोष एवं चण्डीपाठ करना आरम्भ कर दिया।

जब वीसल ने राजछत्र धारण किया तब ब्राह्मणों ने यज्ञकुण्ड तैयार करके उसमें पंचशर छोड़े। उसमें से धुँआ निकला, फिर ज्वाला निकली, ब्राह्मणों ने मन्त्रपाठ करते हुए उसका राज्याभिषेक किया और सब लोग बोल उठे—"महाराज वीसल की जय हो ! जय हो !"

वीसल ने इन्द्र के समान सुख भोगा, उसने यश और न्याय को फिर स्थापित कर दिया। अजमेर नगर में निवास करते हुए और अपने शत्रुओं का विनाश करते हुए—वीसल ने निर्विघ्न राज्य किया। उसने बड़े बड़े समृद्धिशाली नगरों को जीत कर आधीन कर लिया और उसके राज्य में पृथ्वी एक ही छत्र की छाया मे दिखाई पड़ने लगी।

उसने नगर को ऐसा सुसज्जित कर रखा था मानों विश्वकर्मा ने ही अपने हाथ से सजाया हो। उसने अधर्म का नाश करके धर्म की स्थापना की, कोई पाप कर्म नहीं किया, 'सदैव सबसे अपना उचित भाग ही ग्रहण किया, लोभ करके अनुचित भाग नहीं लिया। चारों वर्ण चौहान के आधींन थे और छत्तीस शाखाएं उसकी चाकरी में थी। धर्म-धुरन्धर वीसलराज पृथ्वी पर देवराज इन्द्र के समान प्रतापी था।

एक बार वीसलदेव जङ्गल में हरिणों का शिकार कर रहा था। वहाँ एक योग्य स्थान देख कर उसकी इच्छा तालाब बँधवाने की हुई। उसने

---

(३२) भट [जाट], (३३) ध्यान पालक [धान्य पालक], (३४) निकुम्भ, (३५) राजपाल और (३६) कालछर। इस प्रकार ३६ वंशों का वर्णन है।

एक अच्छी सी जगह ढूंढ निकाली जहाँ पर्वत पर से झरने भी खूब बह कर आते थे और वन भी अत्यन्त रमणीय था। वहीं अपने प्रधान मंत्री को पुष्कर के समान एक जलबाँध बँधवाने की आज्ञा प्रदान करके अत्यन्त प्रमुदित होता हुआ वह घर लौटा। उसने धर्मपुत्र युधिष्ठर के समान राज्य किया। वीसल पृथ्वी पर मनुष्यों में इन्द्र के समान हो गया है, उसके शिर पर छत्र शोभायमान था, दोनों ओर चवर ढुलते थे और वह स्वयं देखने में अश्विनीकुमार के समान सुन्दर था। वीर पुतासर तँवर आदि छत्तीसों शाखा ही वहाँ पर उपस्थित रहती थीं। राजा उन्हें अपने पास बुलाता और पान सुपारी देकर उनका सत्कार करता। जव गन्धर्व लोग उसकी कीर्ति का गान करते तो राजा हँस कर नीचा मस्तक कर लेता। इस राजसभा में राजा लोग तारों के समान सुशोभित होते थे और उनके मध्य में चौहान राजा चन्द्रमा के समान विराजता था। सब के नमस्कार को स्वीकार करता हुआ राजा सभा को विसर्जित करता और जव वे लोग अपने अपने घर लौटते तो भाट लोग उनको आशीर्वाद देते। एक प्रहर रात गये राजा महल में जाता। वह महल कपूर, चन्दन, कस्तूरी और अन्य सुगन्धित पदार्थों से महका करता था। आँगन पर बहुमूल्य इत्र छिड़के जाते थे। चित्रविचित्र रंगों से चित्रित, आनन्द उपजाने वाले सभामण्डप में राजा का स्वागत होता। वहाँ वह नाटककारों, गवैयों और अन्य गाने वजाने वालों को बुलाता और अपनी प्रियतमा रानी परमार पुत्री के साथ परम आनन्द का उपभोग करता। यह रानी रूप यौवन में एक अप्सरा के समान थी और राजा को अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थी। उसको एक क्षण भी उसके बिना चैन नहीं पड़ता था और दूसरी किसी भी सुन्दरी पर वह दृष्टिपात नहीं करता था।

परमार रानी ने सारङ्गदेव नामक पुत्र को जन्म दिया जो बड़ा होने पर कीरपाल कायस्थ की देखरेख में शाकम्भरीदेवी के प्रिय नगर सांभर भेजा गया और वहीं उसके रहने सहने का प्रबन्ध भी किया गया। जल्दी ही सुयोग्य कन्या गौरी के साथ उसका विवाह हुआ जो रावल देवराज की पुत्री थी और सारङ्गदेव के साथ इस प्रकार शोभित होती थी जिस प्रकार कामदेव के पास रति।

इस प्रकार कल्याणकारी शुभ लक्षणों के साथ वीसल के राज्य का आरम्भ हुआ, परन्तु आगे चल कर उसकी बढ़ती कला बहुत से विपत्ति रूपी बादलों से घिर गई। चंद वरदाई तो कहता है कि एक बार तो उसको गद्दी भी छोड़नी पड़ी। इसका कारण यही जान पड़ता है कि वह परमार राजा की पुत्री पर अत्यन्त मोहित था और उसी पर उसका अगाध प्रेम था इसलिए दूसरी रानियां और उनके सम्बन्धी ईर्ष्यालु हो गये। फिर भी जैसे तैसे श्री शिवजी के प्रसाद से उसने पुनः सत्ता प्राप्त करली और उसका अधिक त्रासदायक रीति से उपभोग करने लगा। इसमें मुख्य बात तो यह हुई कि वह काम के वश होकर निर्मर्याद हो गया और निराश होकर उसकी प्रजा ने टोलियां बना बना कर देश छोड़ने की धमकी दी।

नगर वासियों के झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे होकर प्रधान मंत्री के घर पहुँचे और रुष्ट होकर कहने लगे–"स्त्रियों और पुरुषों, दोनों पर ही आफत है–हम यहां नहीं रहेंगे–कहीं अन्यत्र चले जावेंगे।" प्रधान ने उत्तेजित प्रजा को शान्त किया और उनमें से कुछ मुखियाओं एव रानियों के साथ सलाह करके वे सब वीसल के पास उपस्थित होकर कहने लगे "भूमि की रक्षा करने के लिए राजा को भ्रमण करते रहना चाहिए, भूतल पर बहुत से छोटे मोटे राजा हैं। ऐसे कण्टकों को दूर करने के

लिए [१] अधिराज को उन पर आक्रमण करके-उनके राज्य को अपने आधीन करना चाहिए।" राजा ने उनके कथन का भावार्थ समझ लिया और कहा "मुझ में जो आग भड़क उठी है वह तुम्हें जलाती है। अब तुम जैसा कहोगे वैसा ही करूँगा। मै कीरपाल को बुलाऊँगा और फिर तुम जिस देश पर चढ़ाई करना उचित समझोगे उसी पर तुम्हारे साथ चढ़ कर चलूँगा।"

इसके बाद उसने सब मन्त्रियों को आज्ञा दी और कीरपाल को बुला भेजा। कीरपाल सांभर से अजमेर नगर को आ पहुँचा। आते ही उसने राजा के चरण छूकर भेट स्वरूप एक तलवार आगे रखदी। इस तलवार की मूंठ और म्यान रत्नों से जड़ी हुई थी। राजा ने उस तलवार को कमर में बाँधली और मुहूर्त विचारने में चतुर ज्योतिषियों ने इसको शुभ शकुन बताया। तब राजा ने कहा "यह शकुन मेरे अनुकूल हुआ इसलिए अब मै नव खण्ड पृथ्वी मे अपनी तलवार चलाऊँगा और समस्त भूमण्डल को अपने आधीन करूँगा मेरु के समान दृढ़ राजाओं को भी अपना करद (आधीन) बना कर छोड़ूंगा। हे कीरपाल! मेरी बात सुनो! कोप लेकर मेरे साथ चलने को तैयार हो जाओ और बीसल सरोवर पर चल कर खेमे गाड़ दो।"

---

(१) मुसलमानों ने भारत की सीमा पर कितने ही स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इन्हीं को पुनः हस्तगत करने के लिये बीसलदेव की अध्यक्षता में बहुत से छोटे छोटे राजा इकट्ठे हुए थे परन्तु गुजरात से भीमदेव नहीं आया और न कोई सोलंकी ही सम्मान प्रदर्शन करने आया। ये सभी बातें चन्द ने लिखी हैं जो ऊपर लिखी हुई बातों से स्पष्ट होती है। यदि भीमदेव भी साथ मिल गया होता तो हिन्दुस्तान में मुसलमानों के पैर न जमते।

उसने दशों दिशाओं में बुलावे भेजे "सब लोग अजमेर आकर मुझ से मिलें।" महान् श्री परिहार उससे आकर मिला, मंडोवर के अधिपति ने उसके चरण छुये, सब गहलोत इकट्ठे होकर आ पहुँचे। राम गौड, तँवर, पावा का अधिपति, मेवाड का राजा महेश और दूनापुर का मोहिल (१) भी अपने अपने साथियों सहित आये। बलोच अपनी पैदल सेना को साथ लेकर आये और सिन्ध का राजा सिन्ध को भाग गया। भटनेर के राजा ने भेंट भेजी और मुलतान तक के राजा आकर सम्मिलित हुए। जैसलमेर आज्ञा पहुँची, सब भूमिये आधीन हो गये, यादव, बाघेला, मोरी और महान् गुर्जर, इन सबने आज्ञा को माना। अन्तर्वेद से कुरभ आया। समस्त मेरों ने आधीन होकर बीसल के चरणों का स्पर्श किया। आज्ञा को शिरोधार्य करके जैतसिह रवाना हुआ और साथ में तचिपुर के राजा को भी लेता आया। बहुत से परमार घोड़ों पर चढ़ कर आये, दोनों ने उसका साथ दिया, चन्देलों और दाहिमों ने उसकी पूजा की। उसने अपनी तलवार घुमाकर समस्त भूमियों को आधीन कर लिया।

सोलंकियों में से कोई भी उसका सम्मान करने के लिये नहीं आया। वे सब अपनी तलवार को दृढ़ता से पकड़े हुए अलग खड़े रहे। यह देखकर जैतसी गोलवाल ने कहा "अपने घरों और नगर की रक्षा के लिये थोड़ी सी फौज अजमेर में छोड़कर हम लोग आगे बढ़ें, अब चालुक्य बच नहीं सकते।" कूच पर कूच करते हुए योद्धा लोग पहाड़ी मार्ग से आगे बढ़े और राजा बीसल ने भी सोलंकी पर पहला

(१) मोहिल—मानिकराव से उत्पन्न हुई चौहानों की एक शाखा (देखो टॉड राजस्थान भाग २ पृ० ४४५; इस उद्धरण का प्रमाण भाग २ पृ० ४४६।

वार करने के लिये कदम बढाया। उसने बहुत से दुर्गों को मिट्टी में मिला दिया। जालोर को हस्तगत करके दुर्ग को नष्ट कर दिया- शत्रु जंगल में और पहाड़ों में भाग गये। आबू पर चढ़ कर उसने अचलेश्वर के दर्शन किये। वागर को विजय कर लिया। गिरनार की भूमि, सोरठ में उसको बिना लड़ाई लड़े ही सम्मान व कर मिल गया।

सत्तर नगरों के देश गुजरात में उस समय चालुक्यराव बालूक योद्धा था। समाचार सुनते ही बालूक घोड़े पर सवार होकर आया और शिव और दुर्गा का पूजन किया। उसके कन्धे पर तलवार थी; उसके साथ तीस हजार घुड़ सवार और सत्तर मदमाते हाथी थे। लगभग दो गावों की (एक लीग) दूरीपर जाकर उसने घेरा डाला। वीसल ने चालुक्य-राय के प्रस्थान का हल्ला सुना। उसने एक एक घोड़ा मँगवाया और उस पर सवार हुआ। राज-नौबत बजने लगी और अपनी सेना का व्यूह रच कर वह आगे बढ़ा। उसके आ पहुँचने का शोर शत्रुओं ने सुना। वह सत्तर हजार सेना के साथ आया था। ऐसा मालूम होता था मानों वर्षा ऋतु में वरसाती जानवर शब्द कर रहे हों. ढालें और तलवारें चमकने लगीं, वीरों में उत्साह था, आनन्द था, कायरों के हृदय में घबराहट थी। चालुक्य के देश का नाश करती हुई, समुद्र की वेगवती तरङ्गों के समान सेना आगे बढ़ रही थी। शहर, कस्बा एवं गाँव जो भी मार्ग में आया, लूट लिया गया।

जब चालुक्य ने यह समाचार सुना तो वह धुँधुआती हुई आग के समान भड़क उठा। चालुक्य योद्धा बालूकराव ने जल मंगाकर स्नान किया और विष्णु भगवान् का चरणामृत लिया। फिर हरि को गले में धारण करके बोला "अर्थं साधयामि वा देहं पातयामि (आज या तो जय

प्राप्त करूँगा अथवा इस शरीर को छोड दूंगा। यदि मै रणस्थल छोड़ कर भागू तो मेरे कुल की कीर्ति नष्ट हो। क्या पृथ्वी पर कोई योद्धा ही नहीं रहा, जो यह वीसल इस प्रकार वे रोकटोक आगे बढता चला आरहा है?"

श्रीकण्ठ बारहट को शत्रु के पास भेजा गया। वह वीसलदेव चौहान के पास गया और हाथ उठाकर उसको आशीर्वाद दिया। बालूकराव का हाल चाल सुनाते हुये उसने कहा "आपको जो कुछ करना हो वह राजा के साथ करना चाहिये, इस प्रकार प्रजा को दुख देने का क्या अर्थ है? आपने प्रजा को कष्ट पहुँचा कर अच्छा नहीं किया, ऐसा कोई भी हिन्दू राजा नहीं करेगा। इसलिये अब प्रजा को बरबाद करना बद करके अपने घर अजमेर लौट जाओ और वहीं पर राज्य करो। बालूकराय ने कहलाया है "मै क्षत्रिय वंश का हूँ, लड़ाई लड़ना मेरा धर्म है, भाग जाना मेरे लिए दुख दायक है–परन्तु, रणक्षेत्र में सर जाना मेरे लिए उत्सव के समान है। मेरे साथ जो सामन्त हैं, वे कुलीन हैं, हम तुम्हारे हटाये कभी न हटेंगे–इसलिये लौट जाओ लड़ाई का विचार छोड़ दो और हम से मोर्चा मत लो।" चौहान ने यह संदेश सुनते ही युद्धार्थ कूच का डंका बजवाया। हाथियों और घोड़ों पर सामान सजाया गया। शूरवीरों ने शस्त्रास्त्र धारण किये और दोनों सेनायें आमने सामने आ खड़ी हुई। वे दोनों समुद्र की दो उत्ताल तरङ्गों के शिखरों के समान दिखाई देने लगी। चौहान ने चक्रव्यूह की रचना की और कहा "अब हमें देखना है कि बालूकराय इसको अभिमन्यु(१)

(१) महाभारत मे कौरवों ने चक्रव्यूह रचा था। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने छः चक्रों को तो तोड दिया था, परन्तु सातवें के द्वार पर वह मारा गया था।

के समान तोड़ सकेगा या नहीं। जो कुछ होना है वही होगा।"

दोनों सेनाएं भिडीं। योद्धा लोग अपने साथियों से कहने लगे भाइयो! मारो! भाइयो! मारो! लड़ाई छिडी और मारकाट शुरू हुई। चालुक्य की सेना पीछे हटी—बालूक राव सहायता को आ पहुँचा और उसने व्यूह को हिला दिया। परिहार और गहलोतों ने पीठ दिखादी। परिहार भाग कर तंवर के स्थान पर चला गया। इस प्रकार व्यूह टूट कर खिलमिल हो गया। उसी समय कधार और बलोच वीरता से बालूकराव के सामने बढ़े और किसी बात की परवाह न की। योद्धा रक्त से लथपथ हो गये थे और उनके कवच इस प्रकार लाल रंग में रंग गये थे मानो उन्होंने होली खेली हो। खून से रंगे हुये हाथी ऐसे मालूम होते थे मानों वसन्तऋतु में पलाश (टेसू) के वृक्ष लाल लाल फूलों से लद गये हों। अब बालूक और बीसल दोनों आमने सामने हुये। वह (बालूक) ऐसा प्रतीत होता था मानों सूर्य के सामने आने से चन्द्रमा फीका पड़ गया हो। चालुक्य घोड़े पर था और चौहान हाथी पर। दोनों राजाओं मे भयंकर युद्ध हुआ और जब हाथी के दाँतों तक बालूक अपने घोडे को बढ़ा ले गया तब दोनों के शस्त्र टकरा गये। अन्त में रात्रि हो जाने के कारण दोनों योद्धा विलग हुए और अपनी अपनी छावनी में जाकर घायलों की देख भाल करने लगे।

दूसरे दिन सवेरे ही चालुक्य के मन्त्रियों ने इकट्ठे होकर सलाह की और राजा की जानकारी के बिना ही चौहान के पास सन्देश भेजा। यह समाचार सुन कर पावा का अधिपति राजा के पास गया। कीरपाल को भी बुलाया गया। चालुक्य के मन्त्रियों ने कहा "आप जितना चाहें उतना ही धन ले लें, हम आपके चरणों में भेंट करेंगे।" राजा

ने उत्तर दिया "मैं यहां पर एक निशानी छोड़ जाऊंगा और एक मास के समय में एक नगर बसाऊंगा। यदि यह स्वीकार हो तो अपनी भेंट ले आओ।" इस प्रकार शर्तें तय हो गईं। चौहान ने खेत जीता और चालुक्य घायल हुआ। यों वीसलनगर की स्थापना करके वीसल घर लौट गया। (१)

चन्द बारहट ने वर्णन किया है कि थोड़े से दिनों के लिए वीसल ने जिस दुर्गुण को छोड़ दिया था, अजमेर पहुँचने पर वह फिर उसी में फस गया। एक साध्वी स्त्री का सतीत्व भंग करने के दण्डस्वरूप उसे मनुष्य शरीर छोड़ कर नरमांस-भक्षक असुर अथवा दानव का रूप धारण करना पड़ा। साधारणतया लोगों का कहना है कि वह सॉप के काटनेसे मर गया था और परमार रानी उसके मृत शरीर को लेकर सती हो गई थी।

वीसलदेव के बाद सारङ्गदेव गद्दी पर बैठा। उसने सबसे पहला काम तो यह किया कि अपनी गर्भवती स्त्री को रणथंभोर के दुर्गम दुर्ग में सुरक्षित रहने के लिए भेज दिया। इस किले में उसके पीहर वालों की बैठक थी। फिर, वह उस दानव को नष्ट करने के प्रयत्न में लगा जिसने उसके स्थान, अजमेर पर कब्जा कर लिया था और अपने क्रोध एव उद्दण्डता के वश होकर नगर को ऊजड़ कर दिया था। परन्तु इस कार्य में सारंगदेव असफल ही नहीं हुआ वरन् स्वयं भी उस दानव की भेंट हो गया।

---

(१) कर्नल टॉड कृत वेस्टर्न इण्डिया पृ० १७२ में लिखा है कि समझौते की शर्तों में एक शर्त यह भी थी कि बालूक अपनी कन्या का विवाह वीसलदेव से कर दे। हम्मीर राजा के पराक्रम का वर्णन करते हुए हम्मीर रासो का प्रमाण देकर उसने यह भी लिखा है कि भीम के पुत्र कर्णदेव को वीसलदेव कैद करके ले गया था।

सारङ्गदेव और गौरी का पुत्र आनो इस प्रयत्न में कृत कार्य हुआ। उसने अपने पिता के मार्ग से विरुद्ध प्रकार ग्रहण किया। हथियार लेकर सामना करने के बदले वह उसकी शरण में चला गया और अपनी रक्षा करने के लिये प्रार्थना की। उसकी नम्रता से खूब प्रसन्न होकर दानव ने वरदान दिया "पिता के बाद पुत्र, इस प्रकार तुम्हारा वंश अजमेर पर राज्य करता रहेगा।" यह कह कर वह आकाश में उड़ता हुआ यमुना नदी पर निगमबोध को चला गया और वहाँ पर जब अनंगपाल तँवर ने दिल्ली बसाई तब तक ३८० वर्ष पर्यन्त अपने पापों का प्रायश्चित्त करता रहा। चन्द का कहना है कि उस (दानव) के अङ्गों से पृथ्वीराज के सामन्तों की सृष्टि हुई थी। वह अपने विषय में कहता है कि उसकी उत्पत्ति दानव की जिह्वा से हुई थी। [१] आनो के बाद उसका पुत्र जय-

---

(१) पृथ्वीराज का जन्म स० १२१५ में हुआ था। उसके विषय में ऐसी दन्तकथा है:—वीसलदेव ने एक नागकन्या से विवाह किया और दूसरी रानियों की अपेक्षा उससे अधिक प्रेम करने लगा। रानियों ने उस नागकन्या को जहर देकर मारने की सोची। यह बात जब नागकन्या को विदित हुई, तो वह एक मणि के प्रभाव से, जो उसके पास थी, राजा को एक महल के अन्दर ले जा कर रहने लगी। यह महल जल के भीतर बना हुआ था। उस मणि में ऐसी शक्ति थी कि उसके प्रभाव से जल में भी रास्ता दिखाई पड़ता था। राजा उसी के सहारे जल में आता जाता था। जब रानियों को यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने राजा की पगड़ी में से उस मणि को चुरा लिया और जला दिया। इस प्रकार नागकन्या के वियोग के कारण राजा बहुत दुखी हुआ। इसके बाद, एक बार राजा ने एक ऋषि-कन्या देखी जो नागकन्या के समान ही सुन्दरी थी। उसकी पवित्रता नष्ट कर देने के कारण उसने राजा को शाप दिया जिससे वह राक्षस हो गया। चार पीढ़ी बाद सोमेश्वर हुआ, वह राक्षस सम्बन्धी बात जानता था। एक बार अपनी स्त्री से दुखी होकर एक ब्राह्मण उस राक्षस के पास गया। राक्षस ने उससे अपने पास आने का कारण पूछा।

सिंह गद्दी पर बैठा और उसके बाद आनन्ददेव, जो भीमदेव द्वितीय से युद्ध करने वाले सोमेश्वर का पिता तथा पृथ्वीराज का दादा था।

भीमदेव प्रथम का विवाह उदयामती से हुआ था जिसके पेट से कर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस रानी ने अणहिलवाड़ा में एक कुआ बनवाया था जो आज तक टूटी फूटी दशा में विद्यमान है। यह कुआँ वनराज के वंश की बची हुई एकमात्र निशानी है जो अब तक "रानी की बावड़ी" कहलाता है। भीमदेव के दो कुँवर और थे जिनके नाम मूलराज और क्षेमराज थे। आगे पढ़ने पर विदित होगा कि इन दोनों का ही जन्म कर्ण से पहले हुआ था। मूलराज की माता के नाम का तो पता नहीं चलता, परन्तु क्षेमराज की माता का नाम बकुलादेवि था। यह राजा की रखेली थी और नीच कुल की स्त्री थी। प्रबन्धचिन्तामणिकार का कहना है कि वह वेश्या थी और राजा ने उसे मोल लेकर दासी बना लिया था। क्षेमराज को कहीं कहीं हरिपालदेव भी लिखा है। उसने (क्षेमराज ने) जब वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लिया तब विष्णु की पूजा करने के कारण शायद उसका यह नाम पड़ गया होगा।

ब्राह्मण ने जब बताया कि वह अपनी स्त्री से दुखी है तो राक्षस ने उसे बहुत सा धन दिया और कहा "जा इससे तेरी स्त्री राजी हो जायगी, परन्तु इसके बदले में मेरा एक काम करना—वह यह कि तू सोमेश्वर से जाकर यह कहना "मैं (राक्षस) शूकर का रूप धारण करके वन में फिरूंगा और तुम इस प्रसग में मेरा वध करके मेरे मास का भक्षण करना। इससे तेरा तो उद्धार होगा ही वरन् जो इस मांस को खायें उनको भी पुत्र की प्राप्ति होगी।" सोमेश्वर अपने विश्वासपात्र साथियों को लेकर वहां गया और जैसा राक्षस ने कहा था वैसा ही किया। इससे उसके पृथ्वीराज उत्पन्न हुआ और उसके साथियों के पृथ्वीराज के सामन्त। उस शूकर की जीभ भाट के भाग में आई जिससे बरदाई चन्द की उत्पत्ति हुई थी।

इसी आचार्य (प्रबन्धचिन्तामणिकार) ने मूलराज के विषय में एक आश्चर्यजनक कथा लिखी है जिससे यह विदित होता है कि भीमदेव का राज-कर वसूल करने का कैसा प्रबन्ध था तथा गुजरात के किसान उस समय भी कर मांगने पर उतना ही हठीलापन दिखाते थे जितना कि आज, परन्तु साथ ही राजाओं में उतनी ही मदुलता भी थी।

एक बार गुजरात में वर्ष भर वर्षा नहीं हुई जिससे दंडाई और विशोषक नामक छोटे छोटे ग्रामों के कौटुम्बिक उस वर्ष का राज्यकर न दे सके। एक मन्त्री (जिनको आज कल मेहता कहते हैं) इसकी जांच करने के लिए भेजा गया और उसको जिन लोगों के पास कुछ माल मिल्कियत मिली उनको पकड़ कर वह राजधानी मे ले आया। उन लोगों को भीमदेव के सामने उपस्थित किया गया। उस दिन प्रातः काल मूलराज, जो सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ प्रसिद्ध था, वहीं घूम रहा था। उसके साथ राजा का दिया हुआ एक दास भी था। जब मूलराज ने उन किसानों को धीरे धीरे आपस में बातें करते देखा तो उस नौकर से उनके विषय में पूछा। जब नौकर ने उनके विषय में सब विवरण निवेदन किया तो वह गद्गद् हो गया और उसकी आंखों में आंसू आ गये। इसके थोड़ी देर बाद ही उसने अपनी घुड़सवारी की कला से राजा को प्रसन्न किया और जब राजा ने उसे वरदान मांगने को कहा तो उसने इच्छा प्रकट की कि उन कौटुम्बिकों को उनका कर लौटा दिया जावे। राजा की आंखों में आनन्द के आंसू आ गये और उसने इस बात को मान लिया तथा मूलराज से दूसरा वर और मांगने के लिए आग्रह किया।

कैद से मुक्त होने पर कौटुम्बिक लोग उसके चरण छूने आये

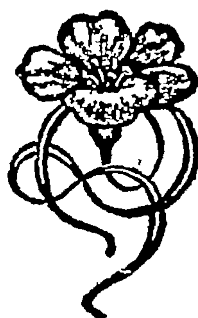
और उनमें से कितने ही तो वहीं उसकी सेवा में रहने लगे। दूसरे लोग अपने घर लौटे और चारों दिशाओं में उसकी कीर्ति का प्रसार करने लगे।

थोड़े दिनों बाद ही मूलराज की मृत्यु हो गई और अपने दयालु स्वभाव के कारण वह सीधा स्वर्ग में गया। राजा, उसके दरबारी तथा जिन लोगों को उसने कैद से मुक्त कराया था—सभी उसकी मृत्यु के कारण घोर दुखसागर में डूब गये। परन्तु धीरे धीरे विद्वानों के उपदेश से इस दुख रूपी हाथी का दन्तशूल दब गया। दूसरे वर्ष, वर्षा खूब हुई और प्रसन्न होकर कृषक लोग सभी प्रकार के अनाज सहित, पिछले एव चालू, दोनों ही वर्षों का राजभाग लेकर राजा के सामने उपस्थित हुए। राजा ने पिछले वर्ष का भाग लेना अस्वीकार कर दिया परन्तु कृषकों के बहुत कुछ प्रार्थना करने पर इस विवाद का निर्णय करने के लिये पंच नियुक्त किये गये। पचों ने निर्णय दिया कि दोनों ही वर्षों का भाग राजा ग्रहण करे और यह धन कुमार मूलराज की आत्मा को शांति पहुँचाने के निमित्त त्रिपुरुष प्रासाद नामक देवालय बनवाने में खर्च किया जावे।

द्व्याश्रय के कर्ता ने लिखा है कि सोलंकी वंश के पहले राजा मूलराज एव अपने अन्य पूर्वजों का अनुकरण करते हुये भीमदेव ने भी राज्यकाल के अन्तिम समय में अपने ज्येष्ठ पुत्र क्षेमराज को राज्य सौंप कर स्वर्गप्राप्ति के लिए तपश्चर्या करने का विचार किया। परन्तु क्षेमराज ने इस पद को ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया और कहा "मैं आपसे अलग होना नहीं चाहता, मैं तो आपके एकान्तवास में भी साथ ही रहूंगा।" बहुत कुछ वाद विवाद के बाद भीमदेव और क्षेमराज

दोनों ने कर्ण को सिंहासन पर बिठा कर वन को प्रस्थान किया। इसके थोडे ही समय पश्चात् भीमदेव की मृत्यु हो गई।

पितृवियोग से दुखी होकर क्षेमराज सरस्वती नदी के किनारे मुण्डकेश्वर नामक स्थान पर जाकर रहने लगा। यह स्थान दधिस्थल अथवा देथली नामक ग्राम से थोड़ी ही दूर पर है—जो कि कर्णराज ने क्षेमराज के पुत्र कुमार देवप्रसाद को इसलिये दे दिया था कि वह वानप्रस्थ आश्रम में अपने पिता की सेवा कर सके।



प्रकरण ७

राजा कर्ण सोलंकी—मीनलदेवी का राज्यकारभार-सिद्धराज

राजा कर्ण के राज्यकाल में (१०७२ ई० से १०६४ ई०) गुजरात विदेशियों की लड़ाई से मुक्त रहा। कहते हैं कि, इससे पहले के शासकों ने जिन निकटवर्ती राजाओं को अपने आधीन कर लिया था उनसे तो यह कर लेता रहा और समय समय पर उन पर चढ़ाई भी करता रहा, परन्तु इस बात का प्रमाण कहीं नहीं मिलता कि किसी अन्य सत्तावान् पड़ौसी राज्य से भी इसकी लड़ाई हुई हो। फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि उसको ऐसा अवसर मिला जिससे उसने लाभ उठाया और मेवास के दुर्गम एव ऊजड़ भाग को अधिकार में करके अपने बल को दृढ़ किया।

साधारणतया यह मानने मे आता है कि बहुत प्राचीन काल में गुजरात जङ्गली जातियों का निवासस्थान था। इन जातियों के वशज अब भी मिलते हैं और सामान्यतया इनमें आपस में बहुत कुछ समानता भी पाई जाती है, परन्तु, इन लोगों के धर्म एवं राजतत्र के विषय में कथारूप से बहुत कम वृत्तान्त प्राप्त हैं। बिशप हेबर [२] के मतानुसार ये लोग मध्य एव पश्चिमी हिन्दुस्तान के आदि निवासी थे और बाद में

(१) चैत्र वुदि ७ सोमवार सं० ११२८ वि० में हस्त नक्षत्र, मीन लग्न में इसका राज्यभिषेक हुआ—मेरुतुंग।

(२) देखिये बिशप हैबर्स जर्नी वॉल्यूम २, पृष्ठ ३१-६८

ब्राह्मण धर्म मानने वाली और कहीं बाहर से आई हुई जातियों के आक्रमणों द्वारा, अपने अपने किलों में धकेल दिए गये, जहाँ उनका जीवन अत्यन्त दुखदायक और निरुपाय हो गया था। "यह बात तो ये राजपूत लोग भी अपने परम्परागत इतिहास में स्पष्टतया स्वीकार करते हैं कि उनके प्रधान नगरों और किलों में से अमुक अमुक नगर व किला अमुक अमुक भील सरदार द्वारा बसाया अथवा बनवाया गया था और बाद में सूर्यवंशियों ने इसे अपने कब्जे में कर लिया था। भाट लोगों का कहना है कि, उत्तानपाद का मरण एक महात्मा के शाप से हुआ था। उसके वश में वेणु हुआ और वेणु के शरीर से भील अथवा कैयो उत्पन्न हुआ। इसी भील अथवा कैयो से इन लोगों की एक शाखा चली है। कैयो आबू पर्वत के आसपास के जंगलों में राज्य करता था। वह आजानुबाहु नामक पुत्र छोड़ कर मरा जो बहुत बलवान् था और अपने पिता के राज्य का योग्यतापूर्वक संचालन करता था। इसी के वंश में गुह उत्पन्न हुआ जो केवट का धंधा करता था। अयोध्या से चल कर उसी के घर श्री राम ने पहला विश्राम किया था। गुह से सब भीलों की उत्पत्ति हुई, बाद में जिनकी दश शाखाएं हो गईं।

महाभारत में लिखा है कि उस समय कैया नाम की एक जाति गुजरात में बसती थी। मत्स्यपुर अथवा विराटपुर में, (आज कल वहाँ धोलका नामक कस्बा बसा हुआ है,) जब पाण्डव लोग विराट राजा के यहाँ जाकर रहे तो उन्होंने वहाँ कैयो जाति की सुदेष्णा नाम की रानी देखी जिसके भाई कैया कीचक का, द्रौपदी का सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा करने के अपराध में, भीम पाण्डव ने वध किया था। इस कैयो के विषय मे लिखा है कि वह अपनी जाति सहित सब लड़ाइयों

में विजय प्राप्त करके दुर्योधन व उसके मित्र सुशर्मा के अधीनस्थ त्रिगर्त देश (१) को नष्ट करके लौटा था।

एक ऐसी ही दन्तकथा और भी प्रचलित है जिसके अनुसार राजा मान्धाता के पिता यौवनाश्व से कोली लोगों की उत्पत्ति हुई। उसके पूर्वज कोली का पालन पोषण एक साधु द्वारा उसी के आश्रम में हुआ था और वह सदा जंगल ही में रहता था। भाट लोग कहते हैं कि, उसके वंशजों का बस्ती मे तो ऐसा कोई उपयोग नहीं था परन्तु जङ्गलों में वे लोग शेर के समान रहते थे। ये कोली लोग बहुत समय तक सिन्धु नदी के पास ही समुद्र के किनारे रहते रहे परन्तु हिंगलाज माता उनको नल के पास के देश में ले गई जहाँ वे लोग अपने साथ बीरड़ नाम का बीज भी ले गये थे। यह बीज अकाल मे भी निष्फल नहीं जाता। उस समय वे लोग म्हेर कहलाने के साथ साथ कोली भी कहलाते थे और सोनंग म्हेर उनका मुखिया था। उसके बारह पुत्र हुये जिनमे से प्रत्येक के नाम पर अलग अलग शाखा चली। सबसे बड़ा लड़का नरबान नल बावली में जाकर बस गया और वहीं अपने लिये बनवाए हुये एक मन्दिर में हिंगलाज देवी ने भी निवास किया। अब तो यह मन्दिर विद्यमान नहीं है परन्तु नल के एक द्वीप पर इसका स्थान बतलाया जाता है जहाँ अब भी एक आरा हिंगलाज के आरा के नाम से प्रसिद्ध है। (२) दूसरा लड़का धन म्हेर अथवा धाँड था जिसने धन्धुका बसाया, जो बहुत वर्षो तक इसके वंशजों के ही अधिकार मे रहा। वह इतना बलवान था कि उसने स्वयं अपने आप राजा पदवी ग्रहण की। उसके

(१) आजकल का तिरहुत जो नैपाल के दक्षिण मे है।

(२) बॉम्बे ब्रान्च ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल पुस्तक ५ का पृ० ११२

पास पन्द्रह हजार पैदल और अठारह हजार घुड़सवार थे तथा आठ हाथी धाँड के किले में सदैव झूमते रहते थे। दूसरे लड़कों के पास भी इसी प्रकार एक एक गाँव था। भाट कहते हैं कि उस समय गुजरात की जनसंख्या इतनी अधिक नहीं थी वरन् जंगल अधिक थे और ये भील तथा कोली जाति के लोग निर्भय होकर विचरते थे। निस्सन्देह, उस समय इन लोगों ने अब की भाँति ही लूट मार करने के परम्परागत धन्धे को अपना रखा होगा और अपने आपको रात्रिदूत (निशाचर) कहते होंगे। गुजरात के इतिहास में राजा कर्ण सोलंकी ही पहला राजा हुआ जिसने अपना ध्यान इन जंगली जातियों को दबा कर रखने की ओर लगाया और उसके क्रमानुयायी भी आज तक इस बात को थोड़ी बहुत निभाते चले आ रहे हैं।

इन लुटारू जातियों के रहने के मुख्य निवास स्थान कच्छ के छोटे रण के पूर्वीय भाग से साबरमती नदी तक फैले हुए प्रदेश में थे। आशा नाम का भील सरदार आशावल्ली नामक स्थान मे रहता था जो आजकल आशावल कहलाता है और अहमदाबाद के पास ही स्थित है। कहते हैं कि इस भील पर राजा कर्ण ने चढ़ाई की थी और अगणित धनुर्धारियों का स्वामी होते हुए भी वह हार गया और कर्ण के हाथ से मारा गया। शुभ शकुन देख कर राजा ने वहीं कोचरबदेव के मन्दिर (१) का निर्माण

(१) कर्ण सोलंकी जब नगर बसाने के लिए उपयुक्त स्थान ढूंढने निकला तो उसके साथ शिकारी कुत्ते भी थे। उनके पास होकर सामने से कुछ खरगोश निकले और नदी में घुस गये। उनको मारने के लिए नदी के जिस भाग में वे घुसे थे वहीं उसने तलवार का वार किया। तलवार के जितने भाग मे नदी के जल का स्पर्श हुआ वह गला हुआ सा मालूम पड़ने लगा। वहीं के रहने वाले किसी मनुष्य से पूछने पर उसने उत्तर दिया कि 'यहां के खरगोश भी कुत्तों को इस तरह छका देते हैं और इस नदी का पानी इतना पाचक है कि लोहे की धार को भी गला देता है।'

कराया। अहमदाबाद के पास नदी के किनारे पर एक स्थान है जिसका यही नाम आज तक सुरक्षित है। प्रबन्धचिन्तामणि के कर्ता मेरुतुंग ने लिखा है कि उसी स्थान पर उसने एक मन्दिर जयवन्ती देवी का तथा दो मन्दिर अपने इष्टदेव कर्णेश्वर एवं कर्णमेरुप्रासाद नाम के बनवाये। उसने वहीं कर्णसागर नामक एक सरोवर भी बँधवाया और कर्णावती नाम की एक नगरी बसाई जिसको उसने अपना निवास-स्थान बना लिया था।

कर्णावती (१) नगरी की स्थिति के बारे मे ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु कर्णसागर नामक महान् सरोवर की स्थिति के बारे मे किसी को सन्देह नहीं हो सकता। अणहिलवाड़ा पट्टण से दक्षिण की ओर कुछ ही मीलों की दूरी पर मोढेरा नगर के पास एक छोटा सा गॉव है जो आज तक कनसागर (कर्णसागर) कहलाता है। इस गॉव

(१) कर्ण के बाद में, आगे चल कर मुसलमान क्रमानुयायी अहमदशाह हुआ। उसका नगर जहाँ पर आजकल बसा हुआ है वहीं कर्ण का नगर रहा होगा, ऐसा सभव है। कोचरब और आशावल्ली नामों से भी भान होता है कि यह वही स्थान है जहां आजकल अहमदाबाद बसा हुआ है। वहा पहले कोई हिन्दू नगर था, इसमे भी कोई सन्देह नहीं है। मुसलमानी कथाओं में शाह अहमद के नाम के साथ आशावल्ली का भी नाम आता है जो कदाचित राजा कर्ण की प्राचीन कथाओं से सम्बद्ध करने के लिए लिखा गया होगा। आधुनिक हिन्दू और जैन पुस्तकों एवं लेखों में अहमदाबाद को श्रीनगर भी लिखा है। अहमदाबाद के पास जो दादा हरि की बावडी कहलाती है उसको स० १५०० ई० में बेगडा के कुटुम्ब की हरी बाई नाम को स्त्री ने बनवाई थी। उस पर एक लेख में लिखा है कि ' श्रीनगर के ईशान कोण में हरिपुर नामक स्थान मे यह बावडी स्थित है।' श्रीनगर का नाम सिद्धराज के राज्यकाल के वर्णन में भी आया है इसलिए यह निश्चित है कि 'श्रीनगर' किसी नगर का उपमान मात्र है जिसका अर्थ ऋद्धि सिद्धि वाला नगर अथवा शहर होता है।

की भूमि से प्रतीत होता है कि यह किसी पुराने तालाब के पेटे की जमीन है और आसपास के गांवों वाले इसको अब भी दस मील का तालाब कहते हैं। उन लोगों में यह भी दन्तकथा प्रचलित है कि इसको सिद्धराज के पिता, दयावान् कर्ण ने बँधवाया था। यद्यपि अब तो इसका ढाँचा भी नहीं रह गया है फिर भी देखने से साफ मालूम होता है कि यह किसी राजा द्वारा बँधवाया हुआ ठाठ है। खेरालू के दूसरी ओर की पहाड़ियों से बह कर आने वाली रूपेण नदी के 'रन' की ओर जाने वाले प्रवाह को यहाँ रोक लिया गया था और उसका पानी इसी कर्णसागर मे इकट्ठा हो जाता था। इस तालाब की जैसी सुन्दर योजना थी वैसा ही इसका काम भी मजबूती से हुआ था क्योंकि सदियों के बाद सदियाँ बीत गईं, वनराज का वंश विस्मृति में पड़ा गया, मुसलमानों ने इस देश को जीता और क्रमशः उनका भी नाश हो गया और तीर के समान तेज मरहठों का दल बादल भी जोशभरी पश्चिमी तोपों की गड़गड़ाहट से बिखर गया, तो भी रूपेण नदी कर्ण सोलंकी द्वारा बाँधी हुई श्रृङ्खलाओं में आबद्ध रही। परन्तु अन्त में, ये साँकलें टूट गईं और कर्णसागर एक ही क्षण में उपेक्षित उजाड़ सा होकर रह गया। (१)

मोढेरा नगर, एक सपाट मैदान में, ईंटों से बनी हुई इमारतों के खण्डहरों से युक्त एक छोटी सी पहाड़ी की टेकरी पर स्थित है। इसके आसपास के प्रदेश की दशा, एवं 'रण से आई हुई खारी पानी की नालियों को देखने से यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में यह नगर उस समुद्र

(१) यह घटना १८१४ ई० की है। पहले वर्ष तो अकाल पडा और दूसरे वर्ष पानी इतने जोर से बरसा कि थोडी देर के लिए रूपेन नदी का प्रवाह बहुत बढ गया और कर्णसागर की पालें टूट कर बराबर हो गईं।

के किनारे पर ही बसा हुआ था जिसने पूर्व काल में इस भाग को ढक रखा था। जैन-वृत्तान्तों में इसका नाम मोढेरपुर अथवा मोढबक पट्टण लिखा है और इसीलिए यहाँ के रहने वाले ब्राह्मण मोढ़ कहलाते हैं। इस नगर के पास ही हिन्दुओं का एक बहुत ही सुन्दर मन्दिर है जिसके लिए हम कल्पना कर सकते हैं कि वह या तो कर्णेश्वर का हो अथवा कर्णमेरुप्रासाद का, क्योंकि मेरुतुंग के लेखानुसार इन मन्दिरों की खोज या तो कर्णसागर के पास करना चाहिए अथवा आशावल के पास। इस मन्दिर के विषय में आगे चल कर बहुत कुछ लिखा जायगा परन्तु यहाँ पर इतना ही बता देना उपयुक्त होगा कि इसकी बनावट का ढंग कर्ण-सागर की शोभा बढ़ाने वाले मन्दिरों में से अब तक बचे हुये दो छोटे छोटे देवालयों से बहुत कुछ मिलता हुआ है। इसकी सर्वाङ्ग-सम्पूर्णता को देख कर प्रतीत होता है कि यह ऐसे समय में बनाया गया था जब कि सभी प्रकार के साधनों की बहुतायत थी और किसी विदेशी आक्र-मण का भय नहीं था।

रैवताचल अथवा गिरनार पर नेमिनाथ का एक भव्य मन्दिर है। कहते हैं कि यह भी राजा कर्ण का ही बनवाया हुआ है और इसीलिए 'कर्ण-विहार' कहलाता है।

बहुत दिनों तक कर्णराज के कोई संतान नहीं हुई थी। उसके राज्य-काल के पिछले वर्षों में एक ऐसी रोमाञ्चक घटना हो गई कि जिसके फल-स्वरूप वह एक पुत्र का पिता हुआ और उसके इस पुत्र का भाग्य इतना प्रबल निकला कि उसके द्वारा अणहिलवाड़ा की कीर्ति पराकाष्ठा को पहुँच गई। एक दिन, वह राजसभा में आकर सिंहासन पर बैठा ही था कि चोबदार ने निवेदन किया, 'महाराज! कितने ही देशों विदेशों में भ्रमण करता हुआ एक चित्रकार द्वार पर आया है और दरबार में उप-

स्थित होने की आज्ञा माँगता है।' राजा की आज्ञा से चित्रकार को उपस्थित किया गया। वह राजा का अभिवादन करके बैठ गया और कहने लगा, "महाराज ! आपकी कीर्ति देश देशान्तर में फैल गई है और बहुत से मनुष्य आपका ध्यान करते हैं तथा आपके दर्शनों के लिए इच्छुक हैं। मेरी भी बहुत दिनों से यही अभिलाषा थी।' ऐसा कह कर उस चित्रकार ने राजा के सामने बहुत से चित्र प्रस्तुत किये। उनमें से एक चित्र में लक्ष्मी राजा के सामने नृत्य करती हुई दिखाई गई थी और इसके पास ही लक्ष्मी से भी अधिक सुन्दरी एक कुमारी चित्रित थी। राजा ने जब इस चित्र को देखा तो कुमारी के सौन्दर्य की बहुत प्रसंशा की और चित्रकार से इसके कुल आदि के विषय में पूछ-ताछ की। चित्रकार ने उत्तर दिया 'दक्षिण में चन्द्रपुर नाम का एक नगर है, वहाँ का राजा जयकेशी है। यह उसी की पुत्री है और मयणल्लदेवी इसका नाम है। यह इस समय पूर्ण युवती है, कितने ही राजकुमारों ने इससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की परन्तु इसने किसी को भी मान्य नहीं किया। इसके सम्बन्धियों ने इससे कहा कि तेरा फूल सा यौवन तो बीता जा रहा है, तुझे अब विवाह कर लेना चाहिए। इस पर बहुत गुणवान् वर प्राप्त करने के लिए इस कुमारी ने गौरी का आराधन शुरू कर दिया। बौद्धमत को मानने वाले यतिओं ने भी, जो अपने शिर और दाढी मूँछ के बाल मुँडवाते हैं, बहुत से राजकुमारों के चित्र बना कर इसको दिखाए। इसके बाद एक अति कुशल चित्रकार चन्द्रपुर पहुँचा और उसने राजकुमारी को आपका चित्र दिखाया। उस चित्र को देख कर वह मन में बहुत प्रसन्न हुई और उसने अपनी माता से कह दिया कि उसने आपको अपने मन में पसन्द कर लिया है। अब उसकी यह दशा

है कि जब कोई पक्षी उत्तर की ओर से आता हुआ दिखाई पड़ता है तो उससे पूछती है कि क्या वह कर्णराज के यहाँ से आया है ? आप से विवाह हो जाने की इच्छा जल्दी से पूर्ण नहीं हो रही है इसलिये वह न खाती है न पीती है और सूखती चली जा रही है। इसी कारण उसने गुप्त रूप से मुझे आपकी सेवा मे भेजा है और राजा जयकेशी की भी इसमें अनुमति है।" ऐसा कह कर उस चित्रकार ने सोना जवाहरात और अन्य सामान जो जयकेशी ने भेजे थे राजा के सामने भेट किये। राजा ने उन सब को स्वीकृत किये और राजकुमारी से विवाह करने की उसके मन में प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई।

इसके बाद, शीघ्र ही कर्णराज के साथ विवाह करने के लिये राजकुमारी को अणहिलवाड़ा पट्टण लाया गया। उसका मान बढ़ाने के लिये राजा ने बहुत आदर सत्कार के साथ उसका स्वागत किया तथा उसको पट्टरानी बनाया। मीनल देवी वैसी ही सुन्दरी थी जैसा कि उसका वर्णन किया गया था और जिस गाथा को सुन कर वह उस पर मोहित हो गया था परन्तु फिर भी राजा उससे बहुत प्रसन्न नहीं हुआ। (१) यद्यपि अपना वचन पालने के लिये उसने विवाह की रीति को पूरा कर लिया था, परन्तु उसने एक वार भी आँख भर कर मीनल की ओर नहीं देखा। मीनलदेवी अपने पति के इस व्यवहार से बहुत दुखित हुई। उसने अपनी दासियों सहित चिता मे प्रवेश करके राजा कर्ण के सिर हत्या मँढने का

---

(१) द्व्याश्रय में लिखा है कि विवाह के बहुत वर्षों बाद तक राजा के कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। तब राजाने बहुत से व्रत धारण किए और लक्ष्मी की उपासना की। लक्ष्मी देवि ने प्रसन्न होकर पुत्र होने का वरदान दिया और उससे जयसिंह नामक कुंवर उत्पन्न हुआ।

विचार किया। कर्ण की माता उदयामति ने भी अपनी पुत्रवधू के दुख को असह्य जान कर उसी के साथ आग में जल कर प्राण-त्याग करने की धमकी दी। उसकी प्रजा ने भी राजा की इस क्रूरता और पातकीपन की खुले रूप में निन्दा की और राज्य की शोभा एवं दृढ़ता बढ़ाने के लिये उत्तराधिकारी प्राप्त करने के प्रयत्न से दूर हटने के लिये उसे बुरा भला कहा। इन सब बातों का राजा पर कोई असर न हुआ और वह अपने निश्चय पर दृढ़ रहा और यदि जैसी चाल टामर ने जुडाह के (१) साथ चली थी तथा जिस प्रकार मेरियाना ने उदासीन एञ्जैलो [२] को प्रेम करने के लिये विवश किया था वैसी ही चाल उसके साथ न चली जाती तो शायद वह अपनी प्रजा की आतुरता एवं अपनी माता और स्त्री की दृढ़ प्रतिज्ञा की पूरी परीक्षा लेकर ही सन्तोष करता। -

नमुञ्जला नाम की एक अत्यन्त सुन्दरी नटी (३) पर राजा आसक्त

---

(१) ये बाइबल के पात्र हैं।

(२) शेक्सपीयर के नाटक Measure for measure के पात्र।

(३) विल्हण अथवा बिल्हण नाम का कवि कश्मीर का रहने वाला था। उस समय कश्मीर में अनन्तदेव का पुत्र कलशदेव राज्य करता था। बिल्हण मथुरा, वृन्दावन, कान्यकुब्ज, काशी, प्रयाग, अयोध्या, डाहल, धारा नगर, गुर्जरदेश, सोमनाथ पत्तन और सेतुबन्ध तक घूमा था। वह जहां जहा गया वहीं उसकी विद्वत्ता एवं कवित्व शक्ति के कारण उसे यथेष्ठ सम्मान प्राप्त हुआ। जब वह दक्षिण दिशा के आभूषण-भूत चालुक्य वंश के राजा की राजधानी कल्याण नगर में पहुँचा तो कर्णाटदेश के अधिपति चालुक्य-वंश-भूषण कुन्तलेन्दु त्रैलोक्यमल्ल राजा के कुंवर विक्रमाङ्कदेव ने उसका बहुत सत्कार किया, बहुत सी सम्पत्ति एवं विद्याधिपति की उपाधि भी प्रदान की। यहीं पर कवि ने विक्रमाङ्कदेव चरित नामक महाकाव्य लिखा था। उसी से यह उपर्युक्त वृत्तान्त लिया गया है। बिल्हण चरित नामक एक खण्डकाव्य है जिसमें निम्नलिखित वृत्तान्त है। (चोर अथवा सुन्दर कवि कृत 'सुरत पचाशिका' अथवा चौर पंचाशिका ५० श्लोकों का द्व्यर्थक काव्य है। एक अर्थ राजकुमारी के पक्ष में लगता

हो गया था। उससे एकान्त में मिलने का संकेत किया गया। यह बात मुञ्जाल नामक मंत्री को मालूम हो गई और उसने किसी प्रकार उस

है दूसरा दुर्जन के पक्ष में। इसी पंचाशिका को 'बिल्हण पचाशिका' अथवा शशिकला पचाशिका भी कहते हैं और यह बिल्हण की कृति मानी जाती है, इस काव्य पर रामतर्कवागीश की टीका प्रसिद्ध है।)

गुर्जर देश के अणहिल पत्तननामक नगर में वैरीसिंह नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी अवन्ति के भूपाल की पुत्री थी जिसका नाम सुतारा (सुनारा) था। इस रानी से शशिकला नाम की एक कुमारी उत्पन्न हुई जिसको पढाने के लिए इस कवि (बिल्हण) को रखा गया था। कुछ समय बाद इन दोनों में प्रेम हो गया क्योंकि पूर्वजन्म में वे दोनों दम्पति थे। जब राजा को यह बात मालूम हुई तो उसने बिल्हण को शूली देने की आज्ञा दी परन्तु शशिकला ने अपनी माता से सच्चा सच्चा हाल कह दिया और बिल्हण की मृत्यु के बाद स्वयं मर जाने का विचार भी उसके सामने रखने दिया। इस पर रानी ने राजा को समझा बुझा कर शशिकला का विवाह बिल्हण के साथ करवा दिया।

ऊपर लिखा हुआ वृत्तान्त विश्वास के योग्य नहीं है क्योंकि जिस समय बिल्हण काश्मीर छोड कर निकला था उस समय गुजरात में भीमदेव का पुत्र कर्ण राजा (ई० स० १०७२) राज्य करता था। चापोत्कट वंश का वैरीसिंह तो ९२०ई० में ही देवलोक हो चुका था अतः बिल्हण का गुजरात में आना राजा कर्ण के समय में ही सिद्ध होता है।

राजा कर्ण मयणल्लदेवि से प्रसन्न नहीं रहता था और उसने जिस युक्ति से राजा का गर्भ धारण करके सिद्धराज जयसिंह को जन्म दिया, इस वृत्तान्त को लेकर बिल्हण ने 'कर्ण-सुन्दरी' नाम की नाटिका की रचना की जिसकी कथा-वस्तु इस प्रकार है।

एक बार कर्ण चन्द्रचूडेश्वर महादेव का पूजन कर रहा था। उसी समय कुछ अप्सराएं आकाशमार्ग से निकलीं। उनमें से एक अप्सरा शिवलिंग के ऊपर से निकली गई इसलिए उसके पुण्य का क्षय हो गया और वह पृथ्वी पर आ गिरी। परिक्रमण करते हुए राजा की दृष्टि उस सुन्दरी पर पड़ी और वह उसी समय उस पर मोहित हो गया। परन्तु, पूजन समाप्त होने तक उसने अपना मन वश में रखा। उसी समय रानी की एक परिचारिका भी वहां पर उपस्थित थी जो उस अप्सरा को तुरन्त ही रनवास में ले गई इसलिए पूजन से लौटने पर राजा को वह सुन्दरी दिखाई नहीं

जगह नटी के स्थान पर मीनल देवि को पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया। कर्णराज जाल में फँस गया और रानी उससे सगर्भा हुई। रानी ने उससे युक्ति द्वारा एक अँगूठी की निशानी इसलिये ले ली थी कि आगे

पड़ी। रात को वह सुन्दरी राजा को स्वप्न में दिखाई दी और पूर्ण प्रीति का प्रसंग आते आते उसकी आख खुल गई। इस प्रकार उस अप्सरा का अंकुर राजा के हृदय में बना ही रह गया। अमात्य सम्पत्तिकर को किसी प्रकार यह मालूम हुआ कि यदि वह गन्धर्व-कन्या किसी प्रकार राजा को मिल जावे तो वह चक्रवर्ती हो जावे। इसलिए उसने अपनी स्त्री की सहायता से उस अप्सरा का राजा से योग करवाने का प्रबन्ध कर रखा था। इसने पहले ही से उस सुन्दरी का चित्र राजा के शरदुद्यान में लता-मण्डप में बनवा रखा था, उसी के पास बैठ कर राजा विदूषक के साथ विनोद किया करता था। एक दिन राजा वहीं पर बैठा हुआ उस चित्र को देख कर विनोद कर रहा था। उसी समय रानी आती है और सुन्दरी के विषय की बात चीत सुन लेती है। सुन्दरी का ढँका हुआ चित्र भी उसे दिखाई पड़ जाता है और वह अप्रसन्न होकर चली जाती है।

दूसरे अंक में राजा रूठी हुई रानी को मनाता है और उधर विदूषक से कहता है "जिस स्त्री में मेरा मन लगा हुआ है वह मेरे अनुकूल है या नहीं इसका तलाश करो।" विदूषक ऐसा ही करता है और अन्तःपुर में छिपाई हुई विरहाकुल स्थिति में पड़ी उस स्त्री का पता चलाता है। यही बात वह आकर राजा कर्ण से कहता है। वह शरदुद्यान में चित्र से अपना मन बहलाव करने जाता है। परन्तु चित्र को रानी ने नष्ट करवा दिया था इसलिए उसको बहुत खेद हुआ। उधर वह स्त्री भी विरहाग्नि में जल रही थी इसलिऐ सखियाँ उसे कुण्ड पर स्नान कराने के लिए लिवा कर लाती है और वह अपनी दशा का वर्णन उनके सामने करती है। अन्त में निराश होकर वह फाँसी लगा कर मरने के लिए तैयार होती है। उसी समय विदूषक राजा को लेकर आ पहुँचता है और उस सुन्दरी को मरने से बचा लेता है। राजा का और सुन्दरी का एक दूसरे से बातें करने का प्रसंग आता है परन्तु रानी आ पहुँचती है और रंग में भंग हो जाता है।

चल कर राजा इस बात को अस्वीकार न कर सके। राजा उसको नटी ही समझे हुए था इसलिये अपने वेग के शान्त होने पर उसने बहुत पश्चात्ताप किया और ब्राह्मणों से पूछ कर ताँबे की बनी हुई सात गरम

तीसरे अङ्क में, सुन्दरी राजा के नाम प्रेम-पत्रिका भेजती है परन्तु पत्र को लेजाने वाला दासी वह पत्र रानी को दे देती है। पत्रिका में जिस संकेत-स्थान पर मिलने के लिए लिखा था वहीं पर रानी सुन्दरी का वेष बना कर पहुँच जाती है और वह पत्रिका राजा के पास भिजवा देती है। पत्रिका पढ़ कर राजा सकेत-स्थान पर जाता है और अँधेरे में रानी को ही सुन्दरी समझ कर उसकी प्रसशा करता है तथा रानी की निन्दा करता है। इस प्रसंग से ऊब कर रानी प्रकट हो जाती है और राजा उससे क्षमा माँगता है परन्तु वह उसका तिरस्कार करके चली जाती है।

चौथे अङ्क में, अमात्य को चिन्ता होती है कि गन्धर्व कन्या के आ जाने पर भी उसका विवाह राजा के साथ नहीं हो रहा है और यह रानी की अनुमति के बिना हो भी नहीं सकता, इसलिए वह उससे कहता है कि, आप तीन बार राजा का अपमान कर चुकी हैं इससे वे नाराज हो गए हैं, अब उन्हें मनाने का उपाय करना चाहिए। बहुत कुछ समझाने पर भी जब रानी नहीं मानती है तो अमात्य उसे एक युक्ति सुझाता है, "आपकी बहन के पुत्र का रूप रंग व आकार प्रकार सुन्दरी जैसा ही है इसलिए उसे स्त्री के कपडे पहना कर राजा के साथ व्याह करा दो।" राजा की हँसी करने का प्रसंग समझ कर रानी अमात्य से सहमत हो जाती है परन्तु वह उसे भी चकमा देता है और लड़के को तो अन्तःपुर में स्त्री का वेष बनाने के लिए भेज देता है तथा सुन्दरी को बुला कर उसका विवाह राजा से करवा देता है। बाद में जब यह खबर रानी को मिली तो वह बहुत नाराज हुई परन्तु मंत्री ने उसको सब स्थिति समझा कर उसका सन्तोष करा दिया।

विवाह-विधि पूर्ण होते होते रुच्चिक के पास से आकर वीरसिंह गर्जन नगर पर विजय प्राप्त कर लेने के समाचार सुनाता है। इस प्रकार नाटिका की समाप्ति होती है। यह नाटिका महामात्य सम्पत्कर (जो सान्तू के नाम से प्रसिद्ध था) की सूचना के अनुसार अणहिलपुर में आदिनाथ के यात्रा महोत्सव के अवसर पर खेली जाने के लिए रची गई थी।

मूर्तियों से आलिङ्गन करने का भयङ्कर प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार हुआ। (१) तब मन्त्री ने जो युक्ति की थी वह सब राजा से कह सुनाई। इस प्रकार मीनलदेवी प्रतापी सिद्धराज जयसिंहदेव की माता हुई। सिद्धराज का जन्म पालनपुर में हुआ था।

सिद्धराज के पिता कर्णराज ने जब विष्णु भगवान् का ध्यान करते हुए इन्द्रपुर (स्वर्ग) को प्रस्थान किया (२) उस समय वह (सिद्धराज)

---

(१) सिद्धराज-प्रबन्ध में मेरुतुंग ने लिखा है—'अथ प्रातस्तद्दुर्विलसितात् प्राणपरित्यागोद्यतो नृपतिः स्मार्त्तांस्तत्प्रायश्चित्तं पप्रच्छ। तैस्तप्तताम्रमयपुत्तलिकालिङ्गनमिति, दूसरा पाठ इस प्रकार है 'उद्यताय नृपतये स्मार्त्तैस्तप्तताम्रमयपुत्तलिकालिंगनमिति प्रायश्चित्तं'। इसमें-सात मूर्तियों का उल्लेख कहीं भी नहीं है, शायद 'स्तप्त' इस शब्द को 'सप्त' समझ कर ऐसा लिख दिया गया है।

(२) कर्ण ने चैत्र सुदि ७ संवत् ११२० से पौष बुदी २ संवत् ११५० तक २९ वर्ष ८ महीने और २१ दिन राज्य किया। पौष बुदी ३ शनिवार सं० ११५० के दिन श्रवण नक्षत्र वृषलग्न में सिद्धराज का पट्टाभिषेक हुआ था। इसका कारण प्रबन्ध में इस प्रकार लिखा है कि सिद्धराज खेलता हुआ कर्ण की गद्दी पर जा बैठा, वही शुभ समय समझ कर कर्ण ने उसका राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं नई नगरी कर्णावती बसा कर वहां चला गया।

कर्ण के समय में ही कच्छ के अधिकार में कीर्तिगढ का राज्य था। वहां का राजा केसर मकवाणा उन्हीं दिनों में सिंध के राजा हमीर सुमरा (द्वितीय) के साथ लडाई में मारा गया था इसलिए उसके कुंअर हरपाल, विजयपाल और सोंताजी गुजरात में चले आए थे। हरपाल राजा कर्ण का मौसेरा भाई था। कर्ण की रानी फूलों देवी को बावरा भूत बहुत सताता था। हरपाल ने लड़ कर उसको हरा दिया और अपनी आज्ञा में रहने के लिए विवश कर दिया। इस कार्य के बदले में कर्णराज की ओर से हरपाल को बहुत से गांव मिले। उसके वंशज झाला कहलाते हैं और अब तक ध्रांगध्रा, वांकानेर, लींबड़ी, वढवाण, चूड़ा, सायला, लखतर, आदि स्थानों में राज्य करते हैं। हरपाल के भाई विजयपाल के वंशज आजकल महीकांठा, ईलोल आदि गांवों में पाए जाते हैं और सांताजी के वंशज कटोसण आदि के मकवाणा ताल्लुकदार हैं।

बच्चा ही था। उसकी बाल्यावस्था में राजसत्ता को हाथ में लेने के लिए कितने ही प्रतिस्पर्द्धियों में आपस में झगड़ा हुआ जान पड़ता है। कर्ण के भाई खेमराज के पुत्र देवप्रसाद ने जब राजा की मृत्यु के समाचार सुने तो उसने सरस्वती नदी के किनारे एक चिता बनाई और उसमें अपने आप को जला दिया। उसके त्रिभुवनपाल नामक एक पुत्र था जो सदैव बालक राजकुमार के साथ रहता था और बाद में भी जब सिद्ध-राज समुद्र पर्यन्त पृथ्वी को जीतता हुआ आगे बढ़ा तो वह सदैव ही युद्ध में राजा के आगे रहा। पहले तो कुछ दिनों के लिए राज्य की बागडोर कर्ण की माता उदयामति के भाई मदनपाल के हाथ में रही, परन्तु इस राजवशी का बरताव बहुत ही त्रासदायक था। मुख्यत· इसने दरबार के प्रसिद्ध और सर्वप्रिय लीला नामक वैद्यको दुःख देकर उससे बहुत सा रुपया ले लिया। (१) इसलिए इसके विरुद्ध एक दल बन गया और सान्तू मन्त्री युक्ति से बालराजा को तो कब्जे में करके घर ले गया और मदनपाल को उसी के सिपाहियों के हाथ मरवा डाला। (२)

अब, पूरी राजसत्ता बाल-राजा की माता मीनलदेवी के हाथ मे आई, सान्तू, मुञ्जाल और एक ऊदो [२] (उदयन) नामक मन्त्री उसको राज

(१) कहते हैं कि उससे बाईस हजार रुपया दण्ड में लिया गया था।

(२) सिद्धराज-प्रबन्ध में लिखा हैं कि मदनपाल को कर्णपुत्र (सिद्धराज) ने मरवाया था। दूसरी प्रतियों में ऐसा पाठ है कि सान्तू मन्त्री ने मदनपाल को अपने घर बुलवा कर सेवकों से मरवा डाला।

(३) ऊदा अथवा उदयन मारवाड़ का रहने वाला श्रीमाली बनिया था। एक बार वह रात के समय घी बेचने के लिए कहीं जा रहा था। रास्ते में उसने कुछ आदमियो को एक क्यारी से दूसरी क्यारी में पानी देते हुए देखा। पूछने पर उन लोगो ने कहा "हम लोग अमुक मनुष्य के मजदूर हैं।" ऊदा ने पूछा, मेरे मजदूर कहाँ

काज में सहायता देते थे। ये तीनों ही जाति के बनिये थे और जैनधर्म को मानते थे। वीरमगाँव के पास मीनलसर अथवा मानसर और धोलका के पास मलाव अथवा मीनल तलाव नामक सरोवर मीनलदेवी ने अपने नाम से अपने राज्यकाल में ही बँधवाये थे।

हैं?' उन्होंने अनायास उत्तर दिया 'कर्णावती में।' ऊदा ने शकुन शोध कर समझ लिया कि इस समय कर्णावती में जाने से सेवक आदि की समृद्धि प्राप्त होगी। इसके बाद वह कुटुम्ब सहित कर्णावती चला गया। वहा जाकर वह वायड़ा जाति के लोगों के बनवाये हुए अजितनाथ के मन्दिर में दर्शन करके बैठा। उसी समय श्रावक धर्म का पालन करने वाली लाछी नाम की छींपण उधर से निकली। उसने ऊदा को अपना सहधर्मी मनुष्य समझ कर नमस्कार किया और पूछा 'आप किसके अतिथि हो?' उसने उत्तर दिया 'मैं तो परदेशी आदमी हूँ, जो बुलाएगा उसी का अथिति हो जाऊँगा।' लाछी उसे अपने घर ले गई और एक खाली मकान में उतार दिया। किसी बनिए के यहा तैयार करा कर उसे भोजन भी करा दिया। कुछ दिन बाद जब ऊदा के पास कुछ पैसे जमा हो गए तो वह कच्चा घर तुडवा कर ईंटों का पक्का घर बनवाने लगा। उस समय उस मकान में ऊदा को एक द्रव्य-भण्डार मिला। ईमानदारी से वह बनिया लाछी को धन देने लगा परन्तु उसने कहा, "यह धन तो तुम्हारे ही भाग्य का है :—

'कृतप्रयत्नानपि नैव कांश्चन स्वय शयानानपि सेवते परान्।
द्वयेऽपि नास्ति द्वितयेऽपि विद्यते श्रियः प्रचारो न विचारगोचरः॥'

इसी वणिक् ने आगे चल कर ७२ जिनालयवाला श्रीजिनप्रासाद बनवाया। सिद्धराज ने इसको अपना मंत्री बना कर स्तम्भतीर्थ में भेजा था। जब कुमारपाल भटकता हुआ खम्भात पहुँचा तो उदयन ने उसे अपने यहाँ महमान बना कर रखा था। इसके बदले में जब कुमारपाल राजा हुआ तब उसने उदयन को अपना प्रधान अमात्य बनाया।

(४) खेड़ा जिले में उमरेठ नाम का कसबा है, वहां पर मलाव नामका तालाव है।

मीनलसर के पूर्व की ओर एक गणिका का घर था जो इस तालाब की योजना में अटकता था और जिसके रहने से तालाब की बनावट बेढगी सी हो जाती थी, इसलिए रानी ने बहुत सा धन देकर उस घर को खरीद लेना चाहा। परन्तु, गणिका ने धन लेने से इनकार कर दिया और कहा 'तालाव बँधवाने से रानी की जितनी प्रसिद्धि होगी उतनी ही घर बेचने से इनकार करने पर मेरी हो जावेगी।' मीनलदेवी न्यायप्रिय थी इसलिये उसने बल प्रयोग नहीं किया और घर को अपनी जगह रहने दिया। ऐसा करने से यद्यपि तालाब के आकार में कुछ बेढगापन आ गया परन्तु इससे उस के राज्य की कीर्ति हुई(१) और एक कहावत चल पड़ी कि, यदि न्याय ही देखना है तो मीनलदेवी के पास जाओ। उसका अनुकरण करते हुए उसके मन्त्रियों ने भी बहुमूल्य स्थान बँधवाये जिनके विषय में ग्रन्थकार (मेरुतु ग) लिखता है कि उनमे से एक तो कर्णावती का जैन उपासरा अथवा उदयन–विहार है। श्री मुञ्जालेश्वर तथा सान्तू का स्थान भी शायद उसी नगर में है।

शुक्लतीर्थ से थोड़ी दूर ऊपर की ओर चल कर नर्मदा नदी का एक आरा(२) है जो वाहुलोद कहलाता था (आजकल भालोद कहलाता है)। इस स्थान से आगे सोमेश्वर के मन्दिर की यात्रा को जाने वाले यात्रियों से एक कर वसूल किया जाता था। अपना देश छोड़ने से पहले शिवजी के एक पुजारी ने आग्रह करके मीनलदेवी से इस कर को बंद

---

(१) नौशेरवां ने भी अपना महल बनवाते समय एक बुढिया की झोंपडी को नहीं तुडवाया था, इससे उसकी कीर्ति हुई थी। देखो-गुजराती अनुवाद-कर्ता कृत पादशाही राजनीति पृ. १५३-१५४।

(२) नदी का वह स्थान जहा से मनुष्य व जानवर आसानी से पार उतर सकें।

कर देनेकी शपथ ले ली थी। उसके धर्मगुरु ने उससे कहा कि पूर्व-जन्म में वह ब्राह्मणी थी और देवपट्टण की यात्रा पूरी करने के लिये बाहुलोद तक तो जा पहुँची थी परन्तु माँगा हुआ कर न दे सकने के कारण उसे आगे जाने से रोक दिया गया था। इस परिताप से दुखी होकर उसने अनशन किया और शरीर त्याग दिया। अब, उसका वचन पूरा करने का अवसर आ गया था इसलिए वह सिद्धराज को साथ लेकर बाहुलोद गई। वहाँ यात्रियों को जो अड़चनें पड़ती थीं उन्हें अपनी आँखों देखने का प्रसंग आया। जिन पचों को कर उगाहने का काम सौंपा गया था उनको बुलाया गया और हिसाब दिखाने के लिए कहा गया। यद्यपि इस कर से बहुत बड़ी आय (१) होती थी परन्तु सिद्धराज ने अपनी माता के हाथ में पानी का चुलुक रख कर कहा, 'यह तुम्हारी ओर से मैं एक धर्म कार्य करता हूँ और आज से इस कर को बद करता हूँ।' अब मीनलदेवी ने यथाविधि सोमेश्वर का पूजन किया और एक हाथी, हाथ में तुला लिए हुए एक तुलापुरुष (२) की स्वर्ण मूर्ति, तथा अन्य बहुमूल्य भेटें चढ़ाई। (३)

---

(१) कहते हैं, इसकी आय ७२ लाख वार्षिक थी।

(२) अथवा प्रचलित चाल (रिवाज) के अनुसार उसने अपने बराबर तोलकर सोना चढाया होगा।

(३) द्व्याश्रय के बारहवें सर्ग मे लिखा है कि, एक दिन सिद्धपुर से आकर ब्राह्मणों ने पुकार की कि, सरस्वती के तीर पर तुम्हारी बँधाई हुई सत्रशाला को राक्षसों ने नष्ट कर दिया है। यह सुनकर राजा अपने प्रमाद पर पश्चात्ताप करता हुआ सेना लेकर रवाना हुआ। राक्षसों का स्वामी बर्बर अथवा बर्बरक भी सेना साथ लेकर मुँह से आग की लपटें निकालता हुआ, वृक्षों और पत्थरों की वर्षा करता हुआ सामने आगया। उसकी भीषणता को देखकर जयसिंह की सेना पीछे हटने लगी,

जिस समय गुजरात का बालक राजा इन कामों में लगा हुआ था उसी समय मालवा के राजा यशोवर्म्मा ने उसके राज्य के उत्तरी भाग पर चढ़ाई कर दी। सिद्धराज की अनुपस्थिति में सान्तू मन्त्री अणहिलवाड़ा में राजकाज चलाता था। उस समय उसके पास आक्रमणकारियों का सामना करने के लिए न तो पर्याप्त साधन ही था, न उसमे इतनी शक्ति ही थी कि जो कुछ साधन उसके पास था उसका ही उपयोग शत्रु के विरुद्ध कर सके। इसलिए उसने मालवा के राजा को एक बड़ी धन-

---

परन्तु प्रतिहार ने सैनिकों का बहुत तिरस्कार किया और जब स्वयं जयसिंह युद्ध करने के लिए उतरा तो सेना वापस आ गई। बर्बर और सिद्धराज जयसिंह आमने सामने हुए। जयसिंह ने तलवार का वार किया परन्तु तलवार मुड गई। फिर, द्वन्द्वयुद्ध शुरू हुआ। सिद्धराज ने बर्बर को बाँधकर कैद कर लिया, तब उसकी स्त्रियों ने प्रार्थना की 'अब यह दुराचार छोडकर ठीक रास्ते पर चलेगा और जीवनपर्यन्त तुम्हारा दास रहेगा।' इस पर जयसिंह ने उसे छोड दिया और उसी स्थान का रक्षक नियुक्त कर दिया।

तेरहवें सर्ग में लिखा है "सिद्धराज जयसिंह अपनी प्रजा का हाल जानने के लिए रात्रि के समय घूमा करता था। एक दिन घूमता हुआ वह सरस्वती नदी के किनारे जा पहुँचा। वहां पर उसने किसी को इस तरह बोलते हुए सुना "मैं तुम्हे छोडकर नहीं जीऊंगी, यदि तुम कुए में पडोगे तो तुम्हारे साथ ही मैं भी पडूंगी।" ये शब्द सुनकर सिद्धराज उधर गया और वहां पर खड़े हुए नागपुत्र को कष्ट से छुडाने का वचन देकर उसका हाल पूछा। उसने कहा 'मैं वासुकी के प्रीतिपात्र रत्नचूड का पुत्र हूँ और मेरा नाम कनकचूड है। मेरे सहाध्यायी दमन और मुझ मे विवाद होकर यह होड हुई कि, यदि वह इसी हेमन्त में मुझे लवली दिखा दे तो मैं मेरी स्त्री को हार जाऊंगा। उसने ऐसा ही किया और मैं हार गया। इसी बीच में हम दोनों को बुलाकर नागपति ने कहा कि, तुम दोनों में से दमन को हुल्लड के पास जाना पडेगा। हुल्लड, वरुणदेव से वरदान प्राप्त किया हुआ एक नाग है जो कश्मीर में रहता है। वह एक बार पाताल लोक को पानी में डुबोने के लिए तैयार

राशि देकर लौटा दिया। जब नवयुवक राजा अपनी राजधानी में लौटा और यह हाल सुना तो बहुत क्रोधित हुआ और उसी दिन उसने मालवे का नाश करने का निश्चय कर लिया।

जिस समय सिद्धराज ने मालवा पर चढाई करने की तैयारी की थी उसी समय उसने अणहिलवाड़ा में सहस्त्रलिंग तालाब बनवाने का काम भी आरम्भ कर दिया। बहुत सी प्रचलित दन्तकथाओं और वार्ताओं के कारण यह तालाब बहुत प्रसिद्ध है। इस तालाब की खोज करने के लिये पट्टण के पास जो जमीन खोदी गई थी वह अब तक बताई जाती है, परन्तु इसका कोई ईंट या पत्थर अब वहाँ नहीं मिलता। इस तालाब का आकार गोल अथवा बहुत से कोनों वाला होगा जैसे कि अब भी थोड़े बहुत इसी आकार प्रकार के सरोवर गुजरात में पाये जाते हैं। वीरमगाँम के मीनलसर के चारों ओर आज तक बहुत से शिव-

---

हुआ तब नागों ने उससे यह शर्त की थी कि, तुम्हारी पूजा करने के लिए प्रतिवर्ष एक नाग कश्मीर भेजा जायगा और यदि ऐसा न हो तो जैसा तुम्हारे मन में आवे वैसा ही करना। हुल्लड ने इस बात को मंजूर कर लिया। परन्तु, अब कश्मीर जाना बहुत मुश्किल है क्योंकि कश्मीर बर्फीला देश है और जो कोई वहाँ पर जाता है वहीं मर जाता है। परन्तु, इस कुए में जो उप (ओख) है उसको शरीर पर लगाने से बच जाता है और जो लगाता है वह सही सलामत वापस आ जाता है। दमन ने मुझे कहा है कि, यदि मैं कुए में से उप लादूं तो वह मुझे होड से मुक्त कर देगा। अतः मैं उप लेने के लिए आया हूँ परन्तु वज्रमुखी मक्खियों से भरे हुए इस अंधेरे कुए में से वापस जीवित लौटने की आशा नहीं है। यह मेरी प्राणप्रिया मुझे इसमें उतरने नहीं देती और मेरे काम में विघ्न करती है।" यह कथा सुनकर सिद्धराज ने उस छोटे से कुमार को धीरज बँधाया और उप लाकर दे दी। इसके बाद उसने उस कुमार को अपने एकनिष्ट भक्त बर्बर के साथ पाताल लोक को भेज दिया।

मन्दिर मौजूद हैं। इसी प्रकार इसके चारों ओर भी अनेक मन्दिर रहे होंगे और इसीलिए इसका नाम सहस्त्रलिङ्ग (१) सरोवर पड़ा होगा। इस सरोवर के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहानी अब तक बहुत प्रसिद्ध है और गाई तथा कही जाती है:—

जस्मा ओडण[२] की बात

एक समय, मालवा से एक नगरनिवासी आया और उसने सिद्धराज के सामने जस्मां ओडण के रूप का बखान किया। राजा ने उसे प्राप्त करने के बहुत से प्रयत्न किए परन्तु वे सब निष्फल हुए। अन्त में

---

(१) यह तालाब अकबर के जमाने तक मौजूद था क्योंकि उसका वजीर बैरमखां जब मक्के जा रहा था तो वह गुजरात में आया और पट्टण अणहिलवाड़ा में ठहरा था। उस समय यहां मूसी लोदी का आधिपत्य था। उस समय बैरमखां सहसनक नामक सरोवर को देखने गया था और उसने इसके किनारे पर एक हजार मन्दिर देखे थे। (ब्रिग की फरिस्ता नामक पुस्तक भाग २ पृ० २०३) इन्हीं महाशय (बैरम खां) ने पट्टण में खान सरोवर बनवाया बतलाते हैं। (शायद ब्रिग साहब सहसलिंग को सहसनक पढ गये क्योंकि फारसी में इन दोनों शब्दों के लिखने में थोडा ही अन्तर है।)

(२) ओड़ नीच जाति के लोग होते हैं जो तालावों आदि में मिट्टी खोदने का काम करते हैं। गुजराती अनुवाद में "जस्मा ओडण को रासडो" गुजराती भाषा में दिया हुआ है।

जसमां ओडण को रासड़ो

आज (संवत् १९२५ वि०) से लगभग ५० वर्ष पूर्व पण्डित जेष्ठाराम लडकियों के मुख से इस रासड़े को गवा कर सुनते थे। उनकी बहिन उस समय लगभग ६० वर्ष की अवस्था में थीं। उनको जितना अंश याद था उसे उद्धृत करते हुए पण्डित जेष्ठाराम लिखते हैं:—

जब राजा ने पट्टण में सहस्त्रलिंग सरोवर खुदवाने का कार्य आरम्भ किया तो उसने अपने बहनोई दूधमल्ल चावड़ा को मालवा से कुछ ओड़ और ओडणें लाने के लिए भेजा। वह उन लोगों की तलाश में निकला और उनके गांवों में पहुँच कर उसने कहा, "सिद्धराज सोलंकी ने एक विशाल सरोवर बनवाना आरम्भ किया है–

"मेरी समझ में ऐसा आता है कि निम्नलिखित रासडे में अर्थ की आनुपूर्वी पर लक्ष्य रखते हुए किसी स्थान पर पूरी तुकों की कमी पडती है। इस रासड़ो के रचयिता का उद्देश्य, ऐतिहासिक वृत्तान्त को प्रसिद्ध करने के साथ साथ गायिकाओं को सतीत्व का बोध कराने एवं सदुपदेश देने का है कि पातिव्रत के आगे राज्यवैभव आदि सभी तुच्छ हैं।

"सर्वेनारी भणें राज" इसका अर्थ यह भासित होता है कि सभी लोग कहते हैं कि रूप, रंग, व्रत और धर्म को देखते हुए सच्ची नारी तो जसमां है, ऐसा ही सब कहते हैं और समझते हैं।

रासड़ो

राज बैठो भरीरे समाश्रे, जाचक आव्या जाचवा; सर्वे नारी भणे राज ॥ १ ॥
राजा रे जशमांतु रूप, ए रे नारी तम घर शोमती; सर्वे नारी० ॥ २ ॥
१ २ ३ ४
राजा ए मेल्या वारीगर बे चार, के जाओ रे जसमां ने तेडवा; सर्वे नारी ॥ ३ ॥
५ ६ ७ ८
गायो चरतल माई रे गोवाल, के क्यां रे वासो ओड़ो तणो; सर्वे नारी० ॥ ४ ॥
९ १० ११ १२
खिरखिरी-आरडी वाड, के घूघरियालो झांपलो; सर्वे नारी ॥ ५ ॥
१३ १४ १५
कागल दीधो जशमाने हाथ, के जशमा ए वांचने माथो धूणियो; सर्वे नारी० ॥ ६ ॥
जशमाए दीधो ससराने हाथ, समरे वांचने माथो धूणियो; सर्वे नारी० ॥ ७ ॥

इसमें वह ओडों और ओडणों की सहायता चाहता है।" इस पर जस्मां ने अपनी जाति के लोगों को इकट्ठा किया और वह अपने पति के साथ पट्टण आई। सिद्धराज ने आज्ञा दी कि दूसरे ओड़ों तथा ओडणों को तो नगर के बाहर रखा जावे और जस्मां को महल में लाया जावे, परन्तु, जस्मां ने यह कह कर इन्कार कर दिया कि महलों में तो रानियां सोती हैं ओडण के लिए तो जमीन पर सोना ही अधिक उपयुक्त है।

वहू ! तारू रूप सरूप, एणे रे रूपे लांछन[१६] लागशे; सर्व नारी० ॥ ८ ॥

ससरा ! तूं[१७] हईड़े म हार, नहिं रे टलूं[१८] जशमा ओडणी; सर्व नारी० ॥ ९ ॥

जशमा ने वारे[१९] छे बा‌ा, म जाजे घीयडी[२०] रे गढ मांडवे; सर्व नारी० ॥ १० ॥

घेला[२१] बाप घेलडू[२२] शुं बोल, एक वार जाऊ गढ मांडवे; सर्व नारी० ॥ ११ ॥

हारी[२३] के दलाव्या[२४] जशमाए छऊं, कलशी[२५] दलाव्यो जशमा ए बाजरो; सर्व नारी ॥ १२ ॥

विजया दशमी केरी रात ओडो ए उचाला[२६] खड़ किया; सर्व नारी० ॥ १३ ॥

सरद पूनम केरी रात ओड़ो ए उचाला पलाणिया; सर्व नारी० ॥ १४ ॥

ओड़ो ने उतारा देवराओ, के जशमा ने उतारा मेडीए[२७]; सर्व नारी० ॥ १५ ॥

मेड़ीए तारी राणीने वेसाड[२८], अमेरे[२९] ओडो ने भलां झूंपड़ा, सर्व नारी० ॥ १६ ॥

ओड़ो ने दांतणिया देवराओ, जशमा ने दांतण दाडमी[३०]; सर्व नारी० ॥ १७ ॥

दांतण तारी राणी ने देवराव, अमेरे ओडो ने भली भीसडी[३१]; सर्व नारी० ॥ १८ ॥

ओड़णो ने भोजणिया देवराओ, जसमा ने भोजन लाडवां, सर्व नारीं० ॥ १९ ॥

जब तालाब खुदना शुरू हुआ तो राजा स्वयं देख रेख करने के लिए आकर बैठता। वह जस्मां पर बहुत आसक्त हो गया था। उसने कहा "जस्मां, मिट्टी के इतने भारी बोझे को मत उठाओ, इससे तुम्हारे शरीर को दुःख पहुँचेगा।' उसने उत्तर दिया कि इसकी उसे परवाह न थी। फिर राजा ने कहा "जस्मां, तुम अपने बच्चे की देखभाल करो, दूसरे ओडों को मिट्टी उठाने दो।' जस्मां ने उत्तर दिया, "मैंनें इमली के पेड़ की शाखा पर झूला डाल कर उसको सुला दिया है और आते जाते उसके पलने को हिला देती हूँ।"

३२

खाडवा थारी राणी ने जमाड, अमेरे ओडो ने भली रावडी; सर्वे नारी० ॥ २० ॥

३३

ओडणो ने मुखवासिया देवराव, जशमा ने मुखवास एलचो; सर्वे नारी० ॥ २१ ॥

३४

एलची थारी राणी ने खवराव, अमेरे ओडो ने भली मोथडी; सर्वे नारी० ॥ २२ ॥
ओडणो ने पोढणिया देवराय, जशमा ने पोढण ढोलियो; सर्वे नारी० ॥ २३ ॥
ढोलिये तारी राणी ने सुवराव, अमेरे ओडो ने भली गोदड़ी; सर्वे नारी० ॥ २४ ॥
जशमा ओडण हालो म्हारे द्वार, मो तो बताऊ म्हारी राणीओ; सर्वे नारी० ॥ २५ ॥

३५

जोउं तारी राणीओं नू रूप, तेवी रे म्हारे घरे भोजाइयो; सर्वे नारी० ॥ २६ ॥
जशमा ओडण अमारे घर हाल, कहो तो बताऊं म्हारा कुंवरो; सर्वे नारी० ॥ २७ ॥

३६

जोउं तारा कुंवरोनूं रूप, तेवा रे म्हारे घेर मात्रीज; सर्वे नारी० ॥ २८ ॥
जशमा ओडण हालो म्हारे द्वार, कहोतो बताऊं म्हारा हाथीओ; सर्वे नारी० ॥ २९ ॥

३७

जोउं तारा हाथीओनूं रूप; तेवी रे म्हारे घेर भेंसडी; सर्वे नारी० ॥ ३० ॥

जब तालाब की खुदाई का काम पूरा हुआ तो राजा ने और सब ओडों की मजदूरी तो चुका दी परन्तु जस्मां से कहा, 'तू अभी यहीं रह, तेरी मजदूरी धीरे धीरे चुका दूंगा।' ऐसा कह कर उसने दूसरे ओडों को जाने की आज्ञा दे दी, परन्तु उनके साथ ही जस्मां भी चुपचाप

केवडूं[३८] खणविशो[३९] तलाव ? केवडी खणावशो तलावडी; सर्वे नारी० ॥ ३१ ॥
लाखे खणावशूं तलाव, अरध लाखे तलावड़ी; सर्वे नारी० ॥ ३२ ॥
जशमा तारो परणियो[४०] देखाड, कीयो रे जशमा तारो घर धणी[४१], सर्वे नारी० ॥ ३३ ॥
सोनइयो[४२] हींस[४३] छे हाथ, रूपला[४४] वेह[४५] ओडो तणा, सर्वे नारी० ॥ ३४ ॥
जशमा माटी थोडी री उपाड[४६], तारी रे केड़[४७] लिचक[४८] लागशे, सर्वे नारी० ॥ ३५ ॥
घेला राजा घेलडूं शुं बोल, एह रे अमारो कशब[४९] थयो[५०]; सर्वे नारी० ॥ ३६ ॥

उपर्युक्त गुजराती गीत के कतिपय शब्दों के हिन्दी रूपान्तर नीचे दिये जाते हैं जिससे गीत की कथा वस्तु समझने में सुगमता रहेगी।

१ मेल्या=भेजे। २ वारीगर=दूत। ३ बे=दो। ४ तेड़वा=बुलाने के लिये। ५ गायोचारतल=गाए चराता हुआ। ६ क्यांरे=कहा रे। ७ वासो=निवास। ८ ओडो तणों=ओडों का। ९ खिरखिरीआरड़ी=कांटों वाली एक प्रकार की झाड़ी। १० वाड=घेरा। ११ घूघरिआलो=झाड़ का। १२ झांपलो=आड। १३ कागल=कागज, पत्र॥ १४ वांचने=पढ कर। १५ माथो धूणियो=सर धुना। १६ लांछन=कलक। १७ हईड़े=हृदय। १८ टलूं=डिगूं। १९ वारै छे=मना करते हैं। २० धीयडी=पुत्री। २१ घेला=मूर्ख। २२ घेलडूं=पागल जैसी बात। २३ हारी=आहार। २४ दलाव्या=पिसवाया। २५ कलशी=मटकी। मटकी का उपयोग अनाज के परिमाण के लिये अब भी होता है। २६ उचाला=प्रयाण। २७ मेड़ीए=ऊपर के कक्ष

रवाना हो गई। जब राजा को यह बात मालूम हुई तो घोड़े पर सवार होकर उसने उनका पीछा किया और मोढेरा तक पहुँच कर उसने कुछ ओडों को मार भी डाला। इस पर जस्मां ने अपने पेट में कटारी मारली और मरते मरते सिद्धराज को यह शाप दिया 'तेरे तालाब में कभी पानी नहीं ठहरेगा।'

जब राजा लौट कर पट्टण आया तो तालाब को सूखा पाया। उसने अपने मन्त्रियों को बुला कर सलाह की कि तालाब में पानी ठहराने का

में। २८ वेसाड़=बैठा। २६ अमे=हम। ३० दाडमी=दाड़िम का। ३१ भीसडी=साधारण टहनी। ३२ जमाड=जिमाओ। ३३ एलची=इलायची। ३४=मोथड़ी=मोथा। एक प्रकार के घास की सुगन्धित जड। ३५ तेवी=तैसी। ३६ भत्रीज=भतीजे, भाई के पुत्र। ३७ भैंसडी=काठियावाड़ की नागोरी भैंस छोटे हाथी जैसी दीखती है। ३८ केवडू=कितने। ३६ खणावशो=खुदवाओगे। ४० परणियो=परिणीत, पति। ४१ घरधणी=गृहस्वामी। ४२ सोनइयो=सोने का। ४३ होंश=हसिया। ४४ रूपला=चांदी का। ४५ वेह=वही, मेरे पति के हाथ में सोने का हँसिया है दूसरे ओड़ों के हाथ में चांदी का। ४६ उपाड=उठा। ४७ केड़े=कटि, कमर। ४८ लिछक=लचक। ४६ कमव=धन्धा। ५० थयो=हुआ।

प्रस्तुत गीत में द्रष्टव्य है कि जैसे जैसे राजा ने अपना वैभव और सम्पत्ति बता कर जस्मा को अपनी ओर आकर्षित करना चाहा वैसे ही जस्मा ने राजा के प्रति भ्रातृभाव प्रकट किया। जशमा ने राजा द्वारा प्रस्तावित सुख-साधनों को स्वीकार करते हुए अपने सीमित और सुलभ साधनों में ही सन्तोष व्यक्त किया।

इसी गीत के भावों से मिलता हुआ एक राजस्थानी लोकगीत 'उदली भीलड़ी' का है जिसमे भीलडी ने प्रलोभन से दूर रहते हुए अपने प्राप्त सुख साधनों को राजसी सुख-साधनों मे भी श्रेष्ठ बताया है। देखिये श्रीमती रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत द्वारा सम्पादित राजस्थान संस्कृति परिषद्, जयपुर से प्रकाशित "राजस्थानी लोकगीत।"

क्या उपाय किया जावे ? प्रधान ने ज्यौतिषियों से पूछ कर कहा 'यदि एक मनुष्य की बलि दे दी जावे तो शाप का प्रभाव दूर हो सकता है।' उस समय ढेढ़ (अन्त्यज) लोग नगर के बाहर रहते थे और उनको सिर पर कच्चा सूत पहनना पडता था तथा कमर में हरिण का सींग लटकाना पडता था जिसे देख कर लोग पहचान जाते कि वे ढेढ़ हैं और उनसे बच कर निकलना चाहिए। राजा की आज्ञा हुई कि मायो नामक ढेढ़ को तालाब के बीच में खड़ा करके उसका शिर काट दिया जावे जिससे तालाब में पानी ठहरने लगे। मायो ने विष्णु भगवान् का भजन करते हुए मृत्यु को अपनाया और इसके बाद सरोवर में पानी ठहरने लगा। मरते समय मायो ने राजा से यह बात मांगी कि उसके बलिदान के बदले मे यह बात स्वीकार की जावे कि भविष्य में ढेढ़ों को शहर के बाहर रहने के लिए तथा भद्दी पोशाक पहनने के लिए बाध्य न किया जावे। राजा ने बात मानली और उस दिन से मायो की स्मृति में ढेढ़ों को उक्त सुविधायें दे दी गई।

इसके बाद, शीघ्र ही जयसिंह (सिद्धराज) ने उज्जैन मालवा पर चढ़ाई करने के लिए गांव गांव से अपनी सेना इकट्ठी की। वह, कूच करता हुआ, रास्ते में आने वाले राजाओं को हराता हुआ और उनकी सेनाओं को अपने साथ लेता हुआ तथा बहुत से ऊंचे नीचे स्थानों को सपाट करा कर सेना का मार्ग सुगम बनाता हुआ, आगे बढा। कितने ही भील अपने चांचलतापूर्ण खेल दिखाते हुए राजा के साथ चले। वे ऐसे मालूम होते थे मानो राम के साथ साथ हनुमान की सेना चल रही हो। अन्त में गुजरात के राजा ने क्षिप्रा नदी पर पड़ाव डाला। तंबू तन गये, घोड़े कतारों में बांध दिए गए—और

सब चीजें यथास्थान लगादी गईं। इसके पश्चात् जयसिंह के तंबू में उत्सव होने लगा और नर्तकियां नाचने लगीं।

कहते हैं कि सिद्धराज मालवे में बारह वर्ष (१) तक लड़ता रहा

---

(१) ऐसा मालूम होता है कि सिद्धराज ने जूनागढ के राव खंगार को हराने के बाद में यह चढाई की थी क्योंकि सौराष्ट्र विजय के बाद ही उसने अपने नाम (जयसिंह) से सिंह संवत्सर चलाया था। इस संवत् का आरम्भ विक्रम संवत् ११६९–७० (सन् १११३–१४ ई०) में हुआ था और लडाई वहा के राजा यशोवर्मा के साथ हुई बतलाते हैं। परन्तु, यदि देखा जाय तो यह लड़ाई यशोवर्मा के पिता नरवर्मा (जो संवत् ११६० से ११८६ तक था) के समय में ही शुरू हो गई थी और उसके पुत्र (यशोवर्मा) के समय तक चालू रही थी। सिद्धराज यशोवर्मा को कैद करके अणहिलपुर ले आया था। मतलब यह है कि सिद्धराज ने अपनी पिछली अवस्था में मालवा विजय किया था।

"कुमारपाल प्रबन्ध" में लिखा है कि "बारहवें रुद्र" का प्रसिद्ध सिद्धचक्रवर्ती बिरुद धारण करनेवाले सिद्धराज ने दिग्विजय करते समय बारह वर्ष में धारा नगरी पर कब्जा किया। इस नगरी के तीनों कोटों को तोडकर मुख्य द्वार में प्रवेश करते समय किवाडों की लोहे की आगल तोडते हुए उसका यशःपटह नामक हाथी मारा गया। इसके बाद में मालवे का राजा नरवर्मा जीवित पकड़ा गया।"

नरवर्मा का समय ११०४ ई० से ११३३ ई० तक का था, इससे विदित होता है कि सिद्धराज ने पहले नरवर्मा पर चढाई की, फिर उसके पुत्र यशोवर्मा (११३३ ई० से ११४३ ई०) के साथ लडाई चलती रही। सिद्धराज की तलवार बारह वर्ष तक खुली हुई रही, उसको म्यान में धरने के लिए उसने मालवा के राजा के पैरों की थोड़ी सी खाल उतरवाली, तब उसके प्रधान ने कहा, "महाराज, नीतिशास्त्र में लिखा है कि, राजा अवध्य है इसलिए आप इसे छोड़ दीजिये।" इस पर सिद्धराज ने उसको जीवित ही काठ के पिंजरे में कैद रक्खा, चतुर्विंशतिप्रबन्ध के अन्तर्गत मदनवर्म–प्रबन्ध में ऐसा लिखा है। इससे यह भी पता चलता है कि सिद्धराज ने महाराष्ट्र, तिलिंग, कर्णाट, पांड्य, आदि राज्यों को वश में किए थे।

और इससे उसको बहुत कीर्ति हुई। परन्तु, राजधानी धारा नगरी को

बुन्देलखण्ड में आजकल जहां पर महोबा है वहां चन्देलकुल के राजा हो चुके हैं। इन राजाओं के समय के सम्वत् ११८६ से १२२० तक के लेख मिलते हैं—इस प्रसंग में कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है। —"एक बार सिद्धराज की सभा में आकर किसी भाट ने चित्रकूट के पास स्थित महोबा नगर के राजा मदनवर्मा का बखान किया। इस पर उसने (सिद्धराज ने) अपने एक मन्त्री को महोबापत्तन देखने के लिए भेजा। जब मन्त्री ने वापस लौट कर महोबा का बहुत बखान किया तो सेना लेकर सिद्धराज ने प्रस्थान कर दिया। जब मदनवर्मा को सिद्धराज के आ पहुँचने की खबर मिली तो उसने कहा, "क्या वही सिद्धराज आया है जो १२ वर्ष तक धारा नगरी के चारों तरफ घेरा डाले पड़ा रहा था? उस कबाड़ी राजा से कहो कि मेरे पास तुम्हारे गुजारे लायक भूमि दिखती हो तो युद्ध करो अन्यथा ९६ करोड मोहरें लेकर चले जाओ। सिद्धराज ने दण्ड ले लिया परन्तु मदनवर्मा जैसे मौजी राजा से मिलने की इच्छा भी प्रकट की। मदनवर्मा ने कहलवाया कि बहुत थोड़े आदमियों को साथ लेकर वह आ जावे। इसके अनुसार सिद्धराज उससे मिलने गया। मदनवर्मा आसन से उठ कर उसके सामने गया और उसे सुवर्ण के सिंहासन पर बिठाया। फिर कहा, 'हे सिद्धेन्द्र, आप मेरे पाहुने हुए, इसे मेरा बड़ा भाग्य समझिये।' सिद्धराज ने कहा, "तुम ऐसा विवेक तो लगाते हो, परन्तु मुझे कबाड़ी राजा कैसे कहा?" मदनवर्मा ने कहा, "इस कलिकाल में मनुष्य की आयु बहुत छोटी है, राज्यश्री भी कम रह गई है और बल भी तुच्छ हो गया है—यदि ऐसी दशा में भाग्योदय से राज मिल जावे तो उसका पूर्ण उपभोग करना चाहिए—इसके विरुद्ध देश विदेश में भटकते फिरना कबाड़ी का ही काम है, इसीलिए मैंने आपके लिए ऐसा कहा है।"

सिद्धराज ने कहा "तुम्हारा कहना सत्य है, मैं वास्तव में कबाड़ी हूँ, तुम धन्य हो जो इस प्रकार सुख का उपभोग करते हो।" इसके बाद सिद्धराज वापस लौटा और अपने साथ १२० अंगरक्षक ले आया—ये इतने सुकोमल थे कि इनमें से आधे तो रास्ते ही में मर गए और बाकी सिद्धराज के साथ अणहिलपुर पहुंचे।

लेने के लिए कितने ही आक्रमण निष्फल हुये इसलिए वह हताश

'हिन्दुस्तान के मध्यकालीन सिक्के' नामक पुस्तक में मेजर जनरल ए० कनिंघम ने महोबा तथा जेहाहुती के चन्देल राजाओं के विषय में टिप्पणी लिखी है जिसमें मदन वर्मा के सिक्के के समय की भी आकृति मिलती है—इस सिक्के में एक तरफ तो चार हाथों वाली पार्वती की मूर्ति अङ्कित है और दूसरी तरफ ऊपर की ओर "श्रीमान मदन वर्म देव', ये अक्षर अङ्कित हैं।

जेहाहुति अथवा जेजाकभुक्ति, ये चन्देलों का प्रदेश है और इसकी राजधानी महोबा या महोत्सव नाम से प्रसिद्ध है। इस देश के उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में कियान् अथवा केन नदी, पश्चिम में धसान नदी और पूर्व में विंध्याचल पर्वत है। केन अथवा कर्णावती नदी उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है इस लिए यह इस प्रदेश को पूर्वीय तथा पश्चिमीय दोनों भागों में लगभग बराबर ही विभक्त कर देती है। पश्चिमी विभाग में राजधानी का नगर महोबा और खजुराहो आ जाते हैं और पूर्वीय विभाग में कालिंजर तथा अजयगढ के बडे बडे किले आगए हैं। इस प्रदेश का क्षेत्रफल १२००० वर्ग मील से भी अधिक है। खजुराहो में अभी तक भव्य देवालयों के समूह मौजूद हैं जिससे इसकी उस समय की सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है और साथ ही इसकी कन्नोज विजय और महमूद गजनवी से सामना करने की सत्ता का भी पता चलता है। 'महोबाखण्ड' से विदित होता है कि यहा के राजा चन्द्रवंशी हैं और इनके विषय में ऐसी दन्तकथा प्रचलित है कि ये बनारस के राजगुरु हेमराज की पुत्री हेमावती से उत्पन्न हुए हैं। परन्तु, शिलालेखों आदि में उन्हें चन्द्रात्रेय (चन्द्रक आत्रेय) वंश के माने हैं और उनसे ऊपर की बात की कहीं भी पुष्टि नहीं हुई है। खजुराहो के लेख में प्रथम प्राचीन राजा का नाम नन्नुक लिखा है जिसकी छठी पीढी में धगदेव हुआ जिसने ९५३ ई० से ९९९ ई० तक राज्य किया। धगदेव के दिये हुए ताम्रपत्रों में उसके दादा हर्षदेव का नाम ही सबसे पहले लिखा है। बारहवाँ राजा कीर्तिवर्मदेव हुआ जिसके समय के सिक्के मिलते हैं (और इसके पहले के नहीं मिलते) चेदी का राजा कर्णदेव, जो कलचुरी वंश का था, इसका खंडिया (मातहत) था, परन्तु बाद में वह इसका महान्

सा हो गया और अपने साथ आये हुए मन्त्री मुंजाल से वापिस

शत्रु बन गया। इस राजा के सिक्के सोने ही के मिलते हैं परन्तु बाद के राजाओं के सोने और तांबे दोनों के मिलते हैं। एकमात्र चौदहवें राजा जयवर्म देव का एक सिक्का चांदी का मिला है। सोने के सिक्के ६० से ६३ ग्रेन तक के हैं। तांबे के सिक्के भी लगभग इसी वजन के हैं। इसके अतिरिक्त १५–१५ ग्रेन के तांबे और सोने के छोटे सिक्के भी मिले हैं। इन दोनों प्रकार के सिक्कों में केवल इतना ही अन्तर है कि तांबे के सिक्कों में पार्वती की जगह हनूमान् की मूर्ति अंकित है।

महोबे के चन्देल राजाओं की वंशावली इस प्रकार है.—

नं०	विक्रम संवत्	ईस्वीय सन्	नाम	लेख का संवत्
१	८५७	८००	नन्नुकदेव	
२	८८२	८२५	वाक्पति	
३		८५०	विजय	
४		८७५	राहिल	
५		९००	हर्षदेव	
६		९२५	यशोवर्मदेव	
७	१०१०	९५३	धंगदेव	१०११–१०५५
८	१०५६	९९९	गड़देव	१०५६
९	१०८२	१०२५	विद्याधरदेव	
१०	१०९७	१०४०	विजयपालदेव	
११	११०७	१०५०	देववर्मदेव	११०७
१२	११२०	१०६३	कीर्तिवर्मदेव	१०५४
१३	११५५	१०९७	हल्लकशन वर्मदेव	
१४	११६७	१११०	जयवर्मदेव	११७३
१५	११७७	११२०	हल्लकशनवर्मदेव (दूसरा)	
१६	११७९	११२२	पृथ्वीवर्मदेव	
१७	११८६	११२९	मदनवर्मदेव	११८६–१२२०
१८	१२२२	११६५	परमर्ददेव	१२२४

लौटने के विषय में सलाह करने लगा। इस मन्त्री को युद्ध में से भागे हुए एक विपक्षी से यह रहस्य ज्ञात हुआ कि यदि किले के दक्षिणी दरवाजे से आक्रमण किया जाये तो सफलता मिल सकती है। इस आक्रमण में सिद्धराज सब से आगे चला। उसके मनभावते हाथी ने [१] जिस पर वह सवार था, जी तोड मेहनत की और लोहे की मजबूत साँकलों से बंधे हुये होने पर भी त्रिपोलिया के दो फाटकों को तोड़ डाला। परन्तु, परिणाम में उस हाथी को अपने प्राण भी देने पड़े। इस प्रकार प्रवेश करके गुजरात का राजा उस किले का स्वामी हो गया। यशोवर्म ने पूर्ण वीरता से सामना किया परन्तु कैद कर लिया गया। सिद्धराज की पूर्ण विजय हुई और उसका झंडा भोज के नगर पर फहराने लगा। इसी प्रकार चार सौ वर्ष बाद उसके मुसलमान क्रमानुयायियों ने मान्डू (१) की बुर्जों पर अपना निशान फहराया था।

१९	१२६८	१२०३	त्रैलोक्यवर्मदेव	१२६६–१२६७
२०	१२६७	१२४०	वीरवर्म (पहला)	१३१२–१३३७
२१	१३३६	१२८२	भोजवर्म	१३४५
२२	१३५७	१३००	वीरवर्म (दूसरा)	१३७२
३०	१५७७	१५२०	किरतसिंह (कीर्ति)	

(१) इस हाथी का नाम यशःपटह था और इसके महावत का नाम शामल था। इस हाथी की यशोधवल अथवा यशलदेव गणपति के रूप मे बलसर ग्राम में स्थापना हुई थी।

(२) मालवा के राजाओं की निम्नलिखित वंशावली मि० एलफिन्स्टन ने एक लेख से भाषान्तर करके बङ्गाल ब्रान्च आफ् दी एशियाटिक सोसाइटी की पुस्तक ५ पृ. ३८० में छपवाई है उसी के आधार पर यह तैयार की गई है—

९ वें राजा भोजदेव का समय १०१० ई० से १०५५ ई० तक था (गुजरात में चालुक्य राजा भीमदेव इसी समय मे था।)

घर लौटते समय सिद्धराज ने उन छोटे छोटे किलेदारों पर हमले किये जो यात्रियों को मार्ग में लूट लेते थे। इस प्रकार उन लुटेरों को निकाल कर उसने देश को निर्भय कर दिया।

---

१० वां राजा जयसिंह १०५५ ई० से १०५६ ई० तक इसके समय मे गुजरात में कर लिया गया था।

११ वा ,, उदयादित्य १०५६ ई० ,, १०८१ ई० ,,

१२ वां ,, लक्ष्मदेव १०८१ ई० ,, ११०४ ई० ,,

१३ वा ,, नरवर्मा संवत् ११६० (सन् ११३४ ई०) में मरा।

(कोलब्रुक द्वारा उज्जैन के लेख का भाषान्तर)

(ट्रॉजेक्शन आव् दी रा. ए.सो. १ पृ २३२।)

१४ वा ,, यशोवर्मा ११३३ ई० से ११४२ ई० तक, इसके समय मे गुजरात के राजाओं ने इस देश का कुछ भाग जीत लिया था।

११४२ ई० ११५५ ई० तक का अंतर बल्लालदेव कार्याधिकारी

११४३ ई० से ११७६ ई० तक गुजरात के राजाओं का साम्राज्य, जिसमें लक्ष्मीवर्मा, हरिश्चन्द्र और उदयवर्मा।

१५ वां अजयवर्मा "इस राजा की कृपा से विद्वान् और निपुण राजा श्री हरिश्चन्द्र देव को राज्य मिला" इसने अपनी नीलागिरि राजधानी से ब्राह्मणों को दान दिया, सवत् १२३५ (ई० सं. ११७६) (देखो, जर्नल आव् दी बैंगाल एशियाटिक सोसाइटी पुस्तक पृ. ७३६)

१६ वा विन्ध्यवर्मा "इसने गुजरात देश को वश में करने का विचार किया" (११६० ई०–११८० ई०)

१७ वा अमुश्यायन

१८ वां सुभटवर्म अथवा सोहड "इस विजयी राजा ने अपनी सूर्य की अग्निमय किरण जैसी क्रोधमयी शक्ति अपने गर्जित कोप से गुजरात के पाटण नगर (अथवा नगरों) पर चलाई जो अब भी जब कभी गुजरात में आग लगती है तब अग्नि के रूप में दिखाई पड़ती है।"

मालवा पर विजय प्राप्त करके लौटने पर सिद्धराज की सवारी ने

१६ वा अर्जुन राज "यह राजा जब बालक ही था तब उसने खेलहीं में जयसिंह राजा को नष्ट कर दिया था।" फाल्गुन शुक्ला १० संवत् १२६७ (१२१० ई०) को माण्डू के किले में उसका राज्याभिषेक हुआ उस समय उसने अपने कुलगुरु को दक्षिणा में एक गांव दिया था। इसने १२१ वर्ष राज्य किया।

धारानगरी में मालवा के दोनों वंशों की सत्ता का अन्त सन् १११२ में हुआ। अर्जुनदेव निःसन्तान मरा इसलिए २० वा राजा दूसरी शाखा का देवपाल देव हुआ। उसने १२१६ से १२४० ई० तक राज्य किया। प्रथम शाखा से सम्बद्ध होने के कारण इस राजा ने पहले की तरह ही राजकाज चलाया। यह राजा लक्ष्मीवर्मदेव का पौत्र था। इसी के राज्यकाल में हिन्दुस्थान के बादशाह अल्तमश ने १२३५ ई० में उज्जैन और भीलसा पर कब्जा कर लिया था। इसने महाकालेश्वर के मन्दिर को तोड़ दिया था। चन्द्रावती के परमार राजा सोमसिंह देव को हराकर देवपाल देव ने कैद कर लिया था इसलिए उसने गुजरात के राजा से मिलकर उस पर आक्रमण किया।

२१ वा. जयतुंगदेव अथवा जयसिंह दूसरा-यह जयपालदेव का कुंअर था। इसके समय में मुसलमानों का जोर बहुत बढ़ गया था, वे हिन्दुओं को धर्मभ्रष्ट करते थे, इसका राज्य बहुत घट गया था।

२२ वा. जयवर्मन् (दूसरा) यह जयतुंगदेव का अनुज था, इसने १२५६ से १२६१ ई० तक राज्य किया। इसने अपने छोटे से राज्य में से भी भूमिदान दिया जिसके ताम्रपट्ट अब तक मिलते हैं। इसके समय में मुसलमानों का जोर और भी बढ़ गया था और मालवा की पीडा का पार नहीं था।

२३ वां. जयसिंहदेव तीसरा—इसने १२६१ से १२८० ई० तक राज्य किया। इसके समय में वीसल देव गुजरात के राजा ने धारा नगरी पर आक्रमण करके उसे पराजित किया था, इस विषय का एक शिलालेख मिलता है।

२४ वां. भोजदेव (दूसरा) (१२८०-१३१०) हमीर सोलकी ने इस पर हमला करके हराया। यह मुसलमानों से बहुत पीडित हुआ और अन्त में मुसलमान हो गया। गुजरात के राजा सारंगदेव ने भी इस पर चढाई करके इसको हराया था।

२५ वां. जयसिंह देव (चौथा) यह १३१० ई० में गद्दी पर बैठा और इसी के समय में धारानगर में इस वंश का राज्य समाप्त हो गया।

जयोत्सव मनाते हुए अणहिलवाड़ा नगर में प्रवेश किया। उस अवसर पर पराजित राजा यशोवर्म्मा को यशःपताका के रूप में राज-हस्ति पर बिठाया गया था। इस दृश्य को देखने के लिए पुरवासियों की भीड़ लग गई और वहीं द्व्याश्रय के भावी कर्त्ता, जैनधर्म के आचार्य हेमचन्द्र ने, जो दूसरे श्वेताम्बरों में मुख्य थे, निम्नलिखित प्रकार से गुर्जरराष्ट्र के अधिपति का कीर्तिगान किया इसलिए, राजा का ध्यान सबसे पहले उसी ओर गया।

भूमि कामगवि स्वगोमयरसैरासिञ्च, रत्नाकर !
मुक्तास्वस्तिकमाततुध्वमुडुप ! त्वं पूर्णकुम्भी भव।
धृत्वा कल्पतरोर्दलानि सरलैर्दिग्वारणास्तोरणा-
न्याधत्त स्वकरैर्विजित्य जगती नन्वेति सिद्धाधिप ॥

अर्थात्—सिद्धराज जगती को जीत कर आ रहा है, इसलिए हे कामधेनु ! तुम अपने गोमयरस से पृथ्वी का सिञ्चन करो, हे समुद्र ! तुम मोतियों का स्वस्तिक पूरो, हे चन्द्र ! तुम पूर्ण तेज से प्रकाश करो तथा हे दिग्पालो ! तुम अपनी सीधी सूंडों से कल्पतरु के पत्तों की मालाओं को धारण करके तोरण बनाओ। (१)

---

(१) द्व्याश्रय के चौदहवें सर्ग में लिखा है कि, एक बार नगरचर्या में सिद्धराज का योगिनियों से सामना हो गया। वह उनको परास्त करने की उत्कंठा रखता था। योगिनियों ने उससे कहा, 'तू हमारा पीछा करता है इसमें तेरा भला नहीं है, यदि अपना कल्याण चाहता है तो अवन्ति के राजा के पैरों में जा पड़ और हमें बलिदान से तृप्त कर।' जयसिंह देव ने कहा, 'तुम्हें करना हो सो करो, मैं तुम्हारे यशोवर्मा को पराजित करूंगा।' इसके बाद वह बड़ी भारी सेना लेकर रवाना हुआ। रास्ते में भील सेना भी आ मिली और अवन्ति अथवा उज्जैन के किले को

बडे उत्साह से जयोत्सव मनाये ही जा रहे थे कि उन्हीं दिनों राजा को एक सभा में प्रधान बनने के लिए प्रार्थना की गई। सभा में विवाद का विषय यह था कि हेमाचार्य ने व्याकरण का एक स्वतंत्र ग्रन्थ (१) लिखा था जिसके लिये उसके विरोधी कहते थे कि वह ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया था। उसके विरोधियों के इस प्रवाद को वंद करने के लिए ही राजा को उस सभा में प्रधान बनाया गया था। निर्णय आचार्य के पक्ष में दिया गया और राजाज्ञा से हेमाचार्य का ग्रन्थ एक राजकीय हाथी पर रखकर, उस पर श्वेतच्छत्र तनवाया जाकर तथा चँवर आदि अन्य राजचिन्हों सहित राजमहल में सजाने को लाया गया। फिर भी दुर्जन लोगों ने कहा 'इस ग्रन्थ मे राजा के पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन नहीं है।' यह सुनकर राजा को बहुत खेद हुआ परन्तु, दूसरे ही दिन प्रातः काल जब उस व्याकरण की आवृत्ति की गई तो हेमाचार्य इस कमी को पूरी करने के लिए तैयार रहा और

तोडने की तैयारियां होने लगीं। एक दिन रात के समय सिद्धराज घूमता हुआ सिप्रा (शिप्रा) के किनारे जा पहुँचा। वहां उसने योगिनियों को अपना पुतला बनवा कर, सिद्धराज हार जावे, ऐसा प्रयोग करते हुए देखा। जयसिंह ने योगिनियों से युद्ध किया, कालिका बहुत से रूप बना कर सामने आई परन्तु परास्त हुई। तब उसने प्रसन्न होकर कहा, "तू साक्षात् विष्णु है और यशोवर्म्मा पर विजय प्राप्त करेगा।" रात ही को यह समाचार यशोवर्मा को मिल गया और वह चुपचाप धारा नगरी को भाग गया परन्तु, जयसिंह ने अवन्ति का किला तोड़ दिया और फिर धारा नगरी को जीत कर यशोवर्मा को कैद कर लिया।

(१) जिस प्रकार पाणिनि ने अष्टाध्यायी लिखी है उसी प्रकार हेमाचार्य ने भी लिखी थी परन्तु उसमें राजा का वर्णन नहीं था इसलिए उसने अष्टाध्यायी के उदाहरण रूप से द्व्याश्रय काव्य लिखा जिस पर अभयतिलक गणि की टीका है।

उसके मुख से सोलंकी राजाओं की कीर्ति-विषयक सरस कविता का प्रवाह होने लगा। इसके बाद थोडे ही समय में उसने द्व्याश्रय ग्रंथ की रचना करके इस कमी की भी पूर्ति कर दी।

इसके पश्चात् सिद्धराज का ध्यान जहाँ मूलराज का अग्निसंस्कार हुआ था वहाँ पर बने हुए त्रिपुरुष-प्रासाद व दूसरे राजमन्दिरों की ओर गया और उसने उनका खर्च चलाने के लिए देव-आय को इतना बढ़ा दिया कि जिस प्रकार क्रोसस ने सायरस (१) को उपदेश दिया था उसी प्रकार यशोवर्म्मा को उसे निम्नलिखित उपदेश देने के लिए बाध्य होना पड़ा —

'मालवा ऐसा देश है जहाँ लाखों रुपये की उपज होती है परन्तु, वह गुजरात में इस प्रकार समा गया जिस प्रकार किसी घड़े में समुद्र

---

(१) सायरस ईरान का बादशाह था। उसने क्रोसस को जीत लिया था और वह चिता जला कर उसको जलाने के लिए तैयार हुआ। चिता में डाले जाने के पहले क्रोसस "सोलन! सोलन!!" कह कर चिल्लाया। तब सायरस ने उससे पूछा 'सोलन कौन है, और तुमने उसको इस समय क्यों याद किया?' क्रोसस ने उत्तर दिया 'जब मेरे दिन अच्छे थे तब मैंने एक दिन सोलन को बुला कर पूछा कि 'संसार में सबसे अधिक सुखी कौन है? उसने उत्तर में किसी ऐसे आदमी का नाम बताया जो मर चुका था और जिसको कोई नहीं जानता था। जब मैंने उससे पूछा कि क्या मैं सुखी नहीं हूँ, तो उसने उत्तर दिया कि, जब तक कोई मनुष्य जीवित रहता है तब तक उसके विषय के कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह कोई नहीं जानता कि भविष्य में क्या होने वाला है? अब, तुम देखते ही हो कि अपने को परम सुखी मानने वाले मुझ को आज चिता में जीवित जल कर मरना पड रहा है। इसलिए मुझे इस समय सोलन के वाक्यों की सत्यता प्रतीत हो रही है और इसीलिए मैंने उसे याद किया है।" यह बात सुन कर सायरस को ज्ञान हुआ और उसने क्रोसस को उसका राज्य लौटा दिया तथा उससे मित्रता का व्यवहार करने लगा।

समा जाय। इसका कारण यह है कि पहले मालवा महाकालदेव [१] को मिला था इसलिए यह देव-सम्पत्ति हो गया था। हमने इसका उपभोग किया और इसीलिए जिस प्रकार सूर्य क्षितिज में अदृश्य हो जाता है उसी प्रकार हमारी महिमा भी अस्त हो गई। इसी तरह तुम्हारे वंशज इस बढ़े हुए धार्मिक खर्चे को चलाने में समर्थ न हो सकेंगे और उन्हें प्रत्येक देवता के खर्चे में कमी करनी पड़ेगी। इसका फल यह होगा कि अन्त में ऐसी आपत्ति आयेगी कि तुम्हारा वंश जड़ से नष्ट हो जावेगा।"

मूलराज ने श्रीस्थलपुर में रुद्रमहाकाल का मन्दिर बनवाया था, वह मन्दिर अब जीर्णोद्धार हुए बिना यों ही टूटी फूटी दशा में पड़ा था। राक्षस लोग (२) ब्राह्मणों को दुःख देने लगे थे इसलिए अब हवन

---

(१) वनराज के पिता जयशेखर के शत्रु राजा भूवड के विषय में पहले लिखा जा चुका है। उज्जयिनी के महाकालेश्वर के मन्दिर में उसके शरीर के अवयवों की खराबी दूर हो गई थी, इसलिए उसने राजधानी सहित समस्त मालवा महाकालदेव को अर्पित कर दिया था और उसका रक्षण करने के लिए परमार राजपूतों को नियुक्त किया था।

(२) द्व्याश्रय में इन राक्षसों के नायक का नाम बर्बर लिखा है। चौथे प्रकरण के अन्त में दी हुई राजावली तथा चालुक्य वंश के दूसरे ताम्रपट्टों से भी प्रमाणित होता है कि इस राक्षस को जीतने के कारण ही सिद्धराज को बर्बरक-जिष्णु (बर्बरक को जीतने वाला) कहा है। साधारणतया ऐसा माना जाता है कि इस बर्बरक की सहायता से ही सिद्धराज इतने पराक्रम के कार्य किया करता था। सोमेश्वर ने 'कीर्तिकौमुदी' में लिखा है कि, इस राजा ने भूतों के राजा बर्बरक को श्मशान में कैद किया था और सिद्धराज के नाम से ख्याति प्राप्त की थी—

श्मशाने यातुधानेन्द्रं बद्ध्वा बर्बरकाभिधम्।
सिद्धराजेति राजेन्दुर्यो जज्ञे राजराजिषु ॥ ३८ ॥

का धुआँ आकाश में उठता हुआ दिखाई नहीं देता था। सिद्धराज ने ब्राह्मणों के शत्रुओं को निकाल बाहर किया और अपने चतुर कारीगरों को देवालय की इमारत को पूर्ण करने के काम में लगा दिया। फिर, ज्योतिषियों को पूछने पर उसके ध्यान मे यह बात आई कि जिस प्रकार

द्व्याश्रय के कोष मे इस वर्बरक के लिए लिखा है कि, वह राक्षसों अथवा म्लेच्छों का अधिपति था और श्रीस्थल (सिद्ध) पुर के ब्राह्मणों को दुःख देता था। जयसिंह ने उसको जीत लिया और उसकी स्त्री पिंगालिका के कहने से उसका उद्धार किया। इसके बाद बर्बर ने जयसिंह को बहुमूल्य भेंटें दीं और दूसरे राजपूतों की तरह उसकी सेवा में रहने लगा।

डाक्टर बूलर का कहना है कि, वर्बरक नाम की एक अनार्य जाति है जिसके लोग कोली, भील और मेरों की तरह उत्तरी गुजरात की तरफ झुण्डों में बसे हुए हैं—काठियावाड के जिस हिस्से में ये लोग बसे हुए हैं वह अब भी बाबरियावाड कहलाता है।

टॉड साहब ने (Western India pp 173–195) लिखा है कि ग्यारहवीं व बारहवीं शताब्दी मे जिन जंगली लोगों ने गुजरात के मैदान पर हमला किया था उनकी लडाई सिद्धराज के साथ हुई थी।

'बर्बर' यह नाम बहुत पुराना है और हिन्दुस्तान से मोराको तक फैला हुआ है। (विल्सन, पु० ७ पृ० १७६) बर्बरस और बार्बेरियन, इन दोनो नामों में उच्चारण मात्र की ही समानता नहीं है वरन् संस्कृत पुस्तकों में बर्बर शब्द दूर बसने वाले विदेशियों अथवा अनार्यों के लिए प्रयुक्त किया गया है-इससे भी यह बात सिद्ध होती है।

अरबी भाषा में जगल को बर कहते हैं, इसलिए बर में रहने वाले लोगों को बरबरी कहा जाता है, ऐसी धारणा हो सकती है। उत्तरी अफ्रीका में बर्बर प्रदेश है, जिसमें मोराको, अलजीरिया, ट्यूनिस और ट्रिपोली आदि आ गए हैं। इन भूमध्यसागर के किनारे के संस्थानों में रहने वाले लोग बार्बेरियन कहलाते हैं। कर्नल टॉड के मतानुसार मोराको का अर्थ (मरुका=मरु=मारु) रेतीला मैदान है और वहाँ के रहने वाले मूर कहलाए। मूर शब्द मौर का अपभ्रंश हो सकता है और इसका अर्थ 'मरु में

विदेशी आक्रमणकारियों का आगमन देवपट्टण के देवालय के लिए हानिप्रद हुआ था उसी प्रकार शायद कभी इस देवालय के लिए भी हो,

---

रहने वाला' हो सकता है। मेड़=मेर=वेर पालने वाले (ब्रूस के मतानुसार) बेर बेर या वर वर कहलाए और यही शब्द आगे चल कर भरवाड़ हो गया । मौरीतिनियां के नोमेड़िक राजाओं में से मारु थान (अफ्रीका के विशाल जंगल) के राजा पल्ली अथवा पाली मरवाड़ थे। बार्बरी और ईजिप्ट के फ्लीटा अथवा पाली राजा और कौन थे? लाल समुद्र के दक्षिणी किनारे और अबीसीनिया के रहने वाले बेर बेर लोग वहा से हट कर उत्तर की तरफ चले गए और एटलस (त तक बस कर अपना कब्जा कर लिया। इतना ही नहीं इस जाति के लोग सहारा के विशाल जगल तक बढते ही चले गए और जिन जिन स्थानों में वे लोग बसे वे बार्बरी प्रदेश कहलाने लगे। सोलोमन और उसके समकालीन सिशाक के समय से ही पूर्वीय अफ्रीका और हिन्दुस्थान के बीच गाढा व्यवहार चला आता है।

नीचे लिखे श्लोक में बर्बर शब्द आया हे और राहु जैसे बीभत्स दिखने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त हुआ है:—

राहुर्बर्बरके देशे सजात कामवर्जित. ।
गोत्रे पैठीनमे छ्ये हि सिंहारूढो वरप्रद. ॥

हनुमन्नाटक के निम्नलिखित श्लोक में भी वर्बर शब्द राक्षस के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

आसीदुद्भटभूपतिप्रतिभटप्रोन्माथिविक्रान्तिको
भूपः पक्तिरथो विभावसुकुलप्रख्यातकेतुर्बली ।
उर्व्या बर्बरभूमिभारहतये भूरिश्रवाः पुत्रता
यस्याऽऽस्वमथो विधाय महितः पूर्णश्चतुर्धा विभु. ॥

पृथ्वी पर बढे हुए बर्बरों के भारी भार को उतारने के लिए पूजनीय ऐश्वर्य से युक्त और यशस्वी परमात्मा ने राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के रूप में अपने स्वरूप को विभक्त करके जिसके पुत्रत्व को प्राप्त किया, ऐसा योद्धा, अपने प्रतिद्वन्द्वी राजाओं का मथन करने योग्य पराक्रमवाला, सूर्यकुल में प्रख्यात ध्वजरूप बलवान् राजा दशरथ हुआ।

इसलिए उसने इसमें अश्वपतियों तथा अन्य राजाओं की मूर्तियाँ स्थापित कीं और पास ही में अपनी एक मूर्ति इस ढंग की बनवाई कि मानों वह प्रार्थना कर रहा है। उसके ऊपर ही एक लेख है जिसमें यह विनती की गई है 'कदाचित् इस देश को नष्ट किया जावे तो इस देवालय का नाश नहीं किया जाना चाहिए।' इसके पश्चात महादेव की विजयिनी पताका रुद्रमाला के शिखर पर चढ़ाई गई और जैन मन्दिरों पर भी ध्वजा चढ़ाने की अनुमति प्रदान कर दी गई, क्योंकि पहले उन लोगों को ऐसी आज्ञा नहीं थी। अपना जीर्णोद्धार करानेवाले राजा के नाम का स्मारक बन कर तभी से श्रीस्थलपुर ने सिद्धपुर नाम धारण किया है। जैन लोग इस विषय में इतनी बात और कहते हैं कि यहीं सिद्धराज ने एक महावीर स्वामी का मन्दिर भी बनवाया था और यहां मेला भी भराया था।

इसके बाद सिद्धराज तुरन्त ही मालवा (१) आया और वर्षा ऋतु

---

(१) सिद्धाराज ने मालवा विजय करने के बाद महोवक (बुन्देलखण्डान्तर्गत आधुनिक महोबा) के चन्देल राजा मदनवर्मदेव को जीता। यह मदनवर्मा संवत ११८६ से १२२० (ई० स० ११३० से ११६४) तक था। चन्देल कुल के सबसे प्रख्यात राजाओं में से यह भी एक था।

"कीर्ति-कौमुदी" में लिखा है कि सिद्धराज धारा नगर (मालवा) से कालंजर गया। महोवक के राजा ने उसको अपना पाहुना करके बुलाया और सत्कार के रूप में उसको दण्ड तथा कर दिया।

"धाराभङ्गप्रसङ्गेन, यस्याऽऽसन्नस्य शङ्कितः।
प्राघूर्णकमिषाद्दण्ड, महोबकपतिर्ददौ ॥३३॥" सर्ग २.

कुमारपाल चरित में लिखा है कि जब सिद्धराज धारा नगर से वापस लौट रहा था तो पाटण के पास ही उसकी छावनी में एक भाट आया और उसके दरबार की

वहीं पर व्यतीत की। वहां उसको यह सुखद समाचार मिला कि सहस्त्रलिंग सरोवर बन कर पूर्ण हो गया है कि और पानी से लबालब भरा हुआ है। बरसात बीतने पर गुजरात लौटते समय वह बीच में श्रीनगर नामक शहर मे ठहरा। वहां नगर के बहुत से मन्दिरों पर ध्वजाएं फहराती देख कर उसने ब्राह्मणों से पूछताछ की और उन्होंने

प्रसंशा मे कहा, "आपके दरबार की शोभा मदनवर्मा के दरबार की शोभा के समान विचित्र है। यह मदनवर्मा महोबक नगर का राजा है और बहुत ही चतुर, उदार और आनन्दी जीव है।" यह बात सुन कर सिद्धराज ने अपने दूतों को महोबा भेजा। छः महीने मे दूतों ने वापस आकर कहा कि भाट ने जो कुछ कहा है वह अक्षरशः सच है। इस पर जयसिंह ने तुरन्त ही महोबा पर कूच कर दिया और नगर से १६ मील के फासले पर डेरा डाला। वहा से उसने अपने प्रधानमन्त्री को मदनवर्मा के पास भेज कर आधीनता स्वीकार करने के लिए कहलाया। उस समय मदनवर्मा अपने आनन्द-प्रमोद में लग रहा था। उसने प्रधान की कोई परवाह ही नहीं की।

मदनवर्मा ने कहा "यह वही राजा है जो धारा नगर के साथ लड़ाई करता हुआ बारह वर्ष तक पडा रहा था। यह कबाडी अथवा जंगली राजा है, पैसा चाहता है। इसको जितने पैसे की आवश्यकता हो उतना दे दो।" इसके बाद उसको पैसा दे दिया गया परन्तु, सिद्धराज ने मदनवर्मा से बिना मिले न जाने का मन्तव्य प्रकट किया। मदनवर्मा ने मुलाकात करना स्वीकार किया और सिद्धराज अपने अंगरक्षकों सहित उससे मिलने के लिए राज्यवाटिका मे गया। मदनवर्मा का महल अत्यन्त सुन्दर था, इसके चारों तरफ पहरेदार गश्त लगा रहे थे। सिद्धराज अपने चारों अंगरक्षकों सहित उस महल मे प्रविष्ट हुआ। मदनवर्मा ने उसकी सब प्रकार से पूरी खातिर की। अपने महल, बगीचे और आनन्दगृह आदि की सैर कराई। जब राजा लौटने लगा तो उसको १२० मनुष्य (दास, माणस) भेट किए।

द्वयाश्रय में लिखा है कि सिद्धराज ने मालवा विजय करने के बाद जेठों के देश के राजा सिंध को पकड़ कर कैद कर लिया था।

अपने धर्म के तथा जैनधर्म के मन्दिरों की अलग अलग गणना कराई। इस पर सिद्धराज ने क्रोधित होकर कहा "मैंने गुर्जर देश मे जैन मन्दिरों पर ध्वजाएं लगाने के लिए निषेध कर रखा है, फिर तुम्हारे इस नगर मे मेरी आज्ञा का पालन क्यों नहीं होता ?" इस पर श्रीऋषभदेव के मन्दिर की प्रबन्धकारिणी सभा ने लाकर एक ताम्रपत्र तथा दूसरे पट्टे दिखलाए और इनके आधार पर सिद्ध किया कि उनको ऐसा करने की प्राचीन काल से ही आज्ञा प्राप्त थी। विवाद के अन्त मे ब्राह्मणों ने भी इस बात को मान लिया और उदार नरेश ने जैन मन्दिरों पर प्रति-वर्ष नई ध्वजा चढ़ाने की आज्ञा प्रदान करदी।

सिद्धराज के सेनापतियों में एक जगतदेव (१) (जगदेव) नामक

---

(१) जगदेव के विषय में मेरुतुंग ने लिखा है कि वह त्रिवीर अर्थात् दयावीर, दानवीर तथा युद्धवीर पुरुष था। सिद्धराज ने सत्कार करके उसे अपना सामन्त बना रखा था परन्तु कुन्तल के परमर्दिराजा ने उसे बुला लिया था। यह परमर्दिराजा पटा खेलने का अभ्यास किया करता था और एक रसोइये को नित्य मार डालता था, इसी लिए 'कोप कालानल' कहलाता था। इस राजा की रानी जगदेव को अपना भाई करके मानती थी। कुन्तलेश्वर ने जगदेव को श्रीमाल के राजा पर चढाई करने की आज्ञा दी, इसलिए वह वहा पर गया। जगदेव ऐसा श्रद्धालु पुरुष था कि यदि वह देव पूजा में लगा होता और उस समय उस पर कोई सकट आ जाता तो भी वह पूजा पूरी किए बिना आसन से नहीं उठता था। श्रीमाल के राजा को यह बात मालूम हुई और उसने इससे लाभ उठाने का विचार करके जगदेव का नाश करने के लिए सेना भेजी। परिस्थिति से लाभ उठा कर उसने जगदेव की सेना का नाश किया परन्तु जब वह पूजा करके उठा तो बचे खुचे ५०० वीरों को लेकर शत्रु-सेना पर टूट पडा और जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश करता है, सिंह हाथियों के झुण्ड को नष्ट कर देता है और महावायु अपने प्रबल वेग से मेघमडल को तितर बितर कर देता है उसी तरह एक ही क्षण में शत्रु की सेना को उसने नष्ट भ्रष्ट कर दिया।'इसी स्थान पर यह भी लिखा है कि जब सपादलक्ष के राजा ने पृथ्वीराज के साथ

प्रख्यात परमार राजपूत था। वढ़वाण के ग्रन्थकर्ता आचार्य उसके उस समय के अस्तित्व का वर्णन करते हुए लिखा है कि, त्रिवीर अर्थात् वलवान् , बुद्धिमान् और धनवान् था। सिद्धराज की उ पर बहुत प्रीति थी और अन्त में, वह अपने राजा (सिद्धराज) की नौकरी छोड़ कर परमर्दिराज के दरबार मे चला गया था। परमर्दिराज की पट्टरानी का वह राखी बँध भाई था।

अब जो कथा पाठकों के आगे आएगी उसका मुख्य नायक यही शूर-वीर सेनापति होगा। इस कथा का यद्यपि कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है तथापि इसके द्वारा राजपूत जीवन के वीरतापूर्ण चित्रों को देखने का अवसर मिलेगा तथा एक ऐसी अद्भुत कथा का रस प्राप्त होगा जिससे प्रत्येक सच्चा क्षत्रिय-पुत्र आनन्दित होता है।

संग्राम किया था तब परमर्दिराज सपादलक्ष के राजा के पक्ष में था परन्तु वह हार कर लौट गया था। "जिस पृथ्वीराज ने २१ वार म्लेच्छों का नाश किया" इत्यादि सब वृत्तान्त लिखा है परन्तु इससे पृथ्वीराज के समय के विषय में गडबडी पडती है।

